सचित्र शुद्धबोध

संपादक—

श्रीनरदेवशास्त्री

❀ ॐ तत्सत् ❀

संक्षिप्त शुद्धबोध ।

इसमें परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी शुद्धबोधतीर्थ, प्रथम आचार्य गुरुकुल काँगड़ी, आचार्य तथा कुलपति महाविद्यालय ज्वालापुर, का संक्षिप्त जीवन चरित्र और उनके शिष्यों व भक्तों के संस्मरण हैं।

सम्पादक तथा प्रकाशक—

श्री नरदेवशास्त्री, वेदतीर्थ

महाविद्यालय, ज्वालापुर ।

मुद्रक—

श्री चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, पालीरत्न

भास्कर प्रेस, देहरादून ।

मुद्रित प्रति १०००	चैत्रपूर्णिमा संवत् १९९१	मूल्य १) छात्रों से ॥)

मान्यो धन्यो वदान्यो

गुरुगणगणनापूर्वगण्यो वरिष्ठः,

त्यागी द्रव्येषु, रागी

बुधजनसमितौ, वीतमोहश्च देहे ।

त्यक्त्वा लोकोभयं यः

स्वसुखमुपगतो, येन त्यक्ता वयं हा !

शोच्या जाताः, स कश्चिद्,

जयति यतिवरः शुद्धबोधो महात्मा ॥

हरिपुर-(भभुआ) बिहार-वास्तव्यः ।

श्री छेदीप्रसादशर्मा काव्यतीर्थः, व्याकरणाचार्यः ।

पुस्तक मिलने का पता—

१—श्री पं० हरिदत्त शास्त्री पंचतीर्थ महाविद्यालय ज्वालापुर

२—पुस्तकालय महाविद्यालय ज्वालापुर ।

स्वामीजी के दो परम भक्त ।

इस जीवन चरित्र की समस्त छपाई आदि का भार स्वर्गीय श्री १०८ स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज के परम प्रिय शिष्य श्री केशवशरण जी रईस मवानाकलाँ (जि० मेरठ) व ब्र० गौरीशंकरशर्मा विद्याभास्कर के पिता श्री पं० जगनराम जी वकील सरदारशहर (बीकानेर) ने उठाया. तदर्थ स्वामी जी का विस्तृत विद्या-परिवार अत्यन्त कृतज्ञ है।

इसके अतिक्ति श्री विद्याभूषण जयदेवगुप्त वैद्य (संगरिया मंडी), श्री पं० श्रुतिकान्तशास्त्री वेदतीर्थ (गुजरात) ने कई ब्लॉक अपने व्यय से बनवा दिये।

नरदेवशास्त्री

सचित्र-शुद्धबोधानुक्रमणिका।

	पृ० सं०
१—स्वामी जी के सहयोगी	क
२—आभार प्रदर्शन	ग
३—वाचकवृन्द से	घ
४—स्मृति ग्रन्थ की आयोजना	च
५—सिंहावलोकन	छ
६—पूर्वशब्द	१-४
७—संस्मरण व पत्र (संस्कृत व हिन्दी में) ...	१-७३
श्री गुरुवर काशीनाथ शास्त्री का पत्र ...	१
पद्य पुष्पाञ्जलिः—श्री दिलीपदत्तोपाध्याय ...	३
वे दिन—श्री हरिदत्तशास्त्री पंचतीर्थ ...	११
गुरुशोकपञ्चकम्—काशीनाथ शर्मा काव्यतीर्थ	१८
श्रद्धाञ्जलिः—श्री छेदीप्रसादशर्मा ...	१९
शुद्धबोधमहिमा—श्री द्रव्येश झा ...	२०
आचार्याणां स्वर्यानम—श्री लीलाधर शास्त्री ...	२५
अहो त्यागः—श्री जीवनदत्तशर्मा ...	२८
भावकुसुमानि—महेन्द्रनाथ पटैल ...	३१
गुर्वी गुरुभूमिः—अभयसिंह न्यायशास्त्री ...	३३
कविता—चन्द्रदत्त शास्त्री ...	३५
स्वामी शुद्धबोध — महामना मालवीय ...	३५
मेरा दर्शनसौभाग्य—विद्याधर शास्त्री ...	३६
धर्ममूर्ति स्वामी—पं० रविशंकरशर्मा ...	३९

पृ० सं०

मेरे संस्मरण—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय ... ४३
स्वामी क्या थे—मा० आत्माराम अमृतसरी ... ४९
श्रद्धाञ्जलि—प्रो०मनोरञ्जन ... ५०
श्रीगुरवे नमः—पं० विष्णुदत्तशास्त्री ... ५२
स्वामी जी की उदारता—पं० विश्वनाथ शास्त्री ५९
आचार्य—प्रेमचन्द काव्यतीर्थ ... ६३
स्वामी जी—चिम्मनलाल वैश्य ... ६५
विभिन्न पत्र ६७
८—उद्धृत लेखादि ७३
९—जीवनचरित १०५-१२८
स्वर्गीय स्वामीजी १०५
स्वामी जी के गुरुजन १०६
काशी के तीन परममित्र १०९
स्वामी जी की वंशावली ११२
स्वामी दर्शनानंद का प्रथम परिचय ... ११३
बेलोन (स्वामी जी की जन्मभूमि) ... १२२
स्वामी जी का कुल १२३
गंगादत्त जी का स्वभाव १२५
खुर्जा १२६
मथुरा में श्री उदयप्रकाश जी के पास ... १२७
कल्याणपण्डित १२९
अष्टाध्यायी-परम्परा १३०
काशी में १३१
फिर बेलोन १३६

	पृ० सं०
जालंधर में	१३६
गुजरानवाला	१४१
हरद्वार को	१४२
गुरुकुल का प्रथम समारंभ	१४४
गुरुकुल में पांच वर्ष	१४४
तीसरा हाथ	१४५
हृषीकेश	१५०
भोगपुर	१५६
मायापुर की वाटिका	१५७
मायापुर में क्या हुआ	१५७
महाविद्यालय में	१५९
फिर महाविद्यालय में	१७०
महाविद्यालय कैसे चलाया गया ...	१७९
स्वामी जी का स्वभाव	१८८
स्वामी जी की अध्यापनशैली ...	१९०
महाप्रयाण	१९७
अन्य आवश्यक	२०९
स्वामी जी के प्रिय ग्रन्थ	२१५
आर्यसमाज के शास्त्रार्थों में योग ...	२१८
विभिन्न	२१९
बा० जगदम्बाप्रसाद का पत्र ...	२२४
१०—परिशिष्ट १—हृदयोद्गार (महाविद्यालय के पण्डितों व ब्रह्मचारियों के) ...	२२९
११—परिशिष्ट २—शिष्य-प्रशिष्य—नामावली ...	२४३

१—स्व० स्वा० शुद्धबोधतीर्थ आचार्य तथा कुलपति महाविद्यालय ज्वालापुर।

२—श्रीगुरुवर पं० काशीनाथ शास्त्री (८५ वर्ष की आयु में वर्तमान चित्र)

३—श्री गुरुवर श्री हरनामदत्त भाष्याचार्य (चूरु)।

४—स्व० श्रीस्वामी श्रद्धानन्द जी संस्थापक गुरुकुल कांगड़ी।

५—स्व० श्रीस्वामी दर्शनानन्द जी संस्थापक महाविद्यालय ज्वालापुर।

६ - गुरुवर श्री काशीनाथ शास्त्री, पं० भीमसेनशर्मा (जब कांगड़ी गुरुकुल में थे तब)।

७—श्री पं० पद्मसिंहशर्मा साहित्याचार्य संपादक भारतोदय।

८—स्व० श्री बाबू सीताराम जी भूमिदाता महाविद्यालय ज्वालापुर और श्री बाबू जगदम्बाप्रसाद जी सिकन्दराबाद निवासी (भानजे बाबू सीताराम जी)।

९—स्व० श्री बाबू ज्योतिःस्वरूप जी रईस देहरादून (स्वामी जी के भक्त व सहयोगी)।

१०—श्री नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ (स्वामी जी के एकनिष्ठ शिष्य)

११—पं० दिलीपदत्त जी उपाध्याय प्रथम मुख्याध्यापक महाविद्यालय ज्वालापुर।

१२—श्री पण्डा रामचन्द्र जी बेलोन (स्वामी शुद्धबोधतीर्थ के बालसखा, अवस्था ७१ वर्ष)।

१३—पं० नरदेवशास्त्री सहित महाविद्यालय ज्वालापुर की एक मण्डली।

१४—राज्यरत्न मा० आत्माराम जी अमृतसरी।

१५—पं० रामगोपाल जी वैद्यरत्न बदाऊं (स्वामी जी के परम सेवक)।

१६—महाविद्यालय का बाहरी और भीतरी दृश्य।

१७— „ की यज्ञशाला और वनस्थाश्रम

१८— „ की गोशाला और भोजनशाला।

१९— „ का औषधालय और दर्शनानन्द-घाट।

२०— „ का देवाश्रम और ब्रह्मचारिमण्डल।

२१— „ के आचार्य वृक्ष के नीचे पढ़ा रहे हैं।

„ का अध्यापक तथा कार्यकर्तृ मण्डल।

२२—स्वामी शुद्धबोध सहित महाविद्यालय की मण्डली।

स्वामी जी के महाविद्यालय के सहयोगी।

१ स्व० श्री १०८ स्वा० दर्शनानन्द सरस्वती।
२ ,, श्री बाबू सीताराम जी ज्वालापुर।
३ ,, श्री बाबू ज्योतिस्वरूप जी रईस देहरादून।
४ ,, श्री स्वामी तुलसीराम जी सामवेदभाष्यकार।
५ ,, श्री पण्डित गणपतिशर्मा जी चूरू-रामगढ़।
६ श्री राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी।
७ ,, श्री चौ० जयकृष्ण जी रईस अमृतसरी।
८ स्व० श्री पण्डित भीमसेनशर्मा (स्वा० भास्करानन्द जी)।
९ ,, श्री पण्डित पद्मसिह शर्मा साहित्याचार्य।
१० ,, श्री डाक्टर हरद्वारीसिंह जी रुड़की।
११ ,, श्री चौ० महाराजसिंह जी रईस झबरेड़ा-मानकपुर।
१२ ,, श्री चौ० अमीरसिंह जी रईस गढमीरपुर।
१३ ,, श्री ला० केवलकृष्ण इमलीखेड़ा।
१४ श्री पं० रविशंकरशर्मा वानप्रस्थ।
१५ श्री रायसाहब मथुरादास जी रईस रुड़की।
१६ श्री रावसाहब चौ० मामराजसिंह जी रईस शामली।
१७ श्री चौ० भगीरथलाल जी महेवड़।
१८ श्री चौ० रघुराजसिंह जी पृथ्वीपुर।
१९ स्व० श्री पं० वासुदेवशर्मा ऊमरी (धामपुर) निवासी।
२० श्री वैद्यराज पण्डित रामचन्द्रशर्मा कनखल।
२१ श्री बाबू प्रतापसिंह जी ।
२२ श्री नरदेव शास्त्री।
२३ श्री पं० शङ्करदत्तशर्मा मुरादाबाद।

२४ ी स्वा० ब्रह्मानन्द सरस्वती ।
२५ श्री ब्र० आनन्दप्रकाश जी ।
२६ श्री स्वा० सदानन्द जी ।
२७ श्री स्वा० मुक्तानन्द जी ।
२८ श्री पण्डित काँचीदत्त शर्मा ।

स्वामी जी के कांगड़ी के सहयोगी ।

१ स्व० महात्मा मुन्शीराम मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी ।
२ ,, श्री महात्मा खुशीराम मुख्याधिष्ठाता गु० ,,
३ ,, श्री प्रो० सियाराम एम० ए० (जो काँगड़ी छोड़ने के पश्चात् योगाभ्यास में रत होकर प्रसिद्ध योगिराज बने थे) ।
४ श्री प्रो० विनायकगणेश साठे एम० ए० (कांगड़ी छोड़कर आप बम्बई में प्रो० गज्जर की संस्था में गये) ।
५ श्री पं० यज्ञेश्वर जी महाराज (कांगड़ी छोड़ने के पश्चात् आप कनखल ही रहने लग गये । आप पञ्चपुरी के प्रसिद्ध वैद्यराज हैं) ।
६ श्री प्रो० रामदेव जो (आजकल कन्यागुरुकुल देहरादून में हैं) ।
७ श्री गुरुवर पण्डित काशीनाथ शास्त्री (काशी में हैं, काँगड़ी छोड़कर छः वर्ष महाविद्यालय में रहे) ।
८ स्व० श्री पं० भीमसेनशर्मा (स्वा० भास्करानन्द) महाविद्यालय
९ स्व० श्री पं० पद्मसिंहशर्मा (महाविद्यालय) ।
१० श्री नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ (महाविद्यालय) ।
११ स्व० श्री शालग्राम भण्डारी (काँगड़ी के सहयोगी) ।

१२ श्री पं० विष्णुमित्र जी (गु० कु० कुरुक्षेत्र)।
१३ श्री बाबू प्रतापसिंह जी (नाशिक में हैं)।
१४ श्री मुन्शी तोताराम जी लश्कर ग्वालियर।
१५ श्री मुन्शी चिम्मनलाल तिलहर शाहजहाँपुर।

आभार-प्रदर्शन।

जिस समय मैं इस ग्रन्थ का संकलन कर रहा था उस समय मेरे शिर में अचानक उग्ररूप में चम्बल रोग होगया। उस समय महाविद्यालय में चितौरानिवासी ब्रह्मचारी रामचरणशर्मा (वाचस्पति), (२) ब्र० रामचन्द्र शर्मा (फीरोजाबादी), (३) श्री ज्योतिःस्वरूप (मुजफ्फराबादी); (४) आगरे में कविरत्न पण्डित हरिशङ्करशर्मा संपादक आर्यमित्र, (५) पण्डित चन्द्रदत्तशास्त्री काव्यतीर्थ; (६) मथुरा में श्री पण्डित वासुदेवशरण अग्रवाल एम० ए० क्युरेटर म्युजियम; (७) देहरादून में कविराज श्री पं० अमरनाथ वैद्य वनस्पतिभवन, (८) पण्डित श्रीनन्दशर्मा नौओनी आदि मेरी सेवा-शुश्रूषा-उपचार का ध्यान न रखते तो मैं इसका न तो संकलन कर सकता और न प्रकाशन। इनको धन्यवाद देने की अपेक्षा यही कहना समुचित होगा कि उन्होंने अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया है।

(९) श्री पं० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार ने अपने गुरु के गुरु श्री १०८ स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज के जीवनचरित्र के

प्रूफ देखने, उसको सुन्दर सुचारु रूप में छपवाने में प्रयत्न किया तो वह भी कर्त्तव्यपालन ही है। (१०) इसीप्रकार कुं० कुंवर-भान मदन (डेराइस्माईलखां) ने भी बड़ी सेवा की। इसके अतिरिक्त जिन २ महानुभावों ने लेख, सत्परामर्श आदि द्वारा सहायता दी वे सब शतशः धन्यवाद के पात्र हैं।

नरदेवशास्त्री

अब यह ग्रन्थ मेरे हाथ से निकलकर मुद्रित रूप में आपके हाथों में पहुँच रहा है, इस बात से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होरही है। मैं आशा करता हूँ कि आप इसका समादर करेंगे। इसको आद्योपान्त पढ़कर दिवंगत आत्मा की कीर्त्ति को प्रसारित करेंगे।

कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य,
दोषेषु यत्नः सुमहान् खलस्य।
अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः,
क्रमेलकः कंटकजालमेव ॥

इस वृत्ति के लोगों से तो मुझे कुछ कहना नहीं है। बस, आज मेरे सिर से एक भारी भार उतर गया, आज मैं अपने पूज्य-चरण गुरुओं के गुणगान द्वारा अपने आपको कृतकृत्य समझ रहा हूं।

इस ग्रन्थ में जिन जिनके लेख, संस्मरण, कविता आदि छपी हैं उस उस लेख, संस्मरण और कविता में प्रकटित अभिप्राय व रचना के लिए वे ही उत्तरदाता हैं। मैंने किसी की रचना में हस्ताक्षेप नहीं किया है। किसी के अभिप्राय को नहीं रोका है। लेखकों में कट्टर से कट्टर सनातनी तथा आर्यसमाजिक पुरुष भी हैं। कई लेखक तटस्थ वृत्ति के भी हैं। मेरा कार्य तो विविध वर्ण के सुगन्धित पुष्पों को एकत्रित करके उनकी सुन्दर माला गूंफने का था सो मैंने उस कार्य को किया। मैं कहां तक सफल हुआ हूं इसका निर्णय आप सज्जन ही करेंगे।

—नरदेवशास्त्री

स्मृतिग्रन्थ की आयोजना ।

श्री पं० रामदत्त शुक्ल एडवोकेट एम० ए० लखनऊ (सुपुत्र श्री पं० नन्दकिशोर देवशर्मा आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् महा-महोपदेशक) निवासी ने हमको सत्परामर्श दिया था कि हम इस प्रकार के जीवनचरित्र लिखने की अपेक्षा यदि निबंधात्मक (जिसमें कम से कम सौ निबन्ध हों) स्मृतिग्रन्थ प्रकाशित करें तो अत्युत्तम होगा। परामर्श तो बहुत ही सामयिक और सर्वोपकारक था किन्तु स्व० स्वामी जी के शिष्य-प्रशिष्य और भक्तजनों की यह संमति हुई कि कालान्तर में उक्त प्रकार का उच्चकोटि का स्मृतिग्रन्थ प्रकाशित किया जाय और इस समय तो इसी प्रकार का जीवनचरित्र अभीष्ट है। वस्तुतः है भी यही बात। उस प्रकार का उच्चकोटि का स्मृतिग्रन्थ काल व परिश्रम-साध्य है। सब विषयों के प्रकाण्ड पण्डितों के उत्तमोत्तम अनुभव व विद्वत्ता-पूर्ण निबन्धों का संग्रह शीघ्र नहीं होसकता। पण्डितों व विद्वानों को अपने अपने निबन्ध तैयार करने के लिए कमसे कम एकवर्ष का अवसर दिया जाना चाहिये। ऐसे ग्रन्थ वर्षों में तैयार होते हैं। इस विषय में हम शीघ्र ही विद्वानों से परामर्श करेंगे। अबतो स्वा० जी का बृहत् विद्या-परिवार और उनके शिष्य-प्रशिष्य व भक्तजन इसी संक्षिप्त चरित्रात्मक गुणगणनात्मक तथा संमिलित कृतज्ञता-प्रकाशनपरक वाङ्मय से प्रसन्न होंगे और इसका यथोचित आदर और प्रचार करेंगे। स्व० स्वामी जी जैसे परोपकारपरायण, छात्रवत्सल, गीर्वाण-वाणी-समुद्धारक, एषणा-विरहित, प्राचीन शैली के गुरुवर्य्य की कीर्त्ति-प्रसारण द्वारा ऋषि-ऋण से उऋण होना प्रत्येक का परम कर्त्तव्य है।

नरदेवशास्त्री

सिंहावलोकन ।

वाचकवृन्द इस बात को नहीं जानते हैं कि इस चरितात्मक पुस्तक के प्रकाशन में ही हमको किन असुविधाओं का सामना करना पड़ा है। आर्यसमाज में संस्कृत के उच्चकोटि के संमान्य, संभ्रान्त विद्वान् के चरित्र को लिखने व प्रकाशन करने का प्रथम ही प्रयत्न है।

यह बात अत्यन्त दुःख से लिखी जायगी कि आर्यसमाज में उन उन विषयों के निष्णात पारङ्गत पण्डितों की प्रतिदिन न्यूनता ही होती जा रही है। आर्यजगत् में जो भी पण्डित हुआ अपने जैसा अकेला ही हुआ, उसके दिवंगत हो जाने के पश्चात् उसके रिक्त स्थान को लेकर कार्य निभानेवाला कोई नहीं हुआ। स्वर्गीय १०८ श्री स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी अपने ढंग के अद्वितीय विद्वान् थे। महाभाष्य जैसे आकर-ग्रन्थ को हस्तामलकवत् पढ़ाते थे। व्याकरणशास्त्र (नव्य व प्राचीन, दोनों) को अधिकारप्रयुक्त वाणी से पढ़ाते थे।

यद्यपि आपकी प्रसिद्धि व्याकरणशास्त्र के कारण थी तथापि न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त के ग्रन्थों को बड़े चाव से पढ़ाते थे। ऐसे दिग्गज पण्डित का स्थान न जाने कब तक खाली पड़ा रहेगा? आप प्राचीन ढंग के पण्डित थे और आप की अप्रतिम विद्वत्ता की सनातनी पौराणिक पण्डितों में भी धाक थी। श्री स्वामी जी की प्रबल इच्छा थी कि आर्यसमाज में षट्शास्त्रों व वेदों के विद्वानों की संख्या सहस्रों तक पहुंच कर उसका गौरव सर्वत्र प्रसारित हो।

वह अंग्रेजी रङ्ग--ढङ्ग को तिरस्कार की दृष्टि से देखा करते थे। उनका कथन था कि जब अंग्रेजी पद्धति की शिक्षा-दीक्षा के लिये भारत भर में इतना घोर प्रयत्न हो रहा है और करोड़ों रुपये खर्च किये जा रहे हैं, तब क्या आवश्यकता है कि आर्य-समाज अपना अमूल्य समय, धन व पुरुषार्थ उसी ढङ्ग में व्यय करे। उसका तो मुख्य कर्तव्य यही है कि अपना सब पुरुषार्थ वेद शास्त्रों पर लगावे, जिससे चारों वेद, ब्राह्मण, अनुब्राह्मण, उपनिषद्, षट्शास्त्रों के सहस्रों विद्वान् तैयार होकर स्वामी दयानन्द की हार्दिक इच्छा को पूर्ण कर सकें।

क्या हम नहीं देख रहे हैं कि आर्यसमाज का अधिक धन, समय व पुरुषार्थ वर्त्तमान शिक्षा--दीक्षा प्रणाली के प्रसार में ही व्यय हो रहा है। क्या हम नहीं देख रहे हैं कि प्राचीन शिक्षा-दीक्षा प्रणाली के नाम पर खुली हुई संस्थाओं पर भी नवीन युग का इतना गहरा रङ्ग चढ़ता जा रहा है कि उनका वास्तविक स्वरूप भी नहीं पहिचाना जा रहा है। यह सब है, खेद की बात पर वश भी किस का है। हम लोगों की अपने उद्देश्यों में ही वह आस्था, वह श्रद्धा नहीं है, तब हम अपने कार्य में किस प्रकार सफल हो सकते हैं।

स्व० श्री स्वामी जी ने अपना समस्त पुरुषार्थ लगाकर सैकड़ों तीर्थ, आचार्य, शास्त्री, विशारद आदि तैयार किये और अब उनका कर्त्तव्य है कि वे स्वामी जी के मनोवाञ्छित की पूर्ति के लिये संलग्नता से तत्पर हों—दिवंगत आत्मा को इसी प्रकार शान्ति मिल सकती है, नहीं तो वे तो अपने कर्त्तव्य को पूर्णरूप से पालन कर गये अब नई पीढ़ी की बात नई पीढ़ी के साथ है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के कार्यकाल के प्रारम्भ से लेकर अब तक दृष्टि डाली जाय तो निम्नलिखित पण्डित महानुभावों का उल्लेख करना ही पड़ेगा। केवल संस्कृतविद्या के पाण्डित्य की दृष्टि से हम विचार कर रहे हैं—

१—श्री पंडित यज्ञदत्त जी शास्त्री—

कर्मकाण्ड के प्रवीण पण्डित थे। कवि भी अच्छे थे। संस्कृत ऐसी अच्छी लिखते थे कि उनके सामने कोई टिक नहीं सकता था।

२—श्री पंडित ज्वालादत्त जी शास्त्री—

व्याकरण व साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान थे। आशु-कवि थे। लिखने में सिद्धहस्त थे। वक्ता थे।

३—श्री पंडित भीमसेनशर्मा (इटावा निवासी)

वैदिक विषय के अगाध पण्डित थे। इनकी लेखनशैली की धाक काशी के पण्डितों पर भी थी। खेद कि अन्ततक आर्यसमाज में न टिक सके।

४—श्री पंडित देवदत्तशास्त्री।

आप अष्टाध्यायी के प्रकाण्ड पण्डित थे। आपकी समस्त आयु अष्टाध्यायी पढ़ाने में ही गई।

५—श्री १०८ स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज।

इनके विषय में यह पुस्तक ही बतला रही है कि वे क्या थे।

६—श्री पंडित भीमसेनशर्मा (आगरा निवासी)।

व्याकरण, वेदान्त व साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित, कवि, सिद्धहस्त संस्कृत लेखक।

७—श्री पंडित पद्मसिंहशर्मा, साहित्याचार्य।

हिंदी-उर्दू-संस्कृत-साहित्य-कानन-केसरी, ललित-वाङ्मय-निर्माता।

८—श्री पंडित गणपतिशर्मा।

वेदान्त में पारङ्गत, अद्भुत वक्ता, "वक्ता दशसहस्रेषु" के मूर्त्तिमान् उदाहरण थे।

९—श्री पंडित श्यामजीकृष्णवर्मा।

संस्कृत साहित्य के पारंगत, धाराप्रवाह संस्कृतभाषी, आपकी व्याख्यानशैली पर काशी के पण्डित भी मुग्ध थे। प्राच्य व प्रतीच्य साहित्य पारंगत।

१०—श्री १०८ स्वा० दर्शनानन्द सरस्वती।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध तार्किकशिरोमणि, आर्यजगत में निःशुल्क प्राचीन शिक्षा दीक्षा के प्रवर्त्तक।

११—श्री पंडित तुलसीराम स्वामी सामवेदभाष्यकार।

प्रतिभाशाली विद्वान्, वक्ता, लेखक।

१२—श्री १०८ स्वामी नित्यानन्द।

व्यापक पण्डित, ललित वक्ता।

१३—श्री आयुर्वेदाचार्य पं० सीतारामशास्त्री (रावलपिन्डी)

आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित, संस्कृत-साहित्यशिरोमणि।

लेखक की दृष्टि स्वर्गीय इन्हीं आत्माओं पर पड़ती है। वर्त्तमान समय के पण्डितों पर दृष्टि डालकर चर्चा करने की न कोई आवश्यकता है और न कोई इस विषय का प्रसङ्ग।

यह मानना ही पड़ेगा कि स्व० श्री १०८ स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी ने चालीस वर्ष तक चुपचाप जो ठोस कार्य किया और आपने आर्यसमाज को जितने अधिक संस्कृत के विद्वान् दिये उतने किसी ने नहीं।

दूसरा स्थान है श्री पं० देवदत्तशास्त्री कासगञ्ज निवासी का जिनके प्रमुख शिष्यों में स्व० श्री पं० नन्दकिशोर देवशर्मा आदि का नाम उल्लेख योग्य है। आपकी समस्त आयु शान्तिपूर्वक सैकड़ों विद्वान तैयार करने में ही गई।

पं० यज्ञदत्त शास्त्री, पं० ज्वालादत्त शास्त्री, पण्डित देवदत्ता शास्त्री अपने आपको स्वा० दयानन्द के शिष्य बतलाने में गौरव समझते थे। इटावानिवासी पण्डित भीमसेन जी भी अपने आपको स्वा० जी का शिष्य लिखते व बतलाते रहे किन्तु पश्चिमावस्था में आर्यजगत् से हट गये। पण्डित श्यामजी तो स्वा० जी के परम प्रिय शिष्यों में थे। स्वा० जी की प्रेरणा से ही वे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर होकर गये थे। एक समय वैदिक प्रेस के प्रबन्धक भी थे।

लेखक इस बात को निःसंकोच लिखेगा कि आर्यसमाज में संस्कृत के विद्वानों की अपेक्षा चलते पुर्जे लोगों का ही अत्यधिक आदर हुआ। इसी लिए आर्यजगत् में उसी प्रकार के लोगों की अधिक वृद्धि हुई। आर्यसमाज का गौरव होगा तो वह विद्वानों की अधिकता से ही होगा, अन्यथा नहीं, चाहे अन्य विषय में कितनी भी क्यों न उन्नति करें।

नरदेवशास्त्री।

चित्र सं० १

स्व० स्वा० शुद्धबोधतीर्थ आचार्य तथा कुलपति
महाविद्यालय ज्वालापुर।

न च माता, न च पिता,
तादृशो यादृशो गुरुः।

—महाभारत शान्तिपर्व

ॐ तत्सत् ।

वन्दे मातरम् ।

"विद्वाꣳसो 'हि' देवाः"–(शतपथ)

संसार में ऐसा कौन है जो आया हो और फिर न गया हो। कौन ऐसा है जो जन्मा हो और फिर काल का ग्रास न बना हो। किन्तु महापुरुष, कभी नहीं मरते। उनका पाञ्चभौतिक शरीर भले ही पंचभूतों में मिल जाय किन्तु उनका यश:शरीर महाप्रलय तक बराबर बना रहता है।

गुरुवर श्री १०८ स्वामी शुद्धबोध तीर्थ जी ऐसे ही महा-पुरुषों में से थे। उनका जन्म ही तप, त्याग व स्वाध्याय के लिए था। इस युग में जब की राज्याश्रय, लोकाश्रय आदि के अभाव में संस्कृत विद्या मृतप्राय विद्या कहलायी जा रही है, ऐसे समय में सब एषणाओं को छोड़ कर उसी के उद्धार में सर्वात्मना संलग्न रहना कितना कठोर व्रत है, इस बात को वे ही महानुभाव अनुभव कर सकेंगे जो इस कार्य में पड़े अथवा जुटे हों। ऐसे समय में

—"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति"
—(महाभाष्य)

इस प्रकार का निष्कारण धर्म केवल कर्त्तव्य बुद्धि से अपना काम करते रहना चाहिए इस बुद्धि से किया जाने वाला धर्म अथवा शुभ कर्म कितना कठिन है, इस बात को कोई कैसे बतलाये। स्वा० शुद्धबोध तीर्थ जी ने अनवरत चालीस वर्ष तक यही पवित्र कार्य किया और उनके जीवन की सफलता इसी में है कि वे जिस उद्देश्य से कार्यक्षेत्र में प्रवृत्त हुए उसीमें अन्त तक जुटे रहे। यही कारण है कि उत्तर भारत में उन की शिष्य-परम्परा सर्वत्र प्रसरित है।

यही कारण है कि उनका इतना बड़ा विद्या का परिवार है। यही कारण है कि आज विद्वन्मण्डल उनकी स्मृति में, स्नेह-पूर्त्ति में, आदरपूर्वक अश्रू बहा रहा है। ऐसे महापुरुष की सेवा का अवसर मिला, पैंतीस वर्ष तक सहयोग प्राप्त हुआ, यह भी पूर्व जन्म का सुकृत ही समझ रहा हूँ। स्वा० जी का जीवन चरित्र लिखना भी सुलभ कार्य नहीं है। उनके जन्मस्थान (बेलोन) में जाकर पूछनेसे भी कोई विशेष बात नहीं मिल रही है, क्यों कि सतरह अठारह वर्ष की अवस्था के पश्चात् स्वा० जी बेलोन रहे ही नहीं।

उनके समकालीन साथियों में भी दो एक को छोड़ कर कोई शेष रहा रहा नहीं। उन दो व्यक्तियों का नाम है पण्डा रामचंद्र और ला० बैनीराम। उन्हीं से मिलकर बेलोन की बाल्यावस्था का वृत्तान्त एकत्रित कर सका हूँ। लेखक को अत्यन्त दुःख है कि उसके सब गुरु—

श्री० स्वा० शुद्धबोधतीर्थ (व्याकरण गुरु) श्री महामहा-
महोपाध्याय पं० रघुपति शास्त्री ग्वालियर (काव्य-साहित्य-
गुरु) महामहोपाध्याय श्री पं० अम्बादास शास्त्री काशी
(न्यायगुरु) श्री पं० नारायण सिद्ध जी नगर भरतपुर
(शास्त्रगुरु) श्री आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी कलकत्ता (वेदगुरु)

—सब के सब इस लोक में नहीं हैं, न जाने कहाँ विचर रहे हैं। श्री स्वा० शुद्धबोध तीर्थ जी की ही कृपासे लेखक इस योग्य वनगया था कि अन्य गुरुओं के पास जाकर अधिक विद्या अथवा अन्य शास्त्रों का तत्त्व प्राप्त कर सका। 'प्रधान' विषय के गुरु रहने से वे प्रधान गुरु कहलाये गये। "प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्"—

लेखक को इस बात का बहुत दुःख है कि जिन चार व्यक्तियों ने मिल कर महाविद्यालय का शकट चलाया था, जिन चार व्यक्तियों ने कांगड़ी गुरुकुल की प्रारम्भिक अवस्था में योग दिया था, उन चार व्यक्तियों में से—

श्री स्वा० शुद्धबोध तीर्थ, श्री पं० भीमसेन शर्मा साहित्याचार्य, श्री पं० पद्मसिंह शर्मा, ये तीन तो आगे चले गये और लेखक अकेला ही रह गया—

दिवसास्ते महान्तस्ते, संपदस्ताः क्रियाश्च ताः।
सर्वं स्मृतिपथं यातं, यामो वयमपि क्षणात् ॥
वातान्तर्दीपशिखा- लोलं जगति जीवितम्।
तडित्स्फुरणसंकाशा, पदार्थश्रीर्जगत्त्रये ॥

—योगवासिष्ठ

वे दिन, वे महापुरुष, वह संपदाएं, वह लोकोत्तर क्रियाएँ, सब के सब स्मृतिशेष रहगये, हम भी क्षणभर में जाने वाले हैं। यह जीवित वायु के मध्य में स्थित दीपशिखा की तरह चंचल व यह ऐश्वर्य विद्युत् की तरह निमेषमात्र स्थायी है यही बात कहते बनती है। स्वा० जी के जीवन काल में स्वा० जी व उनके साथियों से जो कुछ सुना था, बेलोन में जाकर जो कुछ वृत्तान्त मिल सका और गत पैंतीस वर्षों में लेखक को तथा स्वा० जी के अन्य सैकडों शिष्यों को जो अनुभव मिला, उन्हीं का संक्षिप्त संग्रह इस पुस्तक में है—

—इस ग्रन्थ को "शुद्धबोध-स्मृतिग्रन्थ" कहना अधिक उपयुक्त होगा। मैं समझता हूँ कि पूर्वशब्द में इतना ही विवेचन पर्याप्त है। इस बात के लिखने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कि यह स्मृतिग्रन्थ दिवंगत आत्मा के प्रति संमिलित कृतज्ञता-प्रकाशन का एक मात्र सुंदर प्रकार है और किसी लौकिक अथवा व्यापार-बुद्धि से नहीं लिखा गया है।

महाविद्यालय, ज्वालापुर
मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशी
बुधवार संवत् १९९०

नरदेव शास्त्री,

❀ हरिः ॐ ❀

श्री श्री ६ गुरुवरपण्डितकाशीनाथशास्त्रिणां पत्रम् ।

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिचिता एव खलु ते,
समं यैः संवृद्धाः स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः ।
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना,
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ॥१॥

जीवद्भिः किं न दृश्यते यच्चेतसापि न चिन्तितं तदद्यानुभूयते । विषमा दैवगतिः । श्री स्वामिनः शुद्धबोधतीर्थस्य चरितानि मया स्मर्तव्यानीत्यसम्भाव्यमापतितम् । सर्वतो बलीयान् खलु भगवतः कालस्यानुभावः । प्रभवति भवितव्यता भगवती जन्मिनां जन्मजरामरणादिष्वतर्कितोपनतेषु । को वाऽत्र प्रतीकारः । कः खलु इहाचिन्त्ये उपालब्धव्यः । यत्सत्यं श्रुतमपि तस्य निधनं न श्रद्दधे । किं वा वीतरागस्य ब्रह्मभूयंगतस्य तस्य शोच्यता, यस्य पांचभौतिके वपुषि विपन्नेऽपि यशः शरीरं शाश्वतम् । आबाल्यात्तस्य गुरुसेवायामेवाभिनिवेशो, विद्यासु व्यसनं

परलोकाद्भयं, धर्मार्जने लोभोऽकार्ये विद्वेष इति दोषा अपि गुणैरभिभूय स्वानुकारमाकारिषत। तस्य चावदानानि गुरुकुल-काङ्गड़ी ज्वालापुरीय-महाविद्यालयादिरूपैः साक्षात्क्रियन्ते करिष्यन्ते च, न तु स्मर्तव्यानि। काङ्गड़ी गुरुकुलमहाविद्यालययोरभ्युदयाय यया यया विधयाऽसौ मां समध्येषितवान् तत्तदानींतना विदन्त्येव श्रीनरदेव-शास्त्रिमुख्याः। इदानीं ध्याता अपि तस्य गुणा भूयसा हृदयं निर्वेदयन्तीति—

इत्थं विलप्य दयितां विपिने विचिन्वन्,
रामो न तत्र धृतिमान्न च लक्ष्मणोऽभूत्।
एवंविधामपि कथां कथयन् स्ववाचा,
वल्मीकजन्ममुनिरेव कठोरचेताः॥

इति श्रीभोजराजोक्तिमनुसरता विरतमनोवृत्तिना विरम्यते।

लेखकः—पं० काशीनाथ शास्त्री

[श्री स्वामिशुद्धबोधतीर्थवृद्धगुरूणां पत्रमिदं काशीतः प्राप्तम्]

——————

॥ ॐ तत्सत् ॥

पद्य-पुष्पाञ्जलिः ।

यः शुद्धबोधः कृतपापरोधः,
प्रत्यर्थिवृन्दैरपि निर्निरोधः ।
तं दिव्यधामानमुदारकीर्तिं,
नमामि देवं नतभव्यपूर्तिम् ॥१॥

बेलोनवास्तव्यसनाढ्यविप्र-
वंशोद्भवो योद्भुतशक्तिशाली ।
गङ्गादिदत्तान्तपदाभिधेयः,
शिशुर्बभूवागमविद्विधेयः ॥२॥

विद्याधनं ब्राह्मणसत्तमानां,
निःश्रेयसप्राप्तिकृतोद्यमानाम् ।
इत्थं विनिश्चित्य महानुभावः,
स्वेष्टप्रसिध्यै शिवमानुनाव ॥३॥

विरक्तभावान्मननस्वभावा-
दौदार्य्यसम्पत्तिविशेषयोगाद्द ।
ऋषिं शिशुत्वेऽपि यमाहुरार्य्याः,

कथं न स स्यात्प्रथितोरुकार्य्यः ॥४॥

पण्द्वयं केवलमेव धन्यः,

संप्राप्य गेहाच्चलितोऽसदन्यः ।

अधीतिकामो मथुरां जगाम,

सोवास यत्रोदयसूरिनामा* ॥५॥

क्षुत्क्षामकंठः श्रमखिन्नदेहः,

स्वाध्यायसम्यग्द्धिहितोत्तमेहः ।

अभ्यागमत्तां श्रुततत्प्रशंसः,

स सद्गुरुं विप्रकुलावतंसः ॥६॥

तद्भक्तिधैर्य्यावगमाय सभ्यः,

सोप्यार्य्यभावो गुरुरिष्टभव्यः ।

गोसेवनं तेन यथाविधानं,

विधाप्य तं पाठितवान् सुभानम् ॥७॥

दाक्षीसुतव्याकरणं सुधीरः,

सम्यक्तयाधीत्य सवर्णिहीरः ।

ततः पदातिः सुमनाः सुनीतिः,

काशीं गतोऽभीष्टविशिष्टरीतिः ॥८॥

शास्त्रार्थविज्ञाननिधेरुदाराद्,

विद्वत्पुरोगीतयशःप्रसाराद् ।

---

* श्री-उदयप्रकाशपण्डितः स्वामिदयानन्दसतीर्थ्यः ।

पपाठ स श्रीहरनाम*दत्ताद्,
भाष्यं समस्तं निगमैकवित्ताद् ॥९॥

निःशेषशास्त्राध्ययनेद्धबोधाद्,
दुर्दान्तवादीन्द्रवचोनिरोधात्।

†श्रीकाशीनाथाख्यगुरोरनेकान्,
ग्रन्थान् समुत्पादितसद्विवेकान् ॥१०॥

विचित्रधीर्विज्ञवरो महेच्छ-
श्छात्रप्रियो धर्मधनः शुभेच्छः।

अधीत्य विद्यार्थिमनःप्रमोदं,
तनान सोऽधीतिरुचिप्रणोदम् ॥११॥

‡सीतादिरामान्तबुधात्मसिद्धात्
प्रत्यर्थिसन्दोहपुरःसमिद्धात्।

न्यायं यथारीति विशिष्टबुद्धिः,
सोऽधीत्य जज्ञे प्रथितप्रसिद्धिः ॥१२॥

अधीतविद्यो विधिवद् गुरुभ्यः,
काश्यामथाध्यापनकृत्यधीभ्यः।

* चूरुवास्तव्यमहाभाष्यगुरुः।

† छाता-बलियावास्तव्यव्याकरणवेदान्तगुरुः।

‡ श्री सीतारामशास्त्री द्राविड़ः, न्यायगुरुः।

स पाठयामास निबन्धजातं,
लेभे यशो येन जगत्प्रभातम् ।१३।

मनीषिरामादिमहानुभावाः,
पंचाम्बुदेशे विदितप्रभावाः ।

आकारयामासुरथो उदारं,
तमार्य्यगृह्यं धृतशास्त्रसारम् ।१४।

तत्रत्यविद्यालयमेत्य मान्यः,
शास्त्रप्रचाराधिरुचिर्वदान्यः ।

वर्षैः कियद्भिः कृतवान् यदेष,
कार्यं पटुर्वर्णयितुं स शेषः ।१५।

अनेकविद्याध्ययनप्रवीरान्,
स्वदेशसेवाव्रतिनः सुधीरान् ।

नृदेवमुख्यान् बहुशोऽपि शिष्यान्,
स शिक्षयामास सदर्थनिष्णान् ।१६।

यन्मन्त्रणातो जगदीडनीयः,
विद्यालयोऽभूत्किल काङ्गड़ीयः ।

कस्तं महान्तं सुगुणैर्लसन्तं,
सन्तं नवार्चेत्खलमन्तरेण ।१७।

स्वेच्छाविरुद्धं स तु कार्यजातं,
दृष्ट्वा कदाचित् किमपि प्रजातम् ।

तत्रापि तं यः प्रजहौ महस्वी,

केषां न नम्यः स महामनस्वी ।१८।

विद्याप्रचारप्रविधानविज्ञ-

स्ततो विनिर्गत्य दृढ़प्रतिज्ञः ।

उवास *भोगादिवने तपस्यन्,

मान्यो न कः स्यान्ननु तं नमस्यन् ।१९।

श्रीदर्शनानन्दसरस्वतीनां,

विद्याप्रचारोन्नतसत्कृतीनाम् ।

ज्वालापुरस्थं कलितव्यवस्थं,

विद्यालयं सन्निलयं प्रतापी ।२०।

स्वशिष्यवर्गैरथ भक्तलोकैः,

सहायकैः श्रीजयकृष्णकाद्यैः ।

आदाय पुष्टं कृतवान् सुसद्यः,

केषां न मान्यो निरवद्यविद्यः ।२१।

विद्यालयं तं भुवनप्रतिष्ठं,

विज्ञाय विज्ञार्यविशिष्टनिष्ठम् ।

†संन्यासिभावं विधिवद्दधार,

केषां न मान्यः स महोपकारः ।२२।

†भोगपुरे देहरादूनमण्डलान्तर्गते

*श्रीलस्वामिसुब्रह्मण्यदेवतीर्थात्

हा हन्त तं भव्यगुणं यतीनं,

सत्यप्रियं लोकहितं विलीनम् ।

श्रुत्वाद्य नश्चेतसि शोकदाहः.

प्रवर्त्तते लोचनवाःप्रवाहः ॥२३॥

श्रीपाणिनिव्याकरणं यथावत्,

कः पाठयेत्तेन विनाद्य तावत् ।

निःशुल्कशिक्षामधने जनेऽद्य

कोऽन्योऽथवा दातुमलं प्रसह्य ॥२४॥

नीचान्वयोद्भूतिमतोऽपि कोऽन्यः,

प्रबोधधन्यान् वितनोतु मान्यः।

न तत्समः कोऽपि बुधोऽचलायां,

कारुण्यवान् स्वार्थिमहाबलायाम् ।२५।

अाहो विना तं सुमनस्वितायाः,

निःस्वार्थतावारिसमुक्षितायाः ।

कः प्राणरक्षां कलितुं समर्थः,

सन्तिष्ठते किं न मुधा सदर्थः ॥२६॥

येऽध्यापिता हा सुतनिर्विशेषं,

व्यध्यायि यत्कार्यमथो विशेषम् ।

पितेव बाल्ये धृतशास्त्रसारा-

स्ते तं स्मरन्तः सरुदः कुमाराः ॥२७॥

प्रायोऽत्र सर्वत्र विशिष्टलोकस्त-
द्विप्रयोगे रचितोरुशोकः ।
किं तादृशो भव्यदृशः सुधीना,
भवे भवन्तीह सदाकुलीनाः ॥२८॥

हे देव किं तेन विना त्वदीयं,
कार्य्यं विनष्टं यददायि कष्टम् ।
कृते त्वया नः सहसापहृत्य,
तं देशिकं देशमणिं कुकृत्य ॥२९॥

स्वामिन यथेच्छमुपयाहि विमुक्तिधाम,
नेयं सृतिर्भवति संसृति वासयोग्या ।
युष्मादृशां विमलबोधजुपां महेच्छ,
स्थाने हि वृत्तिरुचिता परमे बुधानाम् ॥ ३० ॥

वेदान्तबोधपरिमार्जितभेदबुद्धे,
निष्कामकर्मकलनाजनितात्मशुद्धे ।
दुःखप्रसंगसहिते रहिते शुभेन,
नातः परं भवतु तेऽत्र भवे प्रवृत्तिः ॥ ३१ ॥

हे देव देहि परमां कृपया धृतिं ता-
माचार्यवर्य्यचरणाब्जवियोगदुःखम् ।
सोढुं भवेम पटवो वटुभिर्वयं यत्
स्वस्थस्मृतिर्वत हहो महतेऽसुखाय ॥ ३२ ॥

धैर्य्यं चित्त बधान मा स्म धिषणे मान्द्यं गमः किं त्वया,
शास्त्राभ्यासवियोग एव कलितो मत्तोऽपि मत्तादिव ।
त्यक्त्वा संसृतिबन्धनानि यतिराड् वेदान्तवेद्यं विभुं,
साक्षात्कृत्य गतोऽद्य मुक्तिपदवीं निःसीममोदस्थलीम् ॥ ३३ ॥

श्रीदिलीपदत्तोपाध्यायः

"वे दिन"

जब घरसे प्रातः या सायँ टहलने के लिए आश्रम के पीछेसे होता हुआ नहर की पटरी पर पहुँचता था तुरन्त यही विचार आता था कि आचार्य जी टहल कर लौट रहे होंगे, पूछेंगे कि व्यायाम करके आये हो या नहीं ? जिस दिन व्यायाम करके आता था उस दिन की तो कोई बात नहीं, नहीं तो भगवान् से यही मनाता था कि वे न पूछें। अथवा यह सोचता था कि तू ही प्रथम उस पंक्ति (सिद्धान्तकौमुदीकी फक्किका) की चर्चा या वह बात पूछ बैठना। बस इस तरह जान बचती थी, कभी नहीं भी।

जब इससे और पूर्व के अतीत का सिंहावलोकन करता हूँ तो एक अद्भुत प्रमोद-लहरी की फुरफुराहट सारे शरीर में आजाती है। मैं ७ या ८ वर्ष का था जब श्री १०८ पूज्य आचार्य जी उस छप्पर के विश्राम के संरक्षक थे। छप्परवाले विश्राम में बड़े ब्रह्मचारी रहते थे। श्री ६ आचार्य जी के निरीक्षण में मुझे भी वहीं रहना पड़ता था। प्रातः ४ बजे उठने की घण्टी बजती थी। तब आचार्य जी सब को स्नानार्थ गङ्गा पर भेज देते थे। स्वयं शौचादि से पहले ही निवृत्त हो चुकते थे, तैल मलने और व्यायाम

करने लगते थे। मुझे कहते थे कि कलके अष्टाध्यायी के सूत्र सुनाओ। मैं तख़्त के नीचे खड़ा होकर सूत्र बोलता था। जहाँ अटकता था आचार्य जी बतलाते जाते थे। ओह! यह एक अनुत्तर निष्कारण वात्सल्य था। याद करते ही चित्त भर आता है। आँखे उस भव्यमूर्ति के चरणों को ढूंढने लगती हैं।

समय परिवर्तनशील है। मैं महाविद्यालय छोड़ गया। कुछ वर्षों बाद फिर उसी गुरु के चरणों में पढ़ने आया। वही छप्पर की कुटी थी। अब तो आचार्य जी संन्यास लेचुके थे पर कुटिया पर गेरू से लिखा हुआ एक श्लोक अभीतक लिखा हुआ था। मैंने उसकी कथा आग्रह से पूछी। आचार्य जी ने थोड़ी और अन्य उपस्थित व्यक्तियोंने सब सविस्तर सुनायी। मालूम पड़ा कि आचार्य जी जब "डाम" पर गये थे तब यह श्लोक लिखकर "कुटी" परित्याग कर गये थे। श्लोक यह था—

अमित्रं कुरुते मित्रं, मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
शुभं वेत्त्यशुभं पापं, भद्रं दैवहतो नरः ॥

इस प्रकार जीवन में संयोग वियोग अनेक बार हुए। अब मैं भी वड़ा होगया, सब बातें अतीत के "इत्यादि" के समान कालके विस्तीर्ण पेट में समा गयीं।

सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथं, कालाय तस्मै नमः।

आज वे नहीं है, यदि कोई बात आज भी वैसी ही बनी है तो वह है उनकी वह कृपा, उनका वह प्रेम, उनका वह अकारण वात्सल्य, उसे याद करते ही मनकी दशा कुछ और ही होने लगती है। मन और आँखें पानी पानी हो जाती हैं। बस दबी हुई स्मृति को जगा जगा कर जी खोल कर रो लेने पर भी वह महनीय मूर्ति चित्रों के सिवाय कहीं न मिलेगी, तो फिर समझदार होकर यह काम क्यों करूं। सचमुच "एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः" के पूज्य आचार्य जी प्रत्यक्ष उदाहरण थे। कहाँ तक कहूं, वे कुछ और ही थे पर अब वैसे भी न मिलेंगे। अन्त में उस परोपकृति-व्रतधारी, आजन्म-ब्रह्मचारी के प्रातःस्मरणीय चरणों में श्रद्धापूर्वक यह "पद्यप्रसूनावलि" भेंट करता हूं:—

१

प्राणायामबलोच्चयेन जितवान्, कोऽन्तःपुरामष्टकम्,
शान्त्यौदार्यदमक्षमानिजपदं, चक्रु र्गुणास्तेऽष्टकम्।
आमृत्योश्च समध्यजीगपत कः, श्रीपाणिनीयाष्टकम्,
एतद्रे कणरेषणं प्रतिवचो, द्विःशुद्धबोधाष्टकम्॥

२

यो ब्रह्मचर्यमसिधारमहाव्रतं तत्,
पूर्णं व्यधत्त यतवाङ् मनसो मनस्वी।

तं संस्मृतेः पदमहमुंख एव नेयम,
श्रीशुद्धबोधयतितीर्थमहं नमामि ॥

३

बाल्येऽष्टकं प्रतिपदं प्रनिबोधपूर्वं
योऽध्यापयद् गुरुरनुग्रहवारिराशिः।
स्मृत्वा तमद्य समुपेतकथावशेषं,
ईशं विना विलपतां कतरा गतिः स्यात् ॥

४

(युग्मम्)

अध्याप्य बाणयुग-(२५)-सम्मितहायनानि,
यस्त्वेषणात्रयविमुक्त उदात्तकीर्तिः ॥
बाल्याद् यमान् सनियमाननुपाल्य दीक्षाम्,
गृह्णाति *संन्यसनतोऽसनतो मलानाम् ॥

५

विद्यालयीयजनतामतरे शुगब्धौ,
दत्ते विहाय सपदि स्म महाप्रयाणाम्।
विद्यालयाख्यवपुषो दृढपृष्ठवंशः
सैवागमज्ञवरमानसराजहंसः ॥

*श्री १०८ मद्दाचार्यपादानां दीक्षागुरवः खण्डनखण्ड-खाद्यसंशोधयितारः पूर्वाश्रमे श्रीकुलयशस्विशास्त्रि-नाम्ना प्रसिद्धाः श्री १०८ श्रीसुब्रह्मण्यदेवतीर्थपादाः परमहंसाः सन्ति।

६

बाल्येऽङ्कपालिलिलतो व्रतिनां समूहो
चित्रार्पितो व परिपश्यति ते मुखाब्जम् ।
आदिश्य देशिकवरानुगृहाण शिष्यान्,
किं नो घृणार्णव ! विमुञ्चसि मौनमुद्राम् ॥

७

अस्मासु कुत्रचिदपि प्रतियातवत्सु
स्वामिन् ! यदेव हृदयं परिदूयते स्म ।
केनाशनिप्रतिममद्य तदेव जात-
मस्माञ्जहाति तृणवद्भद पादलग्नान् ॥

८

गुणाँस्तदीयान् प्रगुणाननन्तान्,
अनन्तवंधोयुगलं विना कः ।
प्रभुर्भवेद्वर्णयितुं प्रतीष्ट-
श्रुद्रिष्टधीर्वैभवमार्त्त लोके ॥

९

आशैशवाद्यस्तपसां विचार्ये,
युङ्क्ते स्म चितं प्रभुभक्तिवित्तः ।
निजापदेशोऽव्यसकृद् वटुभ्यः
कौपीनबन्धस्य गुणानशंसीत् ॥

१०

दृष्ट्वैव योऽर्त्यां परिपीड्यमानान्,
जनान् भृशं कातरदुःखितोऽभूत् ।

आत्मीयवर्गं तु तथा ह्युपेत्य,
वाग्त्रयं तत्कुशलान्यपृच्छत् ॥

११

तन्मार्दवोपेतमुदात्तशीलम्,
लोकातिगं तत्सहजं च हार्दम्।
कृपातिरेकः स च वर्णवृन्दे,
सा माधुरी पाठनचातुरी सा ॥

१२

लोकप्रसिद्धेरपि भीरुता सा,
सा च प्रतिष्ठाकरणे घृणोक्तिः ।
प्रेमा दयानन्दमहर्षिवाक्ये,
क शुद्धबोधेन विनाद्य लोके* ॥

१३

यो यौवने लम्बितशीर्षबालः,
तपोव्रतोदग्रविशालभालः ।
विशालवक्षः स्थितरोमराजिः,
व्यराजताऽऽपूर्णवपुः सुवाजी ॥

१४

शनैः सरोजप्रतिमोऽस्य पाणिः,
पतन्नतिस्नेहभरात् शिरःसु ।
छात्रव्रजानामलिकस्थलीस्थः
महँस्तमोमोदविनोददक्षः ॥

---

* सुबन्तं तिङन्तश्च ।

१८

नियतन्नियतेरयं विलासो,
विलसत्या विधिविष्णुशङ्करं यन् ।
सुकृती जनितो मृतो यतीन्द्रो-
ऽन्वभवत्कष्टमनिष्टदिष्टयोगात् ॥

१६

दधतो यदि सौमनस्यमस्मिन्,
विषये सूक्ष्मतरं निरीक्षयामः ।
महतामहतां वयं तदानीं
गतिमन्ते सदृशीं विलोकयामः ॥

'परिशिष्टम्'—

स्मृत्वा तातमुदीर्णवारिविसरव्यालुप्तनेत्रद्वयः,
स्वरव्याकुलवर्णपद्धतिरथोऽप्रीभावभृत्कर्गलः ।
रोमाञ्चेन च वेपथोः सहचरेणात्ताखिलाङ्गोऽधुना,
व्यामोहाकुलमानसो 'हरि' कविर्नो भूरि वक्तु प्रभुः ॥

हरिदत्तशास्त्री पञ्चतीर्थः

महाविद्यालयाचार्यः

गुरुशोकपञ्चकम्

१

यस्माद् ब्रह्मैकनिष्ठान् कवलयसि भुवो भूसुरान् भूरिसूरान,
लोकालोकप्रतिष्ठान् यम ! गुणगणैस्तान् दविष्ठान् वरिष्ठान् ।
हित्वा स्वात्मप्रकर्षाद्विरहितमनुजान् यान् निजान् वेत्सि मूढ,
तुभ्यं स्थाने विधात्रा शितिमहिषमहायानमस्मात्प्रदत्तम् ॥

२

तं भास्करं पद्मविकोचदक्षं, सहैव पद्मेन निपात्य तुष्टः ।
यन्नाभवः क्रूर करालकाल ! तच्छुद्धबोधादधुना प्रसीद ॥

३

हा शुद्धबोध यतिराज ! किमेतदार्यै-
रत्याहितं विहितमद्य विलापदूनान् ।
अस्मान्विहाय सहसा मृदुलात्मनापि,
यत्स्वीकृतं सपदि देवनिवासभूयम् ॥

(४)

ज्ञातं यदेषु सकलेषु गुरोः कुलेषु,
धत्ते पदं न सकलं सुरभारतीयम् ।
वक्तुं वरेण्य विबुधानिदमेव वृत्तं,
त्वं वीतशोक ! गतवानसि देवलोकम् ॥

५

अस्तो व्याकृति-तंत्रपङ्कजवनी-व्याकोचदीक्षारविः,
ध्वस्तश्छात्रसमूहशैलजडतापक्षच्छिदुग्रः पविः ।
स्रस्तश्चार्यसमाजमान्यनियमोद्धारेऽस्थिदाता शिबिः,
शस्तः पाठननीतिरीतिचतुरो हा ! शुद्धबोधः कविः ।

काशीनाथशर्मा काव्यतीर्थः

(श्रीपण्डितपद्मसिंहशर्मणो ज्येष्ठपुत्रः
एतर्हि महाविद्यालयसहायक-मुख्याधिष्ठाता)

श्रीशुद्धबोधयतिना, चरितं चरितं शुभम् ।
संकीर्त्तयन्ति विद्वांसो, यतस्तत्समुपास्यताम् ॥१॥

अदृष्यं यस्य वैदुष्यं, सदयं हृदयन्तथा ।
मूर्त्तिः शान्तिमयी यस्य, वचः पथ्यं मनोहरम् ॥२॥

जीवनं यस्य जीवानां, जीवनाय नचान्यथा ।
कीर्त्तितव्यो महात्मासौ, प्रातः स्मर्त्तव्य एव च ॥३॥

अधीतवेदवेदाङ्गो,रचिताष्टकवृत्तिकः ।
रक्षिता धर्मसेतूनां, सन्नतानाञ्च रक्षिता ॥४॥

शान्तो दान्तस्तितिक्षुश्च, परात्मचरिते रतः ।
विद्वद्भिः साधुभिः सम्यक्, सेवया परिरक्षितः ॥५॥

छात्राणां द्विशती यत्राध्यापकानाञ्च विशंतिः ।
महाविद्यालयो ज्वालापुरीयो येन पालितः ॥६॥
उपदेशपरो नित्यं, नृणामुन्नतिहेतवे ।
शरण्यं चार्त्तलोकानामरण्यं यस्य वै गृहम् ॥७॥
परित्यज्योभयं लोकं, योऽमृतत्वमुपागतः ।
तं यतिपूवरं लोके, भ्रान्ता ये ते मृतं जगुः ॥८॥
शुद्धबोधाष्टकमिदं, रचितं श्रद्धया मया ।
तुष्यत्वनेन भगवान्, सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥९॥

छेदीप्रसादशर्मणः
श्रद्धाञ्जलिः
महाविद्यालयव्याकरणाचार्यस्य
काव्यतीर्थादिविविधोपाधियुतस्य ।

स्वस्मिन् जने क्रीडति कश्चिदाह,
स्वारिं नरं जेतुमिहेहते वा ।
मन्येऽविकल्पा कुलचेतसाहम्,
विश्वाम्भरान् द्योतयतीति देवः ॥

२

मद्दिष्टदो वा नरदेवशास्त्री,
यत् कृत्यभारं शिरसा व्यधत्त ॥
यदीह धास्ये न सहायलेशम्,
मत्तत्सवर्गाक्षरनाम व्यर्थम् ॥

३

असंख्यसंख्याकलनानुयोगे,
यदीह मूकीभवनं नु गर्हा ।
महामहिम्नां सुचरित्रचित्रम्,
अपाटवं संघटितुं तथा मे ॥

४

वृन्दावनादत्र यदाहमेतो,
योगाश्रमेऽध्यापकतामुपेतः ।
श्रीस्वामिनार्य्येण नु शुद्धबोधे-
न मेलितो मां सह देवदत्तः ॥

५

यो देवदत्त इह मत्सविधे वसन् स,
देवप्रियत्वमगमत् किमु तत् प्रगेयम् ।
सौजन्यचन्दनयशःकुमुदेन लोका-
नाह्लादयन् सुमनसां मुदमातनोति ॥

६

नित्यं वित्तविहीनदीनजनसात्,
कुर्वन् सवित्तं निजम्

षड्वर्गारिवशं विधातुमनिशं,
दण्डप्रयोगं दधत् ।
सम्राजं सजुषं निरीक्ष्य,
जनतायां शुद्धबोधेन हि
मोहौघं विशृणन्नतीत्य विलसन्,
मे स्वाक्षिलक्षीकृतः ॥

७

धने विरागं भृत एव रागं,
धृतो धृतौ संस्कृतवाग्विभूतेः ।
श्रुतिस्मृतिभ्यां प्रमितेषु श्रद्धां,
तदुत्पथानार्य्यपथेष्वश्रद्धाम् ॥

८

शिक्षां विना नोन्नतिरस्ति कस्यचि-
दुद्घाहुनेत्थं ब्रुवते समस्ताः ।
अतोऽस्य दीक्षां च ददत् स्वभिक्षां,
लक्ष्मस्य कक्षां कृतवान् स्वमायुः ॥

९

शिक्षाश्रिता भारतवासिनाधुना,
धुनाति संधक्ष्यति च स्वसभ्यताम् ॥
विशुद्धसिद्धान्तमिमं हि वैदिकं,
समूलमुन्मूलयितुं नु सम्भवेत् ॥

१०

चेखिद्यते चित्तमिहेदृशं नः,
स्वदेशवस्त्वादिबहिष्कृतेन ।

यथेह पाश्चात्यकुशिक्षणेन,
प्राचीनशिक्षामणिलुण्ठनाग्रः ॥

११

इत्थं विचिन्त्यार्य्यजनोपकारकम,
ज्वालापुरे स्थापितमातख्यातिकम्।
विद्याविनोदाश्रितवर्णिलिङ्गिनाम्,
निःशुल्कशिक्षाभवनं विराजते ॥

१२

समाधिनाशांपि गरिष्ठ एव,
नचास्य लेशाक्षतता वरिष्ठा ।
मत्वेवमत्र क्षणयापनेन,
स्वायुः समग्रं हितसाच्चकार ॥

१३

अतोऽस्य सेवां प्रति शक्तिरस्ति चेत्
लक्ष्यं तदीयं नितरां हि रक्ष्यम् ।
पुत्रं स्वकीयं विपरीतगत्वरम्,
जहाति नो किं जनको जगत्याम् ॥

१४

इदं मया स्वामिकृतेषु मध्ये,
रहस्यमात्रं पुरतो बुधानाम्।
समर्पितं नेतरमञ्जुवृत्तम्,
ह्यशक्तितो लच्यविनाशशङ्का ॥

१५

मदीयदोषो नरदेवशास्त्रिणाम्,
यतोऽज्ञवर्य्यं व्यदधात् स्वकाज्ञाम् ।
समर्हणा वा भवतां विभूतिः
यतोप्रनेता गुणदोषभागी ॥

योगाश्रममहाविद्यालयः } श्रीद्रव्येशझा-सर्वदर्शनसूरिः
मायापुरी } व्याकरणवेदान्ताचार्य्यः, मुख्याध्यापकः

तस्य पुत्रेण १३ वयस्केन सदानन्दशर्म्मणा पितृमित्रमहामहिम-श्रीनरदेवशास्त्रिवेदतीर्थान्तिके प्रेमभरेण लिखित्वेदं समर्पितम् ।

श्री शिवः शरणम्

आचार्याणां स्वर्ग्यानम्

गुरुकुलं हि प्राचीनताचिह्नमिति तन्नाम्नैव प्रकटीभवति। तदारम्भकाले हि प्राचीनता-पक्षपातिनः आर्यसभ्यताभावनया भावितान्तःकरणास्तद्रक्षणसक्षणाः कतिचन ब्रह्मवंशप्रसूता विद्या-विभववन्तो महानुभावा अपि तत्र स्वर्गतमुन्शीरामवर्मणः प्रधानकार्यनिर्वाहनैर्वाहिकाजीवनैः साहाय्यमनुतिष्ठन्तः प्रारम्भिके कर्मण्यासन् संस्थाकार्यकर्तारः। तेषु प्राधान्येनोल्लेखनीयानि नामानि तान्येव, यानि ज्वालापुरमहाविद्यालयेतिहासलेखनसमये कदाचित्स्वर्णाक्षरैरङ्कनीयानि स्युः; तानि च-श्री पं० गंगादत्त-शर्माऽऽचार्यः, श्री पं० भीमसेनशर्माऽऽजीवनम्महाविद्यालय-मुख्याध्यापकः, श्री पं० पद्मसिंहशर्मा भारतोदयसंपादकः, श्री नरदेवशास्त्री वेदतीर्थो जेलतीर्थश्च वेदाध्यापकः प्रबन्ध-संसाधकश्चेति।

एष्वाचार्यमहोदयो गुरुकुले तिष्ठन् स्वीयं ब्रह्मचर्यव्रतपालनं कुर्वन् तत्रत्येभ्यश्छात्रेभ्यो दीक्षादानेन व्याकरणाध्यापनेन च स्वीयमाचार्यपदं सफलतामनयत्। शनैःशनैरासीच्छात्रहृदये जनतामनसि च तपस्विन आचार्यस्य कृते परमपूज्यस्थानम्। परमिदं नाभवच्चिराय, सहसा ला० मुन्शीरामवर्मात्मनि महत्वमा-स्थापयितुं केनापि कारणान्तरेण वा प्रेरित आचार्यस्य दीक्षादान-कृत्यमात्मसादकरोत्। आर्षपद्धतिमवलम्बमान आचार्यो बोधया-मास धार्मिकीं सरणिं, निदर्शयामासार्षपद्धतिं, न च कथमपिव् वधे

पाश्चात्यशिक्षाशिक्षितोऽनधिगतशास्त्रार्थो लालामुन्शीरामः। मुहुः प्रबोधनेनापि यदोर्ध्वनिर्दिष्टा न तेऽधिजग्मुस्तस्मिन् वास्तविकं प्रेम प्राचीनतायाः, अनुदिनं पाश्चात्याचारप्रचारप्रवणं तन्मनोऽभिलक्ष्य युगपदेवात्यजन् धनेन समृद्धम् भवनैः सुप्रवृद्धम् बाह्यसुषमा-सुशोभितमपि गुरुकुलपदम्। परित्यज्य च ज्वालापुरे गंगातट एव स्वसहार्थिभिरुल्लिखितमहानुभावैः साकं दिवंगतस्यार्षपद्धतिपक्ष-पातिनो वेदभक्तस्य सीतारामस्योद्याने वसतिं स्वीचक्रुः।

तत्रैव "क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे" इति कस्याप्यभियुक्तस्योक्तिं चरितार्थयन्तश्चत्वारोऽपि ब्राह्मणा ज्ञान-धनास्तपोबला स्वामिना दिवंगतेन श्रीदर्शनानन्देन सहकृता निश्शुल्कस्यास्य ज्वालापुरीयमहाविद्यालयस्य शिलान्यासमकुर्वन्। नचाभवत्कस्यापि शक्तिर्वेदविदुषश्चतुरोऽपि ब्राह्मणान्निराकृत्य महाविद्यालयं भङ्क्तुं, यद्यपि अनेकशोऽनुष्ठितान्यपि विद्यालय-विरोधिभिस्तथाविधानि कर्माणि।

आचार्यमहोदयः स्वसहार्थिभिः साकं महाविद्यालयं निर्माय बालवत्पालनं तस्यान्वतिष्ठत्। आमरणान्तं निश्शुल्कमाचार्यपदं निरवहत्। आसीदेतस्य महानुभावस्य त्यागशीलता, तस्या इदमेव निदर्शनं पर्याप्तं स्यात् यत्समस्तस्य महाविद्यालयस्य सञ्चालनं कुर्वन्नपि स्वयं कुटीरक एकान्ते न्यवसत्। कालेन च परित्यक्त-गोवर्धनपीठीयश्रीशङ्कराचार्याधिकारस्य महाविदुषः स्वर्गवासिनः श्रीसुब्रह्मण्यदेवतीर्थस्य शिष्यत्वमङ्गीकृत्य चतुर्थाश्रमं प्रविशन् शुद्धबोधतीर्थनाम्ना परिचित आसीत्।

अभवच्चायमार्षग्रन्थेषु महादरो, बहुशोऽष्टाध्यायीपाठने विदुषा-मादरशैथिल्यं निरीक्ष्यापि सोरस्ताडं छात्रान् बोधयति स्म

कारयति स्म च नूतनग्रन्थैस्तुल्यामेव व्युत्पत्तिमित्यवगतं निषेविताचार्यचरणेभ्यश्छात्रेभ्यः।

नूनमेतादृशा एव सन्तो ब्राह्मणा महाभाष्यकर्तुर्महर्षेः पतञ्जलेरुक्तिं "ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च" इत्येतां चरितार्थयन्ति। दिवं सनाथितवतामुत नित्यशुद्धबुद्धस्वरूपे लयमवाप्तवतां शुद्धबोधतीर्थानां कतिचन मासा व्यतीताः, परसंस्कृतानुरागिण इतरेऽपि वारमेकं कृतालापा ये रुग्णावस्थातः प्राक्तनीं शरीरदशां दृष्टवन्तो, न ते सहसा प्रतिपद्यन्ते स्वामिनः स्वर्गमनम्। नात्र संदेहलेशोऽपि यन्माता सुरभारती, अकारणसेवकानां विरहेण दीनदीनाश्रुकलुषा न धैर्यं धरिष्यतीति सा शोचनीयतामुपगतेव प्रतिभाति।

नचार्यचरणाः शोच्या यैः स्वकरतललालिता स्ववचःपीयूषपावितान्तस्तला अपि तां धुरं निर्वोढुं समर्थीकृताः कार्यधुरं वहन्तोऽपि प्रत्यक्षीकृताश्छात्राः।

वयमिह परमात्मानं विश्वरूपिणं सर्वतोभावेनाभ्यर्थयामहे यथा स्वामिनां स्यात्स्वरूपानुरूपा सद्गतिरिति शम् ॥

लीलाधरशास्त्री

ऋषिकुलाचार्यः

अहो त्यागः !

वसु-बाण-निधि-निशेश-मिते (१९५८) वत्सरे यदाहं बिल्व-वनेऽध्यापयन्नासम्, तदानीमेव नरदेवप्रभृतीन् कतिपयांश्छात्रा-न्सहादाय चरित्रनायकमहोदयाः (श्री पं० गङ्गादत्तशास्त्री) बिल्ववनं (बेलौन)स्वेन शुभागमनेनालमकार्षुः । प्रसङ्गादेकस्मिन् दिने मया 'णेरणौ यत्कर्म णौ चेत्स कर्ताऽनाध्याने' सूत्रस्य व्याख्यां पृष्टाश्शास्त्रिमहानुभावाः परमरमणीयतामनुप्रपन्नया सरलसरलया शैल्योक्तसूत्रन्तथाव्याचचक्षिरे यथा श्रुत्वैव मदीयहृदयपटले संकल्पोऽयमुदयमभजद् यत् किंचित्कालं सहोषित्वा नव्य-व्याकरण-श्रवणङ्क्रियेत । अथ कानिचिदहानि तत्रातिवाह्य हरिद्वारमयासी-च्छास्त्रिमहोदयः । अहमपि पाठशालाभारमध्यापनकार्यञ्च ब्रह्म-चारिषु योगानन्दमहाभागेषु (ये पञ्चाम्बुप्रान्तादेव मया सहागता आसन्) समासज्य स्वसंकल्पितार्थसिद्ध्यर्थं हरिद्वारमयासिषम् । तत्र गत्वाचाज्ञासिषम यत् चरितनायकमहानुभावाः बिल्ववना-त्परावृत्यैव जालन्धरम्प्राम्स्थिषत । अहमपि तत्रैव प्रागाम । शास्त्रि-महानुभावास्तु श्रीलालामुन्शीरामस्य रम्ये हर्म्ये वासमकल्पयन् । अहञ्चार्यसमाजमन्दिरस्यैकतमे वेश्मनि न्यवात्सम् ।

परन्तु, तदानीं शास्त्रिमहाभागाः लालामुन्शीरामेण संगत्यै-कस्य महतो विद्यालयस्यायोजनासंकल्पेऽहर्निशं निमग्ना अतिष्ठन् । कदाचित्किमपि कदाचित् किमपि स्थानमवेक्षन्ते स्म । एवमध्यापने-ऽल्पाल्प एव समयो व्ययीभवति स्म ।

"भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः" लोकोक्तिरियं चरितार्थाभूत्। अध्यापनसुखं गतम्, आचारो गतः, परं संकल्पस्य लेशोऽपि नाभूत्पूर्णः।

अथातिक्रामति कस्मिंश्चित्काले सिकन्दराबादीयगुरुकुल-सञ्चालकैः सानुरोधमाहूताः शास्त्रिवर्याः सिकन्दराबादगुरुकुल-माजग्मुः। मह्यं किंचित् संस्कारकार्यमध्यापनकार्यञ्च समर्पिपन्। स्वयं च तस्यैव नवीनगुरुकुलस्यायोजनामनोराज्ये निमग्ना अवास्थिपत। शास्त्रचर्चाल्पीयस्येव श्रवणयोर्गोचरतामभजत। तस्मिन्नेवावसरे श्रीपण्डितसिद्धमहाराजाः ये शास्त्रिणामभिन्नहृदयाणि मित्राणि सतीर्थ्या आसन्—अध्यापयितुङ्गुरुकुलमिममुपागमन्। तेभ्योऽपि किंचित् शास्त्रश्रवणस्य सौभाग्यम्मयालम्भि। एवम् अनुमानतोऽष्ट-मासावधि मया तेषां सहवासस्य सुखमवापि। छात्रवात्सल्यं कर्मचारिणां सप्रेम कार्येषु प्रेरणञ्च तेषां प्रशस्यतममासीत्।

अहं रोगी भूत्वा पुनर्बिल्ववनं समागमम्। शास्त्रिणस्तु अतीतेषु केषुचिद्दिनेषु नवसंस्थापिते कांगड़ीगुरुकुलेऽगच्छन्। तत्रत्यञ्चाचार्यपदमलमकुर्वन्। अनन्तरं ततोऽपि पृथग्भूय स्वातंत्र्येण महाविद्यालयसंस्थायाः कार्यं महतोत्साहेनाचीचलन्। यदा कदाचित् ततो बिल्ववने आयान्ति स्म।

अथाहमपि बिल्ववनात् नरवरे समायाम्। स्वतन्त्रं विद्यालयं संचालयन् भगवत्या भागीरथ्याः पुण्यतटे निवासं च समकल्पयम् मानसे। नरवरविद्यालयेऽपि यदाकदाचिदायान्ति स्म। एकस्मिन् वर्षे तत्रैव च चातुर्मास्यमत्यवीवहन्। एकदात्र श्री १००८ स्वामि-शंकराचार्यमधुसूदनतीर्थमहोदयाः (गोवर्धनमठाधीशाः) बिल्व-

वनं समुपेताः। मदभ्यर्थनयागत्य नरवरविद्यालयेऽपि मासार्धमूषुः। तदानीमेव श्रीभारतीकृष्णतीर्थमहानुभावाः (वर्तमानशंकराचार्याः गोवर्धनमठीयाः) अपि नरवरमलंकृतवन्तः। श्री १०८ षड्दर्शनाचार्या विश्वेश्वराश्रमदण्डिनोऽपि अत्रैवासन्। श्री १०८ स्वामिशुद्धबोधतीर्थमहानुभावा अपि विद्यालयमिममलंकुर्वन्ति स्म।

अस्माकमिच्छाभूत् यदेते शङ्कराचार्याणामुत्तराधिकारिणो भवेयुरिति। शङ्कराचार्या अपि हृदयेन अभिलषन्ति स्म यदिमे मठकार्यं स्वस्मिन्नासञ्जयन्तु। परन्तु, शास्त्रिमहाभागेन तु दण्डोऽपि त्यक्त आसीत्। तेषान्तु ज्वालापुरमहाविद्यालय एव परमप्रेमास्पदमासीत्।

माम् आगरावास्तव्यश्रीभीमसेनपण्डितश्च मुहुर्मुहुः प्रैरिरन् शास्त्रिमहोदया यद् "भवान् संन्यासी भूत्वा गोवर्धनमठाधिकारं गृह्णातु" इति।

अस्माकन्तु "भवन्त एवात्राधिकारिणः भवन्त एषामुपनीताः शिष्याः प्रशिष्याश्च सन्ति" इति प्रबलोऽनुरोध आसीत्।

तस्मिन्नेवावसरे मया तेभ्यः पञ्चदशीश्रवणमारब्धम्। एकदिने पाठान्ते शास्त्रिवर्यैरुक्तम्, "पञ्चदशी रमणीयो ग्रन्थः, कथं स्वामिभिः (दयानन्दसरस्वतीभिः) खण्डितः। अस्य स्वाध्यायः प्रत्यहङ्कर्तव्यः"।

अनेकवारं मामुक्तवन्तः "महाविद्यालयं चलन्तु, तत्रैव कार्यं करणीयम्, मिलित्वा कार्यं शोभनं भवतीति"। इतो विद्यालयादपि प्रतिभावतश्छात्राँस्तत्र नेतुमनवरतञ्चेष्टन्ते स्म। ज्वालापुर-

महाविद्यालयप्रेम्णा सर्वातिशायि पदमपि (गोवर्धनमठाधीशत्त्वम) नाभिलापास्पदं कृतम्। अहर्निशं विद्यालयवृद्धौ व्यापृता अवातिष्ठन्त।

गते हायने हृषीकेशे श्रीपण्डितबालकरामवेदपाठिना श्रौताधानपूर्वकं चातुर्मास्ययागोऽक्रियत। तत्रेमे स्वामिनः सादरमाहूता आसन्। तस्मिन् समये तेषां श्रीमुखात् आर्यसामाजिकानां कृतघ्नतासूचकानि यान्यक्षराणि निरगुस्तानि शास्त्रिणां हृदयानुतापं सम्यक् व्यंजयन्ति।

श्रीजीवनदत्तशर्मा

नरवर-राजघाटतः } नरवरसाङ्गवेदविद्यालयसंस्थापकः सञ्चालकश्च

ओ३म्।

भावकुसुमानि।

सुगृहीतनामधेयाः प्रातःस्मरणीयाः विद्वद्वृन्दवन्दनीयाः पण्डितमण्डलमण्डनाः श्रीमन्तो गुरुवर्य्याः शुद्धबोधतीर्थचरणाः!

साम्प्रतमपि स्मृतिपथमवतरति स शब्दशास्त्राध्ययनजनितपरितोषः शैशवः समयः, स्मारयतितरां च तत्र श्रीमतां प्रशान्तगभीरामपि हास्यरसमनोहरां पुण्यमूर्त्तिम्।

यथाऽऽमरणं मातृचरणस्नेहः स्मर्य्यते वत्सैस्तथैव श्रीमतां मनीषिणां वत्सलेषु शिष्येष्वनुरागः सम्प्रत्यपि स्मर्य्यते तैः।

देवजनश्लाघ्याः। व्याकृतितन्त्रनिष्णाताः सन्तस्तत्र श्रीमन्त एवेदानीं महर्षिदयानन्दसरस्वतीप्रोक्तव्याकरणपाठनप्रकारं प्रचालयितुमलमभूवन्।

तत्र श्रीमतां संस्कृतभाषां सर्वजनसुलभां कर्तुमनल्पः कल्पनातीतः प्रेमा केन किल कल्पयितुन्न शक्यः? एतदर्थमेवामुष्यार्य्यजगत एतर्हि विद्योतमानासु संस्थासूषित्वा विशिष्टं कार्यं यावज्जीवं कृतम्, विहितश्च प्रचुरतम आर्य्यभाषाप्रचारः।

द्विजकुलचन्द्राणां श्रीमतां यशश्चन्द्रिका न केवलमत्र भवतां विनेयतनयहृदयकैरवकुलानि, अपि त्वखिलविद्याविलासिवृन्दमनःकुमुदानि विकासयति। यथा प्रदीप आत्मानं प्रहूय वस्तुजातं प्रकाशयति तथैवानुष्ठितं श्रीमच्चरणैः। यद्यपि श्रीमद्भिर्नश्वरं शरीरं त्यक्तं परन्तु परःसहस्रपुरुषेषु मनुष्यत्वं सिक्तमिति तु सुविदितमेव सर्वेषाम्।

यद्यपि श्रीमतां विनश्वरं शरीरमस्मत्तस्तिरोहितं तथापि श्रीमतां चितिशक्तिस्त्वस्मास्वतितरां स्निह्यति, परिभ्रमति चात्रैवेति मन्ये। भावत्कोऽसौ वात्सल्यपूर्णो हस्तः, ते स्नेहपरिपूर्णाः शब्दाः, तदनिर्वचनीयं प्रेम सर्वमप्येतन्मदर्थमजरामरवत्स्थास्यति। एभिर्भावकुसुमैः श्रद्धाञ्जलिं समर्पयन्विरमत्येष—

भवदन्तेवासी

आर्यकन्यामहाविद्यालयः,
बड़ोदा।

महेन्द्रनाथः पटेलः
शास्त्री, सांख्यतीर्थः

———

महाविद्यालयछात्रचरस्य निगेम्बो (लंका) वास्तव्यस्य
श्रील-अभयसिंहस्य न्यायशास्त्रिणः)

अस्त्युत्तरदिग्भागे हिमगिर्य्युपत्यकायां हरिद्वारोपान्ते ज्वालापुरप्रदेशे जान्हवीकुल्योपकण्ठे मध्येगङ्गपुरि प्राचीनशिक्षादीक्षामुपासकानां प्रीतिहेतुर्महाविद्यालयनाम्नी पुण्यभूमिः । हिमवद्विन्ध्यमध्यगताऽऽर्यावर्त्तभूरिव जान्हवीतत्कुल्ययोर्मध्ये चकास्ति सा मे गुर्वी गुरुभूमिः ।

यत्र मातुपितुराज्ञया वा त्यक्तगृहा वा ब्रह्मचर्य्यव्रतमुपादधानाः शताधिकं पञ्चाशद्भिनेया वर्णिनः । तेषु कदाचिद् बालाः पित्रोः स्मारं स्मारं रुदन्ति, क्रीडन्तः परस्परं कलहायन्ते च । अन्योन्यैस्ताडिता वैकेऽपरं दण्डेन नियोजयितुकामा गुरून् अभिशासति । बुभुक्षया वाऽसमय एव भोक्तुं किञ्चिद्वाञ्छन्ति । ब्राह्मे मुहुर्त्ते जागरणे, हेमन्ते शिशिरे वा प्रातःसवने, यमनियमपरिपालने, कदाचिन्नित्यकर्मण्यध्ययनाध्यापनादौ प्रमाद्यन्ति ।

युवानोऽपि स्वाध्याये प्रमाद्यन्त इव तपश्चरणे उदासीना, गृहगमने उत्का इव, क्षणिकविरागमाश्रित्य विजने गन्तुकामा इव,

प्रमादेन विनायकवचोऽवधीरयन्त इव, नितान्तमध्ययने तत्परी-भूय अस्वस्था इव केचित्कदाचिद् भवन्ति। तांश्च प्रजा पृथिवी-पतिरिव कुलपतिस्त्वं विनेयनेयनिपुणोऽसि न तु भेदेन। न खलु कदाचिद् गुरुणा राज्ञा वा भेदमाश्रित्य शिष्याः प्रजा वा विनि-येरन्। ये च तथाऽऽचरन्ति ते शासकापसदाः।

हे शुद्धबोध, गुरो, कृपालो ! त्वदन्तिके क्रीडन् तवैव करुणारसात्पालितः पोषितश्चाहम्। त्वया हि आदित एव अमर-वचःक्षीरेणोन्नीतोऽस्मि। अग्रेऽपि तवाशिषः कमिष्ये यदि गृह्णीयाः शरीरम्। त्वदुपात्तविद्यर्णमपाकर्त्तुं यतिष्ये यथाशक्ति विद्या-प्रचारेण। कदा नु खलु श्रीदेवपादानां पदाम्बुरुहं नमस्यामि। अस्मिन् जन्मनि तु असम्भवमेतत्। जन्मान्तरेऽपि तत्रभवता-मन्तेवासित्वमुपगत्यात्मानं कृतार्थयितुकामोऽस्मि।

यस्य देवे परा भक्तिः
यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः
प्रकाशन्ते महात्मनः॥

यद्येद्वचस्तथ्यं तर्हि मम कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्तां सर्वत्र सिंहलद्वीपे, यतो हि भक्तोऽहमत्रभवतां देवपादानाम्। अनुरक्तः सदैव श्रीगुरुचरणसरोरुहेषु।

अयं लङ्कावास्तव्य एतर्हि काश्यां शास्त्राण्यधीते। तस्य लेखोऽय-मविकलं प्रकाश्यते।

१

सकलकुशलवल्ली,

पुष्करावर्त्तमेघः

दुरिततिमिरभानुः,

कल्पवृक्षोपमानः ॥

भवजलनिधिपोतः,

सर्वसम्पत्तिहेतुः ।

स भवतु सततं नः,

श्रेयसे शुद्धबोधः ॥

श्री १०८ स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी

अत्युच्चकोटि के त्यागी, तपस्वी, संन्यासी थे ।

—महामना मालवीय ।

२

ते च युवानस्ता ग्रामसम्पदस्तच्च तारुण्यम् ।
आख्यानकमिव लोकः कथयति वयमपि तच्छृणुमः ॥

चन्द्रदत्तशास्त्री काव्यतीर्थः
स्रुघ्नपत्तनस्थः ।

मेरा दर्शन-सौभाग्य

* (विद्याधरशास्त्री M. A. साहित्यशिरोमणि
संस्कृत-प्रोफेसर डूंगरकालेज बीकानेर)

पूर्णतया निश्चित नहीं परन्तु संभवतः १९११ अथवा १२ में महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर मैं मेरे स्वर्गीय पितामह-चरणों के साथ दिन के ३ बजे आश्रम में पहुँचा था। उस समय आचार्यवर संन्यस्ताश्रम में नहीं थे। मैं ९-१० वर्षका ही था। धुंधली स्मृति में इतनाही याद है कि एक सड़क पर बहुत से वृक्ष लगे हुए थे और वहाँ मार्जनी को हाथ में लिये एक महत्तर सज्जन ने पितामह से नमस्ते की थी। सड़क को पार कर हम एक कैम्प में पहुँचे। वहां एक आराम कुर्सी पड़ी हुई थी और उसके पासही खड़े हुए श्री प्रातःस्मरणीय शुद्धबोध जी ने पितामह का स्वागत किया था। हमारे पहुँचते ही वे हमें एक जनता से भरे हुए खुले मैदान में लेगये जहां पितामह सभापति बने थे।

यह पहला दृश्य है, इस में मैंने उनको प्रणाम किया था और उन्हों ने आशीर्वाद देकर पूछाथा कि मैं क्या पढ़ता हूँ। इसके बाद मेरा उनसे १९२६ तक कोई अन्य साक्षात्कार नहीं हुआ। हाँ बीचमें जब आपने संन्यास ग्रहण किया उस समय चित्रमय जगत् में आपकी जीवनी पढ़ी थी और उसमें महाभाष्य के अध्ययन के सम्बध में पितामह का नाम उल्लिखित था। इतने

* भाष्याचार्य्य श्री पं० हरनामदत्त के पौत्र।

प्रकाण्ड विद्वान् की इस गुरुभक्ति का प्रभाव मेरे हृदय पर अवश्य हुआ था।

द्वितीय अवसर १९२६ का है। देहरादून में हिन्दी साहित्य सम्मेलन था। बीकानेर से जाता हुआ एक दिन बीच में ज्वालापुर महाविद्यालय में भी ठहर गया। वहां प्रातःकाल ही पहुँचा था। मैं जहाँ ठहरा था वहाँ पास ही में आचार्य-कुटी थी। प्रातःकाल ही पहुँचा तो पता लगा कि आचार्यवर भ्रमणार्थ गये हुए हैं। बड़ा ठंडा प्रातःकाल था। मुझे एक वृद्ध के इस भ्रमण पर आश्चर्य अवश्य हुआ पर यह उनका दैनिक कृत्य था। मैं स्नानादि से निवृत्त होकर फिर आया, उस समय कुटी के बरामदे में एक तख्त पर मैंने आचार्य-चरणों के दर्शन किये और अपना परिचय दिया। उस समय की उन की प्रसन्नता को मैं विस्मृत नहीं कर सकता। कुशल प्रश्नानन्तर शास्त्रीय चर्चा प्रारंभ होगई और मैंने अपने कितने ही शंकास्थलों को आचार्यप्रवर के सम्मुख उपस्थित कर दिया और प्रत्येक का तृप्तिकारी उत्तर पाकर कृतार्थ होगया।

उस समय बरामदे में धूप आ रही थी और स्थान भी वह परम स्वच्छ था। सूर्य भगवान् अपनी पूर्ण प्रभा चमका रहे थे। पर यह अलङ्कार नहीं अपितु अब तक प्रत्यक्ष दीख रहा है कि आचार्य के मुखमण्डल पर जो प्रसन्नता, सरलता और विचारशीलता की आभा थी वह उस सूर्यप्रभा की छटा में अपनी निराली ही शोभा दिखा रही थी। मैं उनके पाण्डित्य के सम्मुख क्या कह सकता था। परन्तु मेरी यह प्रबल इच्छा अवश्य हो गई कि इस रमणीय स्थान में और ऐसे महर्षि-तुल्य आचार्य

के चरणों में रहकर विद्याध्ययन अवश्य करूं। परन्तु यह इच्छा वर्तमान भारतीय विद्यार्थियों के सौभाग्य में पूर्ण होने के लिये बहुत ही विरली जगह उद्भूत होती है। इच्छा उठी और विलीन होगई। मैं केवल ५ दिन की छुट्टी पर ही गया था। सायङ्काल होते ही मैं आशीर्वाद लेकर देहरादून चला गया और उसके बाद दर्शनों के स्थान में यही अवसर मिला है कि प्रत्यक्ष दर्शन कर और आशीर्वाद प्राप्त करने के स्थान में मैं अपनी श्रद्धाञ्जलि को ही समर्पित कर कृतकृत्य होजाऊं।

मैं स्वयं आचार्यवर के पास अधिक नहीं रहा पर मेरे कितने ही सहपाठियों को उनके पास पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और उनके मुख से सतत प्रशंसा को सुनकर यही कहा जा सकता है कि अब ऐसे विद्वान् भारतवर्ष में केवल स्वप्नमात्र के लिये रह गये हैं। वह पुरुष जो विद्या के अद्वितीय कर्मक्षेत्र में अग्रेसर, और स्वभाव में अनुपम शान्त हैं वह साक्षात् महर्षि है और ऐसे सज्जन जिस स्थान में रहे हैं वह परम पावन और सौभाग्य-शाली है। परमात्मा करे कि आचार्यवर के ये सद्गुण उनके योग्य शिष्य में अवतीर्ण हों और वह भी अपने–उनके समान ही–त्याग से संस्कृत भाषा की सेवा कर भारत के मुख को उज्ज्वल करें॥ ॐ॥

धर्ममूर्ति स्वामी

शुद्धबोधतीर्थ

(लेखक—श्री पं० रविशंकरशर्मा वानप्रस्थ, महाविद्यालय)

श्री १०८ पूज्यपाद स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी के दर्शन सबसे प्रथम देहली में भारतधर्ममहामण्डल के अवसर पर हुए थे, जिसको लगभग ३२ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। तत्पश्चात् कनखल हृषीकेश, कांगड़ी गुरुकुल आदि कई स्थानों में समय २ में होते रहे। ३१ अक्तूबर १९०८ ई० को पूज्य स्वामी जी महाराज ने म० वि० ज्वालापुर में पदार्पण कर, उसका कार्यभार संभाल लिया।

उनके पदार्पण करते ही म० वि० रूपी पौदा लहलहाने लगा। मैं आरम्भ से ही महाविद्यालय-सभा का सभासदरूप से एक तुच्छ सेवक था। परन्तु १५ जून सन् १९०९ ई० से निरन्तर लगभग २१ वर्ष श्रीस्वामी जी के चरण-कमलों में रहकर म० वि० की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त करता रहा, परन्तु महापुरुषों की रीति-नीतियों को भलीभान्ति कोई पुरुष ही समझ सकता है। मेरी मति में श्री स्वामी जी महाराज धीर, वीर गम्भीर, त्यागमूर्ति, सदाचारी, तपस्वी, विद्वान्, धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ पुरुष थे।

मुझे याद है कि म० वि० के प्रथमोत्सव के समीप ही जब स्वामी जी महाराज रुग्ण होकर गुरुकुल कांगड़ी चले गये थे तब यहां म० वि० के सब ही अधिकारी लोग घबरा उठे थे। तब यहां से स्वर्गीय श्री चौ० महाराजसिंह जी प्रधान, श्री चौ० अमीरसिह जी उपप्रधान, तथा लेखक और सम्भवतः श्री चौ० भगीरथलाल जी महेवड़निवासी स्वामी जी महाराज के दर्शन करने गये। उस समय स्वामी जी महाराज इतने निर्बल थे कि अच्छी प्रकार बोल भी नही सकते थे, तो भी हम लोगों से धीरे २ बातें करने लगे। हम लोगों को घबराये हुये देखकर कहने लगे, "आप लोग घबराइये नहीं, यदि ईश्वर की कृपा से जीवन शेष रहा तो जैसा मैने कहा था वैसा ही होगा" यह सुनकर हम लोग प्रसन्नचित्त महाविद्यालय लौट आये, और श्री स्वामी जी महाराज भी दूसरे दिन उसी दशा में म० वि० आ विराजे।

आप श्री १०८ स्वा० दयानन्दसरस्वती जी महाराज के अनन्यभक्त थे। आर्ष सिद्धान्तों के मर्मज्ञ, विद्वान् तथा पालन करने वाले थे। परन्तु ऐङ्ग्लो इण्डियन आर्य्यों के सिद्धान्तों के विरुद्ध थे। इनके विषय मे कभी २ कहा करते थे कि ये लोग ऋषि के अभिप्रायों को ही नहीं समझते हैं। सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों को वे ही लोग अच्छी प्रकार समझ सकते हैं जिन्होंने वेद तथा शास्त्रों का भलीप्रकार अध्ययन किया हो। प्राचीन सभ्यता के बड़े हामी थे। और अंग्रेजी खेलों से बहुत अप्रसन्न होते थे। उस समय समस्त ब्रह्मचारी तपस्वी जीवन व्यतीत करते थे। अध्यापनशैली के एक ही विद्वान थे। छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी कक्षा के विद्यार्थियों को पढ़ाने में सिद्धहस्त थे और अनथक पढ़ाने वाले थे।

शिष्यवत्सल ऐसे थे कि कोई विद्यार्थी कितना ही अपराध करे और उनके सामने जाकर दो आँसू बहा देवे तो सब अपराध क्षमा हो जाते थे। और इतना ही उपदेश करके छोड़ देते थे कि, "मूर्ख ! यदि फिर ऐसा किया तो बहुत पीटूंगा"। छात्रों से पहले आप कभी भोजन नहीं करते थे। मुझे अच्छी प्रकार याद है, एक बार मैंनें कुछ ब्रह्मचारियों का दुपहर का भोजन बंद कर दिया, तो आपने भी उस दिन दुपहर को भोजन नहीं किया और बना बनाया छोड़ दिया।

विद्यार्थियों के साथ उनका विचित्र व्यवहार था। जिस समय वे विद्यार्थियों से खेलते थे तो उनमें ऐसे घी शक्कर की तरह मिल जाते थे कि विद्यार्थियों को किञ्चित् भी यह भान नहीं होता था कि हम किसी बहुत बड़े आदमी के साथ खेल रहे हैं। और जरा आंख टेढी की तो बड़े से बड़े विद्यार्थी भी भयभीत होजाते थे। मिलनसार ऐसे थे कि जहां किसी से १५ मिनट बातें कीं तो वह उनका हो जाता था। स्वस्थ, हृष्ट पुष्ट विद्यार्थियों को देख कर बहुत प्रसन्न होते थे। व्यायाम आदि के बहुत शौक़ीन थे। अपनी वृद्धावस्था में नियम से कुछ न कुछ व्यायामादि करते रहे। मितभाषी ऐसे थे कि प्रत्येक बात को ऐसे नपे तुले शब्दों में सूत्ररूप से बोलते थे कि श्रोताओं को उनका अभिप्राय समझने में कठिनाई होती थी। लोकैषणा से वे बहुत दूर रहते थे। सदैव इस प्रकार की चेष्टा करते थे कि उनका कोई कार्य वाणी द्वारा या समाचारपत्रों में प्रकाशित न किया जावे।

मेरी मति में लोकैषणा का न होना एक ऐसा विशेष गुण है जो संसार में किसी विरले ही महापुरुष में होता है, नहीं तो यह

एषणा ऐसी प्रबल है कि बड़े २ सन्त महन्तों को भी नाच नचाती है। बाज़ २ तो किसी शाइर के कथनानुसार इसके लिये सब कुछ दुःख उठाने को तैयार रहते हैं:—

दोज़ख के दाख़िले में नहीं, मुझको कुछ उज़र।
ग़र तसबीर कोई टांग दे, मेरी बहिश्त में॥

अधिक क्या लिखूँ, महाविद्यालय ज्वालापुर उन्हीं के परिश्रम तथा तप का फलस्वरूप है। दुःख है कि म० वि० ज्वालापुर उनके परलोकवास से अनाथ सा हो गया है। परमात्मा से प्रार्थना है कि वह ऐसे महापुरुष के पालित पोषित वृक्ष को सदैव अपने दयारूपी जल से सींचता रहे।

स्वर्गीय श्री स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी
तथा
मेरे संस्मरण ।

[श्री पं० विश्वनाथ जी, वेदोपाध्याय, गुरुकुल कांगड़ी]

स्वर्गीय श्री स्वामी शुद्धबोध जी महाराज का प्रथम दर्शन मुझे उनके आचार्य गंगादत्त के रूप में हुआ था। सन् १९०१ में गुजरानवाला (पंजाब) में मैं वैदिक आश्रम में ब्रह्मचारीरूप में प्रविष्ट हुआ। श्री आचार्य गंगादत्त जी इस आश्रम के उस समय आचार्य थे। इस आश्रम के दो विभाग थे। उच्च विभाग में बड़ी आयु के विद्यार्थी थे जो कि आचार्य गंगादत्त जी से विद्याध्ययन करते थे। इनके रहन सहन आदि में ब्रह्मचर्याश्रम के कड़े नियमों का प्रयोग न किया जाता था। दूसरे विभागों में छोटी आयु के विद्यार्थी थे। ये भावी गुरुकुल की नींवरूप में इस वैदिक आश्रम में भरती किए जा रहे थे। मैं भी इन्हीं छोटे विद्यार्थियों में प्रविष्ट हुआ। इन दिनों हमारा सीधा सम्बन्ध आचार्य गंगादत्त जी के साथ न रहता था। हम छोटे विद्यार्थी इन की गठी हुई भव्यमूर्ति को प्रायः आते-जाते देखा करते थे और हम समझा करते थे कि ये विद्या के इतने अगाध स्रोत हैं कि अभी तक हम इस स्रोत में स्नान करने के योग्य नहीं।

वैदिक-आश्रम में कुछ देर तक मैं रहा। पश्चात् इन छोटे ब्रह्मचारियों का जो कि संख्या में लग भग ३० के होंगे, गुजरान-

वाला में ही एक पृथक् आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम खोल दिया गया था। इस ब्रह्मचर्याश्रम में जितनी देर हम रहे उतनी देर आचार्य गंगादत्त जी के दर्शन न हो सके।

अचानक एक दिन हमें समाचार मिला कि हम सबने कांगड़ी गुरुकुल, हरिद्वार जाना है। सबने तैयारी करनी शुरु की अर्थात् अपनी २ किताबें तथा वस्त्र आदि बांधने आरम्भ कर दिये। गुजरानवाला से रेल के रिज़र्व डब्बे में सब ब्रह्मचारी आचार्य गंगादत्त जी की अध्यक्षता में विदा हुए और २ मार्च, सन् १९०२ को मध्यान्ह के बाद लगभग सायंकाल ४ बजे हरद्वार स्टेशन पहुंचे। बीच में महात्मा मुन्शीराम जी भी जालंधर से आ मिले। हरद्वार स्टेशन के बाहिर ब्रह्मचारी पंक्ति में खड़े किये गये। महात्मा मुन्शीराम जी तथा आचार्य गंगादत्त जी इस पंक्ति के आगे २ थे और महर्षि दयानन्द का बड़ा चित्र तथा ओ३म् का झण्डा सब से आगे था। वेद-मंत्रों का उच्च-स्वर से उच्चारण करते और कनखल के मुख्य बाज़ार में से होते हुए हम लगभग रात पड़े कांगड़ी गुरुकुल पहुंचे जो कि गंगा के उस पार किन्तु गंगा के किनारे और चण्डी पर्वत की तराई में झोंपड़ियों की एक कितार की शक्ल में था। अब से हम आचार्य गंगादत्त जी के साक्षात् निरीक्षण में हुए।

आचार्य गंगादत्त जी ने उस श्रेणी को जिसमें कि मैं पढ़ा करता था बहुत नहीं पढ़ाया। मुझे उन से साक्षात् पढ़ने का थोड़ा ही सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप चाहते थे कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी संस्कृत विद्या में पारंगत होकर गुरुकुल से निकलें। इस अपने

उद्देश की पूर्ति के निमित्त वे भरसक यत्न किया करते थे। काशी के प्रसिद्ध विद्वान स्वनामधन्य श्री गुरुवर काशीनाथ जी को हम लोग चलते-फिरने विद्या के समुद्र जाना करते थे। संस्कृत के विषयों में मेरा प्रवेश आचार्य गंगादत्त जी के द्वारा इन श्री गुरु जी के चरणों की सेवा से हुआ। आचार्य गंगादत्त जी ने श्री गुरु जी के इलावा और भी कई विद्वान् गुरुकुल में उपस्थित कर दिये थे जिन में श्री पं० भीमसेन जी, श्री शिवशंकर जी काव्यतीर्थ तथा श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ के नाम विशेषरूप से उल्लेख के योग्य हैं।

संस्कृत के विषयों में आचार्य गंगादत्त जी की बड़ी आस्था थी। इनका विश्वास था कि संस्कृतभाषा में सभी विषयों के उच्च कोटि का ज्ञान भरा पड़ा है। शनैः २ गुरुकुल कांगड़ी में उन विषयों का भी प्रवेश हुआ जो कि आचार्य गंगादत्त जी को अरुचिकर प्रतीत हुए। पाश्चात्यविज्ञान के मोटे २ सिद्धान्त जब हमने पढ़ने शुरु किये तो हम लोग वैदिक दर्शनों के सिद्धान्तों पर प्रायः आक्षेप किया करते थे। एक दिन मैंने आचार्य जी को कहा कि "पाश्चात्य वैज्ञानिक तो जलको दो वायुओं के मेल से उत्पन्न हुआ मानते हैं और वैदिक दर्शनकार इसे तत्व मानते हैं, मुझे वैदिक दर्शनकारों का मत अशुद्ध प्रतीत होता है।" इस पर लम्बी साँस लेकर आचार्य जी ने उत्तर दिया कि 'अच्छा, अब मुझे भी पाश्चात्यविज्ञान पढ़ना होगा ताकि पाश्चात्य-सिद्धान्तों का खण्डन कर सकूं"। ये शब्द वैदिक दर्शनकारों के सिद्धान्तों में उनकी गहरी श्रद्धा के सूचक अब मुझे प्रतीत होते हैं, जब कि मैं देखता हूं कि भारत के कतिपय धुरन्धर विद्वान् भी यह मानने लगे हैं कि वैदिक दर्शनकारों का अभिप्राय अप्-तत्व से स्थूल

जल का नहीं है, और साथ ही जब मैं यह देखता हूं कि वर्तमान समय की वैज्ञानिक कल्पनाएं कई रद्द भी होती चली जारही हैं और कई नये २ रूप भी धारण करती जारही हैं।

गुरुकुल कांगड़ी में नवीन शिक्षा-पद्धति का प्रसार हो या प्राचीन का— इस सम्बन्ध में अन्य अधिकारियों से उग्र मतभेद होने के कारण आचार्य गंगादत्त जी कुछ वर्षों में ही गुरुकुल कांगड़ी का आचार्यत्व छोड़ कर चले गये।

आचार्य गंगादत्त जी के आचार्यत्व-काल का मातृ-पितृ-रूप भी मुझे विशेषरूप से याद आता है। ब्रह्मचारियों के खिलाने पिलाने, इन पर पढ़ाई का अधिक बोझ न लादने, इनकी शारीरिक अवस्था के सुधारने तथा इनके ब्रह्मचर्य के नियमों पर कड़ी दृष्टि रखने में आचार्य गंगादत्त जी विशेष दक्ष थे। इन बातों में आचार्य गंगादत्त जी किसी अन्य अध्यक्ष पर अधिक भरोसा न किया करते थे। वे स्वयं अपने निरीक्षण में इन सब स्थितियों की देख-भाल किया करते थे। आचार्य गंगादत्त जी ब्रह्मचारियों को खिलाने पिलाने में पढ़ाई के नियमों को भी कई बार ढीला कर दिया करते थे—यह उनका मातृरूप था। परन्तु शारीरिक संरक्षण तथा ब्रह्मचर्य के नियमों में वे अपना उग्ररूप भी प्रदर्शित किया करते थे—यह उनका पितृरूप था।

इनके मातृरूप की एक घटना मुझे स्मरण हो आई है। एक बार आपने आज्ञा दी कि बिना इनसे पूछे कोई भी ब्रह्मचारी कहीं न जाया करे। पढ़ाई का समय था। बीच में मध्याह्नाश की घण्टी बजी। ब्रह्मचारी पढ़ाई के ही कमरे में डटे रहे। घण्टी

बजने पर भी भण्डार खाने को न गए, इस लिये कि हमने आचार्य जी से अनुज्ञा इस निमित्त नहीं मांगी। आचार्य गंगादत्त जी प्रतीक्षा करते रहे कि ब्रह्मचारी अब उठते हैं। समय बीत गया। आचार्य गंगादत्त जी का हृदय व्याकुलित हो उठा कि ब्रह्मचारी आज क्यों नहीं मध्यान्हाश करने गये। वे समीप आए और उन्होंने इसका कारण पूछा, उत्तर कुछ न मिला। स्वयं आचार्य जी ने कहा कि यदि तुम इस लिये भण्डार नहीं गये कि तुम मुझसे पूछ कर जाने में संकोच करते हो तो आगे से खाने-पीने के निमित्त मुझ से बिना पूछे ही चले जाया करो। इन शब्दों में आचार्य गंगादत्त जी के मातृरूप का स्पष्ट उदाहरण हमें उस समय मिला। इसीप्रकार हृदय को कड़ा कर यदि यह कभी किसी अपराध पर किसी ब्रह्मचारी को डाँट-डपट भी देते तो कुछ ही समय के पश्चात् यह उस ब्रह्मचारी के लालन-पोषण के लिये, उसे मनाने के लिये झट तैयार होजाया करते थे और लड्डु पेड़े से उस ब्रह्मचारी को प्रसन्न किया करते थे। ये तथा ऐसे अन्य कई दृष्टान्त आचार्य गंगादत्त जी के मातृरूप को प्रकट करते हैं। आचार्य गंगादत्त जी का पितृरूप मैं मैंने थोड़ा ही देखा। उनके पितृरूप पर उनके मातृरूप ने अधिक काबू पाया हुआ था।

आचार्य गंगादत्त जी के मातृ-पितृरूप के आदरणीय संरक्षण में हम तीन, चार वर्ष ही रह पाये। इससे आगे बहुत काल तक आचार्य गंगादत्त जी के सत्संग का मुझे कोई अवसर न मिला। सन् १९३० से, जब कि गुरुकुल कांगड़ी गंगा के इस पार कनखल की ओर आगया, आचार्य गंगादत्त जी के दर्शनों का सौभाग्य

उनके संन्यासी रूप में मुझे बार २ हुआ। स्वामी जी के कृपामय हाथों के पुण्य आश्रय को पुनः पाकर मुझे अपने बाल्यकाल के जीवन की घटनाओं का—जोकि स्वामी जी के आचार्यत्व में बीती थीं—बार २ स्मरण हो आता था। गुरुकुल कांगड़ी के इन नये भवनों में रहते हुए मैं प्रायः स्वामी जी महाराज के दर्शनों के लिये उत्सुक रहता था और दर्शनों से अपने आपको कृतार्थ भी किया करता था। गुरुकुल कांगड़ी से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने के पश्चात् स्वामी जी महाराज ज्वालापुर महाविद्यालय के निर्माण में लग गये। इस महाविद्यालय से संस्कृत के कई धुरन्धर विद्वानों को जन्म देने में स्वामी जी महाराज के ये दिन व्यतीत हुए। यद्यपि स्वामी जी महाराज अखबारी दुनियां के महारथी नेता न थे तो भी अपने वैयक्तिक जीवन में आचार तथा शिक्षा के क्षेत्र में यह एक अद्वितीय व्यक्ति थे। ऐसे महाव्यक्ति के स्वर्गवास हो जाने से शिक्षा तथा मूक त्याग के क्षेत्र में एक भारी कमी आ गई है।

स्वामी शुद्धबोधतीर्थ क्या थे ?

(१) वह आर्ष व्याकरण के भारी पण्डित तथा सिद्धहस्त उत्तम कोटि के गुरु थे।

(२) वह स्वाभिमान और आर्यनीति के अवतार थे, "बाबू नीति" के प्रिय न थे।

(३) वह निष्कपटता के लिये प्रसिद्ध थे। कारण कि उनके नीचे सब प्रकार के भारी पण्डित से लेकर साधारण पाचक तक जो भी काम करते थे वे सब ही इनके उदार स्वभाव के कारण महाविद्यालय को छोड़ कर नहीं जा सकते थे।

(४) संस्कृत विद्या तथा भाषा के दान के लिये उनकी निज कुटी सब ऋतुओं में सदैव खुली रहती थी। छात्रों को मन से विद्यादान देना वह अपना परमधर्म समझते थे।

(५) निष्काम-भाव से सेवा करने का उन्होंने व्रत ले रक्खा था। विद्यालय के उत्सव को सर्व प्रकार से सफल बनाकर भी वह अपने मुख से अपनी कार्यवाही वा स्वयश की बातें कभी नहीं कहते थे। वह एक भारी पण्डित तथा सच्चे तपस्वी संन्यासी महापुरुष थे। संस्कृत विद्या के वह सूर्य्य थे।

आत्माराम अमृतसरी

श्रद्धाञ्जलि

[ले०-प्रो० मनोरञ्जन एम० ए०, हिन्दूविश्वविद्यालय, काशी]

हमारे शुद्धबोध आचार्य,
हमें तज कहां गये हे आर्य !
अभी भी तो इस जग में शेष रहगये थे कितने ही कार्य ॥

आमरण किया विकट संग्राम,
विघ्नबाधाओं से अविराम ।
थक गये थे, क्या यह विश्राम ॥
हो उठा था इतना अनिवार्य ।
हमारे शुद्धबोध आचार्य ॥

समझ कर अथवा हमको हीन,
मृत्युने लिया आपको छीन ।
हो गये हमतो सब विधि दीन ॥
न जाने क्या है कार्याकार्य ।
हमारे शुद्धबोध आचार्य ॥

करें क्या, हैं हम तो निरुपाय,
सूझता कोई नहीं उपाय ।
सभी कुछ सहना ही है हाय ॥

चित्र सं० २

हुआ जो कुछ था अपरिहार्य ।
हमारे शुद्धबोध आचार्य ॥

भरा है उर में विषम विषाद,
करें अब किससे क्या फ़रयाद ।
हमें रह रह कर आता याद ॥
आपका स्नेह, शील, औदार्य ।
हमारे शुद्धबोध आचार्य ॥

आपका प्रेम-पूर्ण व्यवहार,
शुद्धशिक्षा का सतत प्रचार ।
नहीं भूलेगा यह संसार ॥
आपके वे सारे सत्कार्य ।
हमारे शुद्धबोध आचार्य ॥

———

तस्मै श्रीगुरवे नमः

[श्रीसाहित्याचार्य विष्णुदत्तशास्त्री कपूर एम० ए० हरदोई]

स्वर्गीय प्रातःस्मरणीयचरण श्री १०८ स्वा० शुद्धबोध तीर्थ जी के जीवनचरित्र को समुचितरूप से लिखने के लिये उनके बाह्याभ्यन्तर गुणों से परिचित आपको छोड़कर हम लोगों की दृष्टि और किस पर जा सकती थी। हमारे प्रौढ़ आग्रह से अपने बहुकार्योपयोगी समय के कुछ भाग को इस कार्य के लिये देकर आप न केवल हम लोगों को किन्तु अगणित जनसमाज को स्वामी जी की पुण्य जीवनलीलाओं तथा मूकसेवाओं से परिचित कराकर अनुगृहीत करेंगे। इस उपकार के लिये हम सब आपके आभारी हैं।

स्वर्गीय स्वामी जी के व्यक्तित्व विद्वत्ता तथा आचार के ऊपर जितना लिखा जाय थोड़ा है। प्रायः प्रदर्शनियों में प्रदर्शित तथा विविध विज्ञापनों द्वारा समुद्घोषित अल्पमूल्य वस्तुओं का भी गुणानुवाद शीघ्र होने लगता है किन्तु सन्तोपवृत्तिगुण विक्रेता की दूकान में रक्खे हुए बहुमूल्य तथा स्थायिरूप से सुन्दर पदार्थ भी विलम्ब से पहचाने जाते हैं। परन्तु जिस प्रकार असली तथा नकली हीरे का भेद कालान्तर में प्रकट हो जाता है ठीक इसी प्रकार पूर्वोक्त दोनों श्रेणियों के पदार्थों का भी भेद प्रकट हुए विना नहीं रहता। जहां प्रथम वर्ग के पदार्थों की प्रशंसा स्वल्पकालीन

तथा अल्पज्ञ पुरुषों द्वारा होती है वहाँ द्वितीय वर्ग के पदार्थ दीर्घकाल तक बुद्धिमानों के हृदय में घर किये रहते हैं।

जैसे ये दो भेद अन्य पदार्थों के होते हैं वैसे मनुष्यों में भी पाये जाते हैं। हमारे स्वर्गीय स्वामी जी द्वितीय कोटि के व्यक्ति थे। परोपकारार्थ समर्पित किय हुए जीवन को पुरस्कारार्थ जनता के सम्मुख रखने की चेष्टा उन्होंने कभी नहीं की। परन्तु जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आये तथा जिन्हें उनके चरणों में बैठकर कुछ अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ वे उनके तेजस्वी तथा प्रभावशाली मुखमण्डल, ओजःपुञ्ज नेत्रयुग्म से प्रकाशमान तथा शान्त, गम्भीर, स्थिर एवं शक्तिसूचक शरीरचेष्टाओं से प्रभावित हुए विना न रहे। जब वे किसी दुर्बल तथा कान्ति-हीन व्यक्ति को देखते थे तब वे अपने स्वाभाविक गम्भीरनाद-युक्त वचनों से उसे व्यायाम तथा ब्रह्मचर्य द्वारा पुष्ट, स्वस्थ तथा कान्तियुक्त होने का उपदेश करते थे। उनके इन उपदेशों से न जाने कितने पुरुषों ने अपनी शारीरिक अवस्था को सुधार लिया।

वस्तुतः उनका व्यक्तित्व स्वयं मौखिक व्यापार के विना ही धीरता, वीरता, परिश्रम तथा संयम का सदा उपदेश किया करता था। विद्वत्ता में वे अपने समय के अग्रणी विद्वानों में एक थे। व्याकरणशास्त्र में उनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति गत कई जीवन के परिपक्व संस्कारों को द्योतित करती थी। इस शास्त्रीय व्यसन को जीवन के अन्तिम पलों तक अक्षुण्णरूप से उन्हों ने स्थिर रक्खा और आगत शिष्यों को मूलवर्धक ज्ञान द्वारा अनुगृहीत

करते रहे। अध्यापनकाल में तारस्वर से उच्चारित उनके विशदाक्षर पद शीघ्र ही शिष्यों की बुद्धि में प्रवेश कर जाते थे।

उनकी पढ़ाने की शैली सरल तथा मनोग्राही थी। इस बात पर वे बहुत ध्यान देते थे कि उनके पढ़ाये हुए पदार्थ को शिष्यों ने समझ लिया कि नहीं। इसके लिये वे पुस्तक के अधीत भाग में से प्रायः प्रश्न पूंछा करते थे, और साथ ही अध्ययन में रुचि तथा जिज्ञासा को उत्पन्न करने का प्रयत्न करते थे। यही कारण है कि वृद्धावस्था में भी शिष्यमण्डली उन्हें सदा घेरे रहती थी। उनके चरणों में अध्ययन करने वालों का व्याकरणसम्बन्धी ज्ञान परिपक्व तथा विशद होजाता था।

उनका आचार जिसका कि दिनचर्या एक प्रधान अङ्ग है लोगों को आश्चर्यचकित करता था। माह पूस के जाड़ों में भी ब्राह्ममुहूर्त में उठना और शौच स्नानादि से निवृत्त होकर ध्यानमग्न होना उनका नैत्यिक नियम था। दोनों समय व्यायाम करना उनके स्वभाव में समा गया था। इसके अतिरिक्त उनका भोजनाच्छादन सात्त्विक सरल तथा शिक्षाप्रद था। अनायास प्राप्त हुई वस्तुओं का उपयोग करना उनका व्रत सा प्रतीत होता था। मेरे स्मृतिपटल पर जब २ उनकी मूर्ति अङ्कित होती है तब २ उनके व्यक्तित्व, विद्वत्ता तथा आचार की महिमा मूर्तिमान् स्वरूप धारण कर मेरी आंखों के सामने आजाती है। मैं अनुभव करता हूं कि मैं उनका अत्यन्त ऋणी हूं। उस ऋणभार से उन्मुक्त होना बड़ा कठिन है। यदि भगवान् की दया से उनकी स्वर्गीय पुण्य आत्मा को प्रसन्न करने योग्य मुझसे कुछ कार्य बन पड़ा तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा।

श्री आचार्य जी ने जिसके लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर किया तथा जिस स्थान पर अपने जीवन के एक बड़े भाग को बिताते हुए सैकड़ों शिष्य व भक्त उत्पन्न किये वह महाविद्यालय ज्वालापुर है। उस संस्था का वर्तमान कलेवर उनकी वहाँ दीर्घकालीन उपस्थिति का फल है। संस्कृत का ठोस ज्ञान, उच्च विचार तथा सरल जीवन की शिक्षा देने वाली वह उनकी एक-मात्र संस्था है। यदि उस पुण्यभूमि पर उनके गुणों के अनुरूप कोई स्थायी स्मारक बने तभी उनके शिष्य व भक्त उनके प्रति अपनी सच्ची भक्ति, श्रद्धा तथा प्रेम को प्रकट कर सकेंगे। उन्हें विद्या का व्यसन था तथा विद्यादान ही उनका एकमात्र यज्ञ था। अतः मेरी दृष्टि में महाविद्यालय में एक अनुसन्धानविभाग उनकी स्मृति में खुलना चाहिये जिसका नाम "श्री शुद्धबोधतीर्थ अनुसन्धानविभाग" हो। उसमें संस्कृतसाहित्य के भिन्न २ विषयों पर और विशेषरूप से वेदों पर गवेषणात्मक कार्य के लिये उपयुक्त सामग्री जुटानी चाहिये तथा संस्कृतभाषा के कुछ प्रौढ़ विद्वान उसमें नियुक्त करने चाहियें जिनके कि निरीक्षण में गुरुकुलों के स्नातक तथा बाह्य विद्वान् नवीन अनुसन्धान द्वारा भारतीय साहित्य की ठोस सेवा कर सकें। उसका प्रारम्भ किस प्रकार से होना चाहिये तथा काम-चलाऊ सामग्री के लिये प्रारम्भिक व्यय कितना होगा इत्यादि विषयों पर विचार करने के लिये एक समिति बनाली जाय जो कि उत्सव के पूर्व बैठकर किसी निश्चित परिणाम पर पहुँच जाय और अपने विवरण को उत्सव में आई हुई जनता के सम्मुख रख सके। यदि आप इस पर ध्यान देंगे तथा आपके आदेशानुसार स्वामी जी के भक्त व शिष्य इसके लिये प्रयत्नशील होंगे तो स्वर्गीय स्वामी जी की

जीवनतन्त्री के साथ अनुकूल राग अलापता हुआ यह स्मारक शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत होजायगा। ❀

स्वामी जी के पवित्र जीवन तथा उसमें किये हुए ठोस कार्यों पर मैं जितना ही अधिक विचार करता हूँ उतना ही मेरा हृदय उनके प्रति श्रद्धातिरेक से भरपूर होजाता है। उनकी पावनी स्मृति में उपगूहित निम्नलिखित "शोकसम्मिश्रित स्तुति" सेवा में प्रेषित है।

शोकसम्मिश्रितस्तुतिः।

१

विद्यावैभवमध्यजातविमलानन्दप्रकर्षादर-
व्याधूतेन्द्रियभोगलब्धपरमानन्दे निमग्नः सदा।
भक्तानामनुकम्पकः सुकृतिनां तीर्थास्पदं धीमताम्,
हा यातः क्व विहाय नो निजजनान् श्रीशुद्धबोधो गुरुः॥

२

आबाल्यान्निजधर्मपालनपरो दिव्यैर्गुणैः सम्भृतः,
लोकाचारविवेकवाक्पटुतया लब्धप्रतिष्ठो बुधः।

❀ यदि इस विषय पर "जीवनचरित्र" के पाठक अपनी सम्मति देने का कष्ट करें तो अच्छा हो।

शास्त्रारण्यविहारधीरधिषणो निर्भीकपञ्चाननः,
विज्ञानाब्जविकासने पटुतरो भूभानुरस्तं गतः ॥

३

तेजःपुञ्जमुदीक्ष्य यस्य वदने जाज्वल्यमानं शुभं,
शान्त्याऽऽह्लादिकया तथा मधुरया सन्दीप्तशोभायुतम् ।
द्रष्टा तत्क्षण एव विस्मययुतां प्रीतिं परां प्राप्तवान्,
तस्मै पुण्यकृते महाधृतिमते विद्यावते मे नमः ॥

४

स्वाध्याययज्ञे निरतस्तपस्वी,
शान्तः शुचिः सत्यदयादिनिष्ठः ।
परोपकारैकपरायणो यः,
स्वर्ग्याय तस्मै गुरवे नमो नमः ॥

५

लोकैषणाया द्रविणैषणायाः,
पुत्रैषणायाश्च पराङ्मुखो यः ।
संन्याससंवर्जितकाम्यकर्मा,
भूलोकदेवाय नमोऽस्तु तस्मै ॥

६

शिष्यप्रशिष्या बहुशास्त्रदक्षा,
यद्दत्तविद्यामलतीव्रबुद्धयः ।

कृतं स्मरन्तोऽश्रुविषिक्तलोचनाः,
आचार्यवर्याय नमोऽस्तु तस्मै ॥

७

वात्सल्यं यस्य शिष्येषु, सदासीत् करुणान्वितम् ।
स्मरणीयगुणाचारं, वन्दे तं प्रयताञ्जलिः ॥

८

शोकविह्वलतां नीतः, विधेः क्रूरेण कर्मणा ।
विपुलः शिष्यवर्गोऽपि, चिनुयात्तद्गुणान् कथम् ॥

९

क्व विद्या क्व सदाचारः, क्व त्यागः क्वात्मगौरवम् ।
क्व सत्यं क्व च दाक्षिण्यं, तस्मिन् याते दिवं गुरौ ॥

१०

यदङ्घ्रिगन्धमाघ्राय, बहवो भक्तषट्पदाः ।
गुञ्जन्ति कृतकृत्यास्तं, स्मारं स्मारं नमाम्यहम् ॥

११

यन्मुखाकृतिमालक्ष्य, ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा ।
भास्वानपि चिरं स्तब्धस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

५

अस्तो व्याकृति-तंत्रपङ्कजवनी-व्याकोचदीप्तारविः,
ध्वस्तशङ्कात्रसमूहशैलजडतापक्षच्छिदुग्रः पविः ।
स्वस्तश्चार्यसमाजमान्यनियमोद्धारेऽस्थिदाता शिबिः,
शस्तः पाठननीतिरीतिचतुरो हा ! शुद्धबोधः कविः ॥

काशीनाथशर्मा काव्यतीर्थः

(श्रीपण्डितपद्मसिंहशर्मणो ज्येष्ठपुत्रः
एतर्हि महाविद्यालयसहायक-मुख्याधिष्ठाता)

श्रीशुद्धबोधयतिना, चरितं चरितं शुभम् ।
संकीर्त्तयन्ति विद्वांसो, यतस्तत्समुपास्यताम् ॥१॥

अदूष्यं यस्य वैदुष्यं, सदयं हृदयन्तथा ।
मूर्त्तिः शान्तिमयी यस्य, वचः पथ्यं मनोहरम् ॥२॥

जीवनं यस्य जीवानां, जीवनाय नचान्यथा ।
कीर्त्तितव्यो महात्मासौ, प्रातः स्मर्त्तव्य एव च ॥३॥

अधीतवेदवेदाङ्गो,रचिताष्टकवृत्तिकः ।
रक्षिता धर्मसेतूनां, सद्व्रतानाञ्च रक्षिता ॥४॥

शान्तो दान्तस्तितिक्षुश्च, परात्मचरिते रतः ।
विद्वद्भिः साधुभिः सम्यक्, सेवया परिरक्षितः ॥५॥

छात्राणां द्विशती यत्राध्यापकानाञ्च विंशतिः ।
महाविद्यालयो ज्वालापुरीयो येन पालितः ॥६॥

उपदेशपरो नित्यं, नृणामुन्नतिहेतवे ।
शरण्यं चार्त्तलोकानामरण्यं यस्य वै गृहम् ॥७॥

परित्यज्योभयं लोकं, योऽमृतत्वमुपागतः ।
तं यतिप्रवरं लोके, भ्रान्ता ये ते मृतं जगुः ॥८॥

शुद्धबोधाष्टकमिदं, रचितं श्रद्धया मया ।
तुष्यत्वनेन भगवान्, सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥९॥

छेदीप्रसादशर्मणः
श्रद्धाञ्जलिः
महाविद्यालयव्याकरणाचार्यस्य
काव्यतीर्थादिविविधोपाधियुतस्य ।

१

स्वस्मिन् जने क्रोडति कश्चिदाह,
स्वारिं नरं जेतुमिहेहते वा ।
मन्येऽविकल्पा कुलचेतसाहम्,
विश्वाम्बरान् द्योतयतीति देवः ॥

२

मदिष्टदो वा नरदेवशास्त्री,
यत् कृत्यभारं शिरसा व्यधत्त ॥
यदीह धास्ये न सहायलेशम्,
मत्तत्सवर्गाक्षरनाम व्यर्थम् ॥

३

असंख्यसंख्याकलनानुयोगे,
यदीह मूकीभवनं नु गर्हा ।
महामहिम्नां सुचरित्रचित्रम्,
अपाटवं संघटितुं तथा मे ॥

४

वृन्दावनादत्र यदाहमेतो,
योगाश्रमेऽध्यापकतामुपेतः ।
श्रीस्वामिनार्य्येण नु शुद्धबोधे-
न मेलितो मां सह देवदत्तः ॥

५

यो देवदत्त इह मत्सविधे वसन् स,
देवप्रियत्वमगमत् किमु तत् प्रगेयम् ।
सौजन्यचन्दनयशःकुमुदेन लोका-
नाह्लादयन् सुमनसां मुदमातनोति ॥

६

नित्यं वित्तविहीनदीनजनसात्,
कुर्वन् सवित्तं निजम्

षड्वर्गारिवशं विधातुमनिशं,
दण्डप्रयोगं दधत् ।
सम्राजं सजुषं निरीक्ष्य,
जनतायां शुद्धबोधेन हि
मोहौघं विघ्नणन्नतीत्य विलसन्,
मे स्वाक्षिलक्षीकृतः ॥

७

धने विरागं भृत एव रागं,
धृतो धृतौ संस्कृतवाग्विभूतेः ।
श्रुतिस्मृतिभ्यां प्रमितेषु श्रद्धां,
तदुत्पथानार्य्यपथेष्वश्रद्धाम् ॥

८

शिक्षां विना नोन्नतिरस्ति कस्यचि-
दुद्धाहुनेत्थं ब्रुवते समस्ताः ।
अतोऽस्य दीक्षां च ददत् स्वभिक्षां,
लक्षमस्य कक्षां कृतवान् स्वमायुः ॥

९

शिक्षाश्रिता भारतवासिनाधुना,
धुनाति संधक्ष्यति च स्वसभ्यताम् ॥
विशुद्धसिद्धान्तमिमं हि वैदिकं,
समूलमुन्मूलयितुं नु सम्भवेत् ॥

१०

चेखिद्यते चित्तमिहेदृशं नः,
स्वदेशवस्त्वादिबहिष्कृतेन ।

यथेह पाश्चात्यकुशिक्षणेन,
प्राचीनशिक्षामणिलुण्ठनाम्नः ॥

११

इत्थं विचिन्त्यार्य्यजनोपकारकम,
ज्वालापुरे स्थापितमाप्तख्यातिकम्।
विद्याविनोदाश्रितवर्णिलिङ्गिनाम्,
निःशुल्कशिक्षाभवनं विराजते ॥

१२

समाधिनाशांपि गरिष्ठ एव,
नचास्य लेशाक्षतता वरिष्ठा।
मत्वेवमत्र क्षणयापनेन,
स्वायुः समग्रं हितसाञ्चकार ॥

१३

अतोऽस्य सेवां प्रति शक्तिरस्ति चेत्
लक्ष्यं तदीयं नितरां हि रक्ष्यम्।
पुत्रं स्वकीयं विपरीतगत्वरम्,
जहाति नो किं जनको जगत्याम् ॥

१४

इदं मया स्वामिकृतेषु मध्ये,
रहस्यमात्रं पुरतो बुधानाम्।
समर्पितं नेतरमञ्जुवृत्तम्,
ह्यशक्तितो लक्ष्यविनाशशङ्का ॥

१५

मदीयदोषो नरदेवशास्त्रिणाम्,
यतोऽग्रवयं व्यदधात् स्वकाग्राम् ।
समर्हणा वा भवतां विभूतिः
यतोप्रनेता गुणदोषभागी ॥

योगाश्रममहाविद्यालयः
मायापुरी

श्रीद्रव्येशझा-सर्वदर्शनसूरिः
व्याकरणवेदान्ताचार्य्यः, मुख्याध्यापकः

तस्य पुत्रेण १३ वयस्केन सदानन्दशर्म्मणा पितृमित्रमहामहिम-श्रीनरदेवशास्त्रिवेदतीर्थान्तिके प्रेमभरेण लिखित्वेदं समर्पितम् ।

श्री शिवः शरणम् ।

आचार्याणां स्वर्यानम्

गुरुकुलं हि प्राचीनताचिह्नमिति तन्नाम्नैव प्रकटीभवति। तदारम्भकाले हि प्राचीनता-पक्षपातिनः आर्यसभ्यताभावनया भावितान्तःकरणास्तद्रक्षणसक्षणाः कतिचन ब्रह्मवंशप्रसूता विद्या-विभववन्तो महानुभावा अपि तत्र स्वर्गतमुन्शीरामवर्मणः प्रधानकार्यनिर्वाहनैर्वाहिकाजीवनैः साहाय्यमनुतिष्ठन्तः प्रारम्भिके कर्मण्यासन् संस्थाकार्यकर्तारः । तेषु प्राधान्येनोल्लेखनीयानि नामानि तान्येव, यानि ज्वालापुरमहाविद्यालयेतिहासलेखनसमये कदाचित्स्वर्णाक्षरैरङ्कनीयानि स्युः ; तानि च-श्री पं० गंगादत्त-शर्माऽऽचार्यः, श्री पं० भीमसेनशर्माऽऽजीवनम्महाविद्यालय-मुख्याध्यापकः, श्री पं० पद्मसिंहशर्मा भारतोदयसंपादकः, श्री नरदेवशास्त्री वेदतीर्थो जेलतीर्थश्च वेदाध्यापकः प्रबन्ध-मंसाधकश्चेति ।

एष्वाचार्यमहोदयो गुरुकुले तिष्ठन् स्वीयं ब्रह्मचर्यव्रतपालनं कुर्वन् तत्रत्येभ्यश्छात्रेभ्यो दीक्षादानेन व्याकरणाध्यापनेन च स्वीयमाचार्यपदं सफलतामनयत् । शनैःशनैरासीच्छात्रहृदये जनतामनसि च तपस्विन आचार्यस्य कृते परमपूज्यस्थानम् । परमिदं नाभवच्चिराय, सहसा ला० मुन्शीरामवर्मात्मनि महत्वमा-स्थापयितुं केनापि कारणान्तरेण वा प्रेरित आचार्यस्य दीक्षादान-कृत्यमात्मसादकरोत् । आर्षपद्धतिमवलम्बमान आचार्यो बोधया-मास धार्मिकीं सरणिं, निदर्शयामासार्षपद्धतिं, न च कथमपि वृधे

पाश्चात्यशिक्षाशिक्षितोऽनधिगतशास्त्रार्थो लालामुन्शीरामः। मुहुः प्रबोधनेनापि यदोर्ध्वनिर्दिष्टा न तेऽधिजग्मुस्तस्मिन् वास्तविकं प्रेम प्राचीनतायाः, अनुदिनं पाश्चात्याचारप्रचारप्रवणं तन्मनोऽभिलक्ष्य युगपदेवात्यजन् धनेन समृद्धम् भवनैः सुप्रवृद्धम् बाह्यसुषमा-सुशोभितमपि गुरुकुलपदम्। परित्यज्य च ज्वालापुरे गंगातट एव स्वसहार्थिभिरुल्लिखितमहानुभावैः साकं दिवंगतस्यार्षपद्धतिपक्ष-पातिनो वेदभक्तस्य सीतारामस्योद्याने वसतिं स्वीचक्रुः।

तत्रैव "क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महताँ नोपकरणे" इति कस्याप्यभियुक्तस्योक्तिं चरितार्थयन्तश्चत्वारोऽपि ब्राह्मणा ज्ञान-धनास्तपोबला स्वामिना दिवंगतेन श्रीदर्शनानन्देन सहकृता निश्शुल्कस्यास्य ज्वालापुरीयमहाविद्यालयस्य शिलान्यासमकुर्वन्। नचाभवत्कस्यापि शक्तिर्वेदविदुषश्चतुरोऽपि ब्राह्मणान्निराकृत्य महाविद्यालयं भङ्क्तुं, यद्यपि अनेकशोऽनुष्ठितान्यपि विद्यालय-विरोधिभिस्तथाविधानि कर्माणि।

आचार्यमहोदयः स्वसहार्थिभिः साकं महाविद्यालयं निर्माय बालवत्पालनं तस्यान्वतिष्ठत्। आमरणान्तं निश्शुल्कमाचार्यपदं निरवहत्। आसीदेतस्य महानुभावस्य त्यागशीलता, तस्या इदमेव निदर्शनं पर्याप्तं स्यात् यत्समस्तस्य महाविद्यालयस्य सञ्चालनं कुर्वन्नपि स्वयं कुटीरक एकान्ते न्यवसत्। कालेन च परित्यक्त-गोवर्धनपीठीयश्रीशङ्कराचार्याधिकारस्य महाविदुषः स्वर्गवासिनः श्रीसुब्रह्मण्यदेवतीर्थस्य शिष्यत्वमङ्गीकृत्य चतुर्थाश्रमं प्रविशन् शुद्धबोधतीर्थनाम्ना परिचित आसीत्।

अभवच्चायमार्षग्रन्थेषु महादरो, बहुशोऽष्टाध्यायीपाठने विदुषा-मादरशैथिल्यं निरीक्ष्यापि सोरस्ताडं छात्रान् बोधयति स्म

एवं सर्वोन्नति में तन मन धन समर्पण कर दिया। श्री आचार्य जी की सच्ची लगन तथा आत्मसमर्पण ने ही विद्यालय की यह उन्नति की है और भारतवर्ष में एकमात्र निःशुल्क वैदिक शिक्षा का आदर्श महाविद्यालय घोषित कर दिया है। क्या कहें, श्री स्वामी जी के देहावसान से भारतवर्ष में एक अपूर्व आदर्श एवं वेदोक्त शिक्षक और वैदिक धर्म के प्रेमी का स्थान खाली होगया।

आप की पूर्ण विद्वत्ता सहनशीलता कर्तव्यपरायणता आदि अकथनीय सद्गुणों का मैं वर्णन नहीं कर सक्ता। आशा है कि उनके शिष्यगणों में से प्रमुख वर्तमान महाशिष्य, चरणों के प्रेमी, वेदशिरोमणि एवं सच्चे देशभक्त श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ जी भी उनके लगाये वेदोक्त शिक्षा के कल्पवृक्ष के मूल को आजन्म अपनी विद्वन्नीति-रीति से पूर्ण दृढ़ कर श्री आचार्य जी के शुभ नाम को चिरस्थायी कर यश के पात्र बनेंगे।

श्रीनारायणस्वामी जी प्रधान सार्वदेशिकसभा लिखते हैं—

"संवत् १९५२ या ५३ से मैं स्वामी जी से परिचित हूँ जब वे जालंधर में कुछ विद्यार्थियों को* पढ़ाया करते थे। उससे भी कुछ पहले की बात है, श्री स्वामी जी महाराज‡ की बंद की

* आर्यपूर्तिनिधिसभा पंजाब द्वारा संस्थापित वैदिक आश्रम।
‡ श्री १०८ स्वा० दयानन्दसरस्वती।

हुई फ़रुखाबाद वाली पाठशाला के धन से§ स्वर्गीय बाबू दुर्गा-प्रशाद जी के सहयोग से हम फरुखाबाद में एक पाठशाला खोलने लगे थे। उस समय में अष्टाध्यायी के विद्वान् होने के नाते से स्वा० शुद्धबोधतीर्थ, (जो उस समय पं० गंगादत्त थे) उस पाठशाला के अध्यापक नियत हुए। स्वा० श्रद्धानन्द जी ने जो उस समय म० मुन्शीराम थे, पं० जी को देने पर रजामंद होगये थे। यदि ऐसा हो जाता तो स्वा० शुद्धबोध का कार्यक्षेत्र ज्वालापुर की जगह फरुखाबाद ही होता, परन्तु उसमें पण्डित गिरधारी-लाल जो फरुखाबाद ही के रहने वाले थे और पंजाब की सभा के उपदेशक थे, बाधक हुए और वह पाठशाला नहीं चल सकी। उसके बाद जब स्वा० शुद्धबोध जी गुजरानवाला, काँगड़ी व ज्वालापुर रहे उस समय से अन्त तक मेरा उनसे मेल-जोल रहा। इसमें जरा भी संदेह नहीं कि स्वा० शुद्धबोध जी संस्कृत के एक उत्कृष्ट विद्वान् थे और उन्होंने अपनी विद्या से बहुसंख्या में विद्यार्थियों को लाभ पहुँचाया। वे बड़े नम्र थे और प्रत्येक से ही बड़ी प्रीति से मिला करते थे।

"उनकी विद्या, उनका आचार, उनका पुरुषार्थ, तपस्वी जीवन सभी के लिए आदरणीय व अनुकरणीय है।

"दुःख है उनके शरीरान्त होने से आर्यसमाज को ऐसी हानि उठानी पड़ी जिसकी पूर्त्ति कठिन है"

(देहली मार्ग० कृ० ८)

§ जो लगभग दो लक्ष रु० था

बाबू पूर्णचन्द जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्तप्रान्त लिखते हैं—

"स्वा० जी संस्कृत भाषा के उच्च कोटि के विद्वान्, व्याकरण के धुरन्धर पण्डित और आर्यसमाज के सच्चे हितैषी तथा कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने जो सेवायें आर्यसमाज की की हैं वे कभी भुलाई नहीं जा सकतीं, क्योंकि उनका कार्य आर्यसमाज की नींव को सर्वदा के लिए जमाने और दृढ़ करने के लिए था और **वास्तव में उनका ठोस काम ही उनकी विशेषता है** कि उन्होंने आप जैसे अनेक विद्वान् पण्डितों को अपनी मिशन की पूर्त्ति के लिए काम करते हुए छोड़ा। वे बड़े सौभाग्यशाली थे...........

(आगरा १-११-३३)

श्री पं० देवशर्मा आचार्य गुरुकुल कांगड़ी—

"मैं अनुभव करता हूँ कि महाविद्यालय इस समय वैसा ही दुःख अनुभव कर रहा होगा जैसा कि गु० कु० काँगड़ी ने स्वा० श्रद्धानन्द के चले जाने पर किया था। **स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी न केवल महाविद्यालय ज्वालापुर के आधारस्तम्भ थे किन्तु गुरुकुल कांगड़ी के प्रवर्त्तकों में से भी एक थे और मेरे और मेरे पहले के सब स्नातकों के वन्द्यचरण गुरु थे।** उन जैसे महापुरुष के छिन जाने से सम्पूर्ण आर्यसमाज को भारी क्षति पहुँची है। आर्यसमाज एक बड़े अनुभवी विद्वान् व्याकरण (अष्टाध्यायी) के अद्वितीय पण्डित से विहीन होगया"

(वर्धा ६-१०-३३)

महात्मा हंसराज—

स्वा० जी व्याकरण के सूर्य थे और आर्यसमाज के प्रसिद्ध महापुरुष। **ज्वालापुर महाविद्यालय उनकी योग्यता व परिश्रम का फल है ।**

(लाहौर ४-१० ३३)

श्री पं० मुक्तिराम जी उपाध्याय आचार्य गुरुकुल पोठोहार—

आर्यसमाज के हाथों से **व्याकरण का दिवाकर छिन गया** और महाविद्यालय का अनन्य स्तम्भ टूट गया। भोग ऐसा ही था पर स्थानपूर्ति कठिन है।

(रावलपिण्डी ५ अक्तूबर)

"विश्वविद्यालय गुरुकुल वृन्दावन के समस्त कुलवासियों की यह सभा **आर्यजगत् के प्रकाण्ड पंडित व्याकरण के धुरन्धर विद्वान्,** भूतपूर्व आचार्य गु० कु० काँगड़ी तथा आचार्य व कुल-पति महाविद्यालय ज्वालापुर स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी की मृत्यु पर शोक व समवेदना प्रकट करती है"

बृहस्पति
आचार्य गु० कु० वृन्दावन

(२-१०-३३)

दिवगंत आत्मा को विशेष शान्ति तभी प्राप्त होगी जब कि उनकी जीवनज्योति के आदर्शानुरूप सत्त्वनिष्ठता के साथ संस्था को आर्ष आश्रमप्रणाली के अनुसार चलाने

में ही तन मन धन लगाया जाय। ईश्वर सब को धैर्य एवं साहस के साथ सद्बुद्धि दे कि भविष्य में श्री स्वा० जी महाराज प्रदर्शित आदर्शपूर्त्ति में ही अपना जीवन व्यय करें।

२८-९-३३ रामदत्तशुक्ल एडवोकेट (लखनऊ)
स्था० भोला-शाहजहांपुर

मेरे मन में स्वामी जी के लिये प्रेम व श्रद्धा थी। १८९९ में हम मद्रास प्रचार के लिये मिलकर गये थे।

२८-९-३३ शिवदयाल एम० ए०
उपप्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा (पञ्जाब)

श्री जयदेवप्रसाद गुप्त (एम० ए० बी० कॉम) एस० एम कॉलिज चन्दौसी—

आर्यसमाजक्षत्र से व्याकरण का सूर्य उठ गया। उनके जाने से व्याकरण का क्षेत्र अन्धकारमय हो गया। यद्यपि स्वा० जी अब इस भौतिक शरीर में नहीं है तथापि हमारी प्रार्थना यह है कि इतने गम्भीर व अद्वितीय आर्य विद्वान की चिरस्मृति बनी रहे। इसीलिये स्वामी जी का एक अखिलभारतीय स्मारक बनाना चाहिये। गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर शास्त्र-विषयक तथा संस्कृत व्याकरण की परीक्षाएं एक विश्व-विद्यालय के रूप में विभिन्न भारतीय केन्द्रों में खोले.... ....ऐसे आर्य विद्वान जिनकी सेवायों का आर्यसमाज सदा आभारी रहेगा। उनकी उज्ज्वल कीर्त्ति को बनाये रखना हम सबका परम कर्तव्य है।

चन्दौसी, ५८-९-३३

स्वा० जी को विद्या, त्यागभाव, आडम्बरशून्य जीवन, उनका परोपकारभाव ऐसे गुण हैं जो उन जैसे ही महान् पुरुष में पाये जाते हैं।

सालिग्राम शर्मा

२५-१०-३३ एग्रिकल्चरल स्कूल बुलन्दशहर

मेरा नामकरण, उपनयन, वेदारम्भ तीनों संस्कार श्री पूज्य स्वामी जी द्वारा संपन्न हुए थे। वे ही आचार्य व गुरु रहे। **वास्तविक गुरुकुल-शिक्षा के मर्मज्ञ थे। पर खेद है कि गृहकलह ने उनसे लाभ उठाने नहीं दिया"—**

पालीरत्न चन्द्रमणि स्नातक गु० कु० कांगड़ी

रुड़की आर्यसमाज

आर्यसमाज रुड़की श्री १०८ स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज आचार्य तथा कुलपति म० वि० ज्वालापुर की मृत्यु पर अत्यन्त शोक प्रकट करता है। श्री आचार्य जी महाराज के स्वर्गारोहण से जो क्षति, आर्यसमाजिक जगत् तथा म० वि० ज्वालापुर की हुई है उस की पूर्त्ति सुदूर काल में भी नितान्त असम्भव है। स्वामी जी ने अपने जीवनकाल में जो सेवा अपनी विद्वत्ता, निःस्पृहता, त्यागपूर्वक समाज की की है उसका निदर्शन मिलना नितान्त असम्भव है। आ० स० आप के द्वारा की गई सेवाओं का सर्वदा ऋणी रहेगा। ईश्वर से प्रार्थना है दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें।

साहित्यरत्न वाचस्पति मिश्र मंत्री

इस प्रकार महान पत्रराशि में से हमने ये थोड़े से पत्र प्रकाशित किये हैं जिससे बाह्य जगत् श्री १०८ स्वामी जी को किस दृष्टि से देखता है इस बात का वाचकवृन्द अनुमान कर सकें। उनके शिष्य और प्रशिष्यों के पत्र उद्धृत किये जायें तो समस्त पुस्तक ही पत्रों से परिपूर्ण हो जायगी।

———

[ले०—श्री देवेन्द्रनाथ शास्त्री]

'अर्जुन' के किसी गत अङ्क में श्री शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज के असमय देवलोक-गमन का समाचार छप चुका है। यह समाचार जहां २ पहुंचा, वहीं २ शोक की काली घटा छा गई क्यों कि आज व्याकरण का महान् सूर्य, संस्कृत साहित्य का अगाध विद्वान्, ज्ञान का भण्डार, सत्य और शुद्धाचार की साक्षात् मूर्ति, आर्यसमाज के लिये सर्वस्व अर्पण करने वाला तपस्वी इस धराधाम से उठ गया। आर्यसमाज का क्षेत्र एक महान् आत्मा के परलोक-गमन से चिरकाल के लिये खाली हो गया। आज आर्य-समाज के हजारों विद्यार्थी सिर धुन २ कर रो रहे होंगे, उनका आश्रयदाता अब कौन है? दीनों का बन्धु तो वही एक था, उसने दीनों को आश्रय देने के लिये ही जन्म लिया था।

हजारों ब्रह्मचारी हजार २ मुख से अपने गुरुदेव का यशगान कर रहे होंगे। आर्यसमाज के ऊपर तो मानो वज्र टूट पड़ा, इस

में सन्देह है कि निकट भविष्य में ऐसा आचारनिष्ठ तपस्वी आर्य-समाज उत्पन्न कर सर सके।

श्री शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज का पहिला नाम गङ्गादत्त जी था। आपने जिस समय १९०१ के लगभग आर्यसमाज में पदार्पण किया उस समय आप गुरुकुल सिकन्दराबाद ही आ रहे थे। आपके समकालीन स्वामी दर्शनानन्द जी, पं० गणपति जी, पं० मुरारीलालशर्मा जी आदि में गाढ़ मैत्री थी थी। कुछ वर्षों के अनन्तर आप गुरुकुल काँगड़ी पधारे, और गुरुकुल को एक आदर्श संस्था का रूप दिया, किन्तु कुछ सिद्धान्तों में मतभेद हो जाने से आपने गुरुकुल छोड़ दिया और महाविद्यालय ज्वालापुर को सम्हाला। तब से आचार्य जी यहीं रहे। यहीं संन्यास ग्रहण किया। महाविद्यालय के ऊपर अनेकों वार बड़े ' संकट आये, किन्तु आचार्य महाराज ने उनको बड़े धैर्य से सहा। यह आपही का शरीर था, जो चारों तरफ की टक्कर झेलता था, परन्तु कभी न घबराता था। आचार्य जी ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने का कठोर व्रत लिया था। उसको पूर्णरूप से निभाया। उनके विशाल शरीर और गम्भीर किन्तु सदा प्रसन्न रहने वाले चेहरे को देख कर वैदिक काल के ऋषियों का भान होने लगता था।

आचार्य जी ने अपना नाम कभी नहीं चाहा, यहां तक कि अपना चित्र खिंचवाने की भी आज्ञा नहीं दी। बड़ी कठिनता से शायद उनका चित्र लिया गया है। ब्रह्मचारी उनको अपना पिता समझते थे। उनके पास जाकर सब विद्यार्थी अपने माता-पिताओं

चित्र सं० ३

को भूल जाते थे। बच्चों से इतना प्रेम था कि उनके जरा से दुःख से विह्वल हो जाते थे।

एक बार महाविद्यालय में स्वर्गवासी पं० रामावतार शर्मा एम० ए० पधारे। यह सभी को विदित है कि पण्डित जी प्रसिद्ध नास्तिक थे और साथ ही अभूतपूर्व वक्ता भी। विद्यालय में आने पर उनके साथ विद्यार्थियों का विवाद खड़ा हो गया। सौभाग्य से उस विवाद में मैं सम्मिलित था। ब्रह्मचारी सिद्ध करते थे कि जीव एक नित्य चेतन पदार्थ है, पण्डित जी कहते थे कि जीवात्मा संयोगजन्य पदार्थ है। वीर्य और रज के संयोग से एक विचित्र चीज उत्पन्न हो जाती है, उसी को जीव कहते हैं। इस पर हम में से एक ने पूछा—अच्छा, रज और वीर्य में चेतनता किसका गुण है? जब दोनों जड़ हैं तब चेतनता कैसे आई। पण्डित जी ने कहा कि वीर्य में अनेक जीवित जन्तु रहते हैं, उन कीटाणुओं से ही शरीर बनता है, जीवात्मा कहीं बाहर से नहीं आता। तब हमने पूछा कि कीटाणु भी तो रज-वीर्य से बने होंगे, उनमें चेतनता कहां से आई? इस पर पण्डित जी बोले कि सायन्स इसमें आगे अभी नहीं जान सकी, जान लेने पर उत्तर दिया जायगा। इस सारे संवाद को आचार्य जी भी सुनते रहे। अन्त में उनसे न रहा गया। आचार्य जी ने कहा कि अपने ऋषि-मुनियों के अटल सिद्धान्त को छोड़ कर आज-कल के अनिश्चित्त सिद्धान्त वाले सायन्सदाओं के ऊपर आपको श्रद्धा कैसे होगई? रामावतार जी ने कहा, योरोप के विद्वान् इस समय सब के गुरु हैं। आचार्य जी ने बड़े गर्व से कहा आप धोखे में पड़े हैं। अभी ये लोग उनके चरणों में बैठने के योग्य

भी नहीं। आप जैसे मनुष्य उनकी उच्छिष्ट ग्रहण करते फिरते हैं, जो लोग ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों के स्वरूप को अभी तक न समझ पाये। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। उनको ऋषियों का गुरु कहना कोरी उच्छृङ्खलता है। पं० रामावतार जी को ऐसा निर्भीक वक्ता अभी तक एक न मिला था। आचार्य जी की तेजपूर्ण वाणी को सुनकर पण्डित जी ने कहा—हां सम्भव है मैं ही भूल करता होऊं। आचार्य जी ने कहा—सम्भव नहीं, निश्चय है कि आप भूल कर रहे हैं। जब तक कोई सिद्धान्त अकाट्य तर्क और प्रमाणों से सिद्ध न हो जावे, उसके पूर्व ही उसको मानने लगना मूर्खता नहीं तो क्या है ?

ऊपर के विवाद से पाठक जान सकेंगे कि आचार्य जी को अपने शास्त्रों पर कितनी बड़ी आस्था थी। शोक है कि ऐसा नर-रत्न आर्यसमाज से आज सदा के लिये उठ गया ! यद्यपि बीच में अनेक मतभेद होने के कारण आचार्य जी मुक्तिपीठ चले गये, जो महाविद्यालय के कुछ फासले पर एक स्थान है, परन्तु अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि उनके शिष्यों ने इसको सहन न किया और उनको उनके प्यारे महाविद्यालय में पुनः ले आये, जहां उनका नश्वर शरीर बड़े सन्तोष और धैर्य के साथ छूटा।

अपने गुरुदेव की स्थानपूर्त्ति के लिये अब क्या करना चाहिये, यह प्रश्न चारों तरफ उठ रहा है। आशा है कि उनके शिष्य इसकी पूर्त्ति के लिये पूर्ण प्रयत्न करेंगे।

श्री स्वामी शुद्धबोधतीर्थ

(एक शिष्य)

आचार्य स्वामी शुद्धबोध जी तीर्थ ऋषि दयानन्द की बनाई हुई आर्ष पाठ्यप्रणाली पर 'मनसि वचसि काये' से दृढ़ ही कर अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि आर्षग्रन्थों पर ही बल देते थे। उनका इन ग्रन्थों के पढ़ाने का ढंग भी अपना ही था। वह आर्ष ग्रन्थों के प्रचार की धुन में बाल्यावस्था में ही मथुरा गये और वहाँ ऋषि दयानन्द जी के सहपाठी ब्रह्मचारी प्रकाश जी से अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य पढे। उस के बाद काशी जाकर दर्शन तथा नव्य व्याकरण पढ़ते रहे। पं० कृपाराम (स्वा० दर्शनानन्द जी) जी से यहीं पहले पहल परिचय हुआ था। आचार्य जी का पहला नाम गंगादत्त था। धर्मवीर पं० लेखराम तथा महात्मा मुंशीराम जी इन के अभिन्न मित्र थे। स्वामी जी सुनाया करते थे कि पं० लेखराम जी बड़े नरम प्रकृति वाले थे। जब हम दोनों में किसी बात पर झगड़ा होजाता तो मैं उनसे नाराज होकर अलग जा बैठता और उनसे न बोलने की कसम खा लेता। थोड़ा समय इसी चुप्पी से काटता परन्तु पं० लेखरामजी का हृदय इतना वियोग कब तक सह सकता था, झटपट आते और कहते पं० जी यह प्रश्न तो समझाइये। धर्मवीर के स्वर्गारोहण के पश्चात् आचार्य जी महात्मा मुंशीराम जी के साथ काम करने लगे। जालन्धर में संस्कृत पाठशाला खोल ली तथा वहीं अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़ाने लगे। १९०१ में महात्मा जी ने गुरुकुल

कांगड़ी की नींव रक्खी और उनके अत्यन्ताग्रह से आचार्य जी वहाँ के आचार्य बने। १९०५ तक यही क्रम चलता रहा तभी गुरुकुल का पाठ्यक्रम निःशुल्क या सशुल्क होना चाहिये इस विषय पर वाद विवाद चलता रहा। स्वा० दर्शनानन्द ने गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर की स्थापना की। गुरुकुल कांगड़ी में फीस लग गई। आचार्य जी वहां से चले आये और गुरुकुल ज्वालापुर के आचार्य बनाये गये। गुरुकुल कांगड़ी से महात्मा मुंशीराम जी मय ब्रह्मचारियों के जत्थे के कई बार पालकी लेकर भी आचार्य जी को लिवा ले चलने आये। परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ त्यागी विचलित नहीं हुए।

एक बार गोवर्धनपीठ की शङ्कराचार्य की गद्दी के लिये इन पर बहुत जोर दिया जाने लगा, पर वे तब भी तैयार न हुए, जब लोगों ने बहुत ही कहा—तो बोले, "मैं शङ्कराचार्य होते ही सारी सम्पत्ति गुरुकुल ज्वालापुर को दे डालूंगा"। इस से ज्यादा त्याग और क्या हो सकता है ? हिन्दुओं की दयनीय अवस्था पर एक बार उन्हों ने कहा था "बात क्या है, केवल १, २ लाख हिन्दू मरने के लिये कटिबद्ध हो जाएं तो सारा फैसला हो जायेगा— सारी समस्याएं हल हो जायेंगी—पर हिन्दुओं में मरने की शक्ति नही है उन्हें मौत से डर है।"

उन की एक अभिलाषा थी कि उन का कोई शिष्य ऐसा पैदा हो जो व्याकरण में उन से भी ज्यादा योग्य हो। जिसे ज्यादा न सही— कम से कम उन जितना तो सही, जिस से उन्हें सन्तोष होता कि हां उन का काम सम्भल गया है। उन का प्रयत्न

सफल हुआ, उन के इस परिश्रम का कुछ फल न निकला। उन के हज़ारों शिष्य शास्त्री, आचार्य, तीर्थ हैं, योग्य हैं, परन्तु उन की वह इच्छा—कि कोई आर्षग्रन्थों का विद्वान् ऋषि दयानन्द का अनुगामी, पूर्ण ब्रह्मचारी तेजस्वी महान् शक्तिशाली आर्य हो—पूरी न हो पाई। चाहे उन से कोई रात में पूछें, चाहे दिन में प्रत्येक समय उत्तर के लिये तैयार रहते थे। होनहार लड़कों को कभी कभी दिल में रखी हुई निधि को—अमूल्य रत्नों को—जिन्हें गुरु अपने किसी योग्य शिष्य को ही बताता है—बताते थे। पर यह सब होने पर भी उन्हें जो चाह थी न मिल सकी। उन के विचार, उन का अथाह पाण्डित्य, अष्टाध्यायी, महाभाष्य पढ़ाने की प्राचीन प्रणाली सब कुछ उन के साथ उन के कैवल्य में मिल जाने पर अनन्त में मिल गया। इस का भी एक कारण है कि वह पढ़ाते थे निःस्वार्थ भावना से, और छात्र पढ़ते थे स्वार्थपूरित मन से, परीक्षा में पास होकर नौकरी मिल जाने की दुर्भावना से न कि विद्वान बनने के विचार से। बीज शुद्ध था पर उस के लिये खेत दूषित था।

गम्भीरता में तो उन से समुद्र भी शर्माता था। एक बार जो बात किसी ने उन से कह दी, मानों बस रसातल पर पहुंच गई। शत्रुता का भाव तो उन्हें छू भी नहीं गया था। स्वा० श्रद्धानन्द जी के बलिदान होनेसे कुछ ही पूर्व वे दिल्ली गये थे। शायद उन्हें मिलने ही। आचार्य जी सुनाते थे कि अब की बार स्वा० श्रद्धानन्द जी इस तरह मिले हैं जैसे फिर कभी मिलना ही नहीं"। बस उन का सचमुच वही अन्तिम मिलना था। गुरुकुल कांगड़ी में बाढ़ आजाने के कारण गुरुकुल वाले उसे यहीं कहीं

ज्वालापुर के आस पास लाने वाले थे । पं० विश्वम्भरनाथ जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल प्रायः रोज ही आचार्य जी के पास आते और रोज घण्टों बातें होतीं । वह कहते थे "दोनों संस्थाएं एक कर दी जाएं, १० वीं तक के ब्रह्मचारी महाविद्यालय ज्वालापुर में रहें और १४ वीं तक के लिये पृथक् विभाग बन जाए" आचार्य जी का एक ही उत्तर था "जब तक मैं जीवित हूं तब तक दोनों पृथक् रहेंगी और यहाँ निःशुल्क शिक्षा रहेगी, हां मेरे मरने पर चाहे जो करना, यहां तो निर्धन छात्र पढ़ते हैं । दोनों एक हो जाने पर वे विचारे कहां भटकेंगे" ।

उन १० वर्षों में मैंने कई बातें देखीं सुनीं, परन्तु आचार्य जी का वही प्रोग्राम, वही दैनिक स्वाध्याय, व्यायाम, प्रातः सायं भ्रमण, ध्यान, बराबर एक सा ही रहा, एक दिन का भी परिवर्तन नहीं हुआ । वे एक समय भोजन किया करते थे । इतना सब कुछ होने पर भी न किसी से राग द्वेष न कभी किसी से मांगा, न लिया । उन के सारे साथी—पं० लेखराम, स्वा० दर्शनानन्द पं० गणपति, महात्मा मुंशीराम, पं० पद्मसिंह, सारे के सारे चले गये । सब के दुःख को इन्होंने सहा था, सारा कष्ट मानों घनीभूत होकर इन्हीं में समा गया था. वियोग सहने पर भी उन में उत्साह था ।

अब भी, गुरुकुल ज्वालापुर में सब कुछ है—वे सब बातें हैं जो उनके मरने से पहले श्री मुख्याधिष्ठाता योग्य व्यक्ति में थीं । वह उन्हीं के प्रधान शिष्य हैं, योग्य विद्वान् हैं, सेवक भी हैं, सब कुछ है पर वह चीज जिसे मैं वहां जाकर खोजूं—जिसे मैं आखों से देखूं नहीं है, सैंकड़ों छात्र और अध्यापक हैं पर फिर भी

निर्जनता सी आ गई है। वे ही मुख्य मकान है, पर उनका ख्याल आते ही भय लगने लगता है। मन कहता है वे नहीं है क्या उनके कभी दर्शन न होंगे--कभी न होंगे !!! वह चीज जो इन सब में—गुरुकुल ज्वालापुर की वाटिकाओं के पत्ते पत्ते में यहां की मिट्टी के एक एक कण में व्यापक होकर उसे सजीव कर रही थी, अब नहीं रही है। वह केन्द्र जहां जाकर नजर अटक जाए—नहीं है।

×

श्री स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज

[ले० श्री नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ।]

श्री स्वामी जी का जन्मस्थान बेलोन है, जो राजघाट नरोरा (बुलन्दशहर) के पास है। डिबाई स्टेशन से तीन मील पर है। यह स्थान बेला भवानीदेवी के कारण प्रसिद्ध है। किसी समय यहां बड़ा बिल्ववन था। स्वामी जी के पिता पं० हेमराज वैद्य थे। इनके भाई पं० कन्हैयालाल पुजारी थे। स्वामी जी का जन्म नाम है गंगादत्त। गंगादत्त के गंगादत्तशास्त्री हुए और संन्यास लेने के पश्चात् स्वामी शुद्धबोधतीर्थ बन गये। आपने संन्यास लिया था श्री स्वा० सुब्रह्मण्यदेवतीर्थ उर्फ पण्डितस्वामी से जो गोवर्द्धनमठ पुरी के शंकराचार्य के प्रमुख शिष्य थे।

× यह लेख स्वा० जी के स्वर्गवास से पंद्रह दिन पूर्व का है।

स्वामी जी बाल्यावस्था में बेलोन ही पढ़े। किशोरावस्था में खुरजा में पं० किशोरीलाल ज्योतिषी से ज्योतिष पढ़ा। मथुरा में प्राचीन व्याकरण का अध्ययन किया। वहां से काशी पहुंचे। वहां स्व० श्री पं० हरनामदत्त जी भाष्याचार्य से महाभाष्य, श्री गुरुवर काशीनाथ शास्त्री जी से नव्य व्याकरण वेदान्त, श्री पं० सीताराम शास्त्री द्रविड से नव्य न्याय पढ़ा। जब आप काशी में पढ़ते थे तभी व्याकरणशास्त्र के अच्छे पण्डित कहलाने लग गए थे, काशी में आपने आठ वर्ष तक अध्ययन किया।

सन् १८९४ में आर्यप्रतिनिधि पंजाब ने उपदेशक तैयार करने के लिए वैदिक आश्रम नामक विद्यालय जालंधर में खोला था। महात्मा मुन्शीराम जी की लिखा पढ़ी करने के कारण स्वा० दर्शनानन्द जी ने (उस समय के पं० कृपाराम जी) पं० गंगादत्त शास्त्री जी को जालन्धर भेजा। वहां ६ वर्ष काम करने के पश्चात् पण्डित जी महात्मा मुन्शीराम जी के साथ गुरुकुल कांगड़ी में काम करने लगे। उस समय श्री म० मुन्शीराम मुख्याधिष्ठाता व श्री पं० जी गुरुकुल के आचार्य रहे। श्री स्वामी जी गुरुकुलकार्य में महात्मा मुन्शीराम जी के दक्षिण भुजा स्वरूप थे। १९०५ तक यहां काम करने के पश्चात् आपने गुरुकुल छोड़ दिया व दो वर्ष तक हृषीकेश व भोगपुर के रमणीक स्थानों में रहे। १९०७ में आप महाविद्यालय ज्वालापुर पधारे और तब से १९३२ तक आप महाविद्यालय के आचार्यपद पर अधिष्ठित रहे। वृद्धावस्था के कारण १९३२ के निर्वाचन में महाविद्यलय सभा ने आप को महाविद्यालय का कुलपति बनाया और आचार्यपद विश्वनाथ शास्त्री (वर्त्तमान मुख्याधिष्ठाता) को मिला। अब आचार्यपद पर

चित्र सं० ४
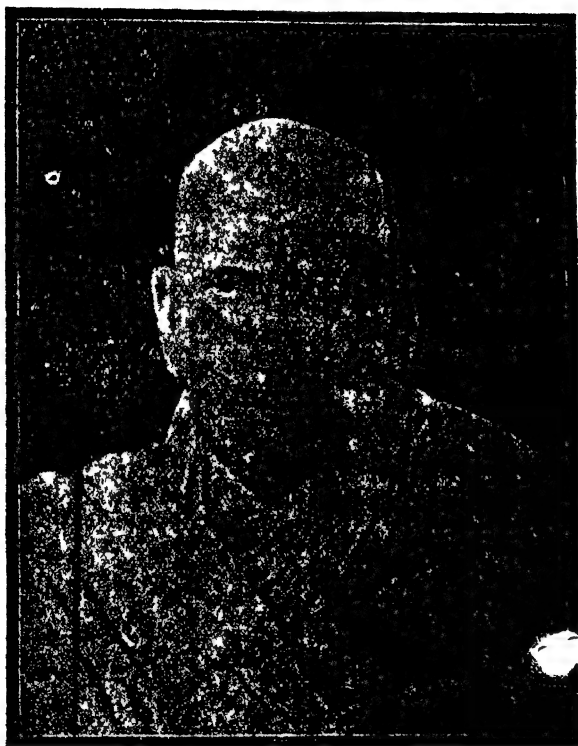
श्रीस्वामी श्रद्धानन्द जी संस्थापक गुरुकुल कांगड़ी।

अधिष्ठित हैं श्री पं० भीमसेनशर्मा जी के सुपुत्र श्री हरिदत्त शास्त्री पंचतीर्थ। इस प्रकार १८९४ से लेकर १९३३ तक अर्थात् लगभग ४० वर्ष तक श्री स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी ने आर्यसमाज में प्राचीन शिक्षा के उद्धार में अनुपम कार्य किया जिसकी तुलना नहीं हो सकती। आपके सैकड़ों विद्वान् शिष्य व सहस्रों उप-शिष्य ही इनके अनुपम कार्य का ज्वलन्त प्रमाण हैं। स्वा० जी ने महाविद्यालय ज्वालापुर के लिये जो कुछ किया उसका उल्लेख करना हो तो एक छोटी सी पुस्तक लिखी जा सकता है आपके कार्य में स्व० श्री पं० पद्मसिंहशर्मा साहित्यचार्य व स्व० श्री पं० भीमसेनशर्मा ने भी बहुत हाथ बटाया था। स्वा० जी आर्यसमाज के प्रतिभा-शाली विद्वान् हैं। आप अपूर्व त्यागी संन्यासी भी हैं। आप व्याकरणशास्त्र के सूर्य कहलाते रहे हैं। आपको नूतन व पुरातन व्याकरणशास्त्र के अपरिमित ग्रन्थ हस्तामलकवत् थे। ऐसे त्यागी, तपस्वी, छात्रवत्सल, शान्त, दान्त, गुरु आर्यसमाज में ही क्या दूसरे मण्डल में भी विरले ही होंगे। आप अपना कार्य चुपचाप करते रहते रहे हैं और अख-बारी दुनिया में आना उचित नहीं समझते। आर्यसमाज के प्रायः नवीन पीढ़ी के पण्डित व विद्वान् आपकी शिष्यपरम्परा में हैं। आपका त्याग ऐसा अपूर्व है कि आप चाहते तो आपको गोवर्द्धन-पीठ की शंकराचार्य की गद्दी मिल सकती थी पर आपने उस तरफ ध्यान नहीं दिया।* स्वामी जी ने महाविद्यालय का काम जब हाथ में लिया था तब केवल तीन बीघे जमीन व ग्यारह ब्रह्मचारी

---

* नोटः--हमें अच्छी तरह मालूम है कि सन् १९२५ या २६ में श्रीस्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज को गोवर्द्धनपीठ की गद्दी दी जा रही थी। नरोरा-गंगातट पर गोवर्द्धनमठ के स्वर्गीय

थे। स्वामी जी के परम पुरुषार्थ से आज महाविद्यालय इतनी ख्याति को प्राप्त हो गया है व आर्यसमाज की प्रसिद्ध संस्थाओं में से है। आर्यसमाज स्वामी जी का चिरकृतज्ञ रहेगा। स्वामी जी को आर्यसमाज में लाने का श्रेय महाविद्यालय के स्व० संस्थापक श्री स्वामी दर्शनानन्द जी को ही है। इस प्रकार स्वामी जी के जीवन का (इस समय आप ७२ वर्ष के हैं) आधे से अधिक भाग अर्थात् पूरे चालीस वर्ष आर्यसमाज में पवित्र शिक्षा के कार्य में गये। आर्यसमाज में असली ठोस कार्य संस्कृत के विद्वानों का बनाना ही है।

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब की प्रेरणा से स्वामी जी व श्री बा० शिवदयालु एम० ए० मदरास प्रान्त में पंचमों (एक प्रकार के हरिजन) की दशा का निरीक्षण करने गये थे और समस्त मदरास प्रान्त में दौरा लगाया था। आप महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) के परममित्र रहे हैं। गुरुकुल कांगड़ी की अन्तःस्थ व्यवस्था में मतभेद हो जाने के कारण स्वामी जी ने गुरुकुल छोड़ा था किन्तु उसके पश्चात भी स्वामी श्रद्धानन्द व स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी में बराबर घनिष्ठ सम्बन्ध और परस्पर

श्री स्वा० शंकराचार्य जी महाराज तथा अन्य कई महानुभाव एकत्र हुए। सबने श्री स्वा० शुद्धबोधतीर्थ महाराज से अति आग्रह किया कि वे गोवर्द्धन पीठ की गद्दी स्वीकार करलें, परन्तु स्वामी जी ने स्पष्ट कह दिया कि मैंने जीवन-भर आर्यसमाज की सेवा की है, अतः अब अन्त समय में गद्दी के मोह में पड़कर अपने सिद्धान्त को नहीं छोड़ सकता। हम समझते हैं, इतनी बड़ी गद्दी को त्याग देना साधारण काम नहीं है।

मिलते जुलते रहे। आज अदृष्ट की महिमा देखिये पण्डितमंडली जिस गु० कु० को छोड़कर आयी थी वही गुरुकुल महाविद्यालय के पास आगया है। महाविद्यालय व गुरुकुल दोनों संस्थायें पृथक् पृथक् अपना काम कर रही हैं। दोनों संस्थाओं में सद्भाव है। पता नहीं भविष्य के अनन्त गर्भ में क्या है। स्वा० जी जिस समय काशी में अध्ययन करते थे, पं० आर्यमुनिजी उस समय काशी में वेदान्तशास्त्र का अध्ययन करते थे। पं० कृपाराम जी (स्वा० दर्शनानन्द) वहां तिमिरनाशक प्रेस चलाते थे। रावलपिंडी के स्वर्गीय पं० सीताराम शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, महाविद्यालय के स्व० पं० भीमसेनशर्मा स्वामी जी से पढ़ते थे। स्वामी जी ने मथुरा में प्राचीन व्याकरणशास्त्र जिनसे पढ़ा था उनका नाम श्री पं० उदयप्रकाश महाराज था। ये उदयप्रकाश जी स्वा० दयानन्द के सहाध्यायी थे, अष्टाध्यायी महाभाष्य के प्रवीण पण्डित थे।

हमारे स्वामी जी उच्च कोटि के गुरु संन्यासी हैं ही। आपकी पैतृक संपत्ति वैद्यक रही है। आप अच्छे वैद्य व अच्छे ज्योतिषी रहे हैं। आपने अष्टाध्यायी पर एक अच्छा टीकाग्रन्थ लिखा है। गुरुकुल कांगड़ी की प्रारम्भिक दशा में विशेषरूप से तैयार किया गया था। गतवर्ष से स्वामी जी बार बार रुग्ण हो रहे हैं। अगस्त ७ (१९३३) से एकदम ऐसे रुग्ण होगये हैं कि उन की दशा चिंतनीय होगयी है। महाविद्यालय के लोग, उन का शिष्यमण्डल सर्वात्मना उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रहा है। कनखल के वैद्य पं० रामचन्द्र जी व मेरठ के वैद्य पं० हरिशंकर जी की चिकित्सा होती रही है। भविष्य ईश्वर के हाथ है। वह जो कुछ करेगा उस की इच्छा।

श्री स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी का प्रयाण

(संस्मरण)

श्री पं० नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ

श्री स्वा० शुद्धबोधतीर्थ आचार्य तथा कुलपति अब केवल स्मृतिमात्र का विषय रह गये हैं। वह दिव्य व भव्य शरीर अब कहाँ देखने को मिलेगा ? इस प्रकार के नव्य व प्राचीन व्याकरण शास्त्र के उद्भट पण्डित कहाँ मिलेंगे ? अभी आपके प्रयाण को दो-एक दिन ही हुये हैं तो भी आप ऐसे प्रतीत होते हैं कि आपके प्रयाण को वर्षों गुज़र गये हैं। प्रभुरत्र कालः। उसकी अनंत उदरदरी में न जाने कौन कहां कब से पड़ा है।

आपके उस दिव्य व भव्य शरीर को अग्निसंस्कार किया गया। कई मन सामग्री, कई मन घृत, चंदन आदि से 'स्वाहा', 'स्वाहा' हुआ और अग्नि देवता ने उस भौतिक शरीर को खाक करके खाक में मिला दिया, घोर वर्षा ने उस राख को बहा कर गंगाजी में बहा दिया, बस पृथिवी का भाग पृथिवी में जा मिला, तेज का भाग सूर्य में पहुँचा, जलमय भाग जल में बह गया, वायु वायु में जा मिला, और उदराकाश महाकाश में प्रविष्ट हुआ। स्थूल शुद्धबोध की यह दशा हुई। जिसको हम इतना प्रिय कहते थे, जो हमारे हृदय का अधिष्ठातृदेव था उसको हम स्वयं अपने हाथों से फूक आये। पर असली स्वामी शुद्धबोधतीर्थ अमर थे, वे मरे नहीं, उनकी कीर्ति अजरामर है, आर्यसमाज में

चिरकाल बनी रहेगी। उनका व्यापक शिष्यसमुदाय चिरकाल तक गुणगान करता रहेगा।

आप खुरजे में जब पढ़ते थे तब चौथे दिन घर भाग आया करते थे। इनके भाई पं० कन्हैयालाल पुजारी का यह असह्य हो जाता और इनको डाटते कि एक महीने में आया करो इस तरह जल्दी जल्दी आने से तुम्हारी पढ़ाई का नाश होगा। उस समय के शुद्धबोधतीर्थ (बालक गंगादत्त) ने कहा कि मुझे काशी भेज दो। भाई ने ताना देकर कहा 'हाँ, काशी जाकर ज़रूर महाभाष्य पढ़कर आयगा'—उसी दिन गंगादत्त विना पूछे ही घर से निकल पड़े, अलीगढ़, मथुरा, कानपुर होते हुये काशी पहुँचे और वहाँ से वापस आये पूरे आठ वर्ष में—महाभाष्य पढ़कर। पीछे भाई कन्हैयालाल जी का देहावसान भी हो गया था—स्वामीजी ऐसे तेजस्वी थे।

स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी क्रोधी स्वभाव के थे इसलिये इनको पहले सभी "रिसीजी रिसीजी (क्रोध करने वाले) कहते थे। जब काशी जी पढ़ कर आये तब 'ऋषि जी' 'ऋषि जी' कहने लगे। अब भी राजघाट, नरोरा, डिबाई के हलके में आपका नाम 'ऋषिजी' करके प्रसिद्ध है।

स्वामी जी अध्यापन-कार्य में ऐसे दक्ष थे कि प्राचीन ऋषि मुनियों के स्वाध्याय व तप की याद आ जाती थी। प्रातःकाल से रात्रि के बारह बजे तक अध्ययनसत्र चलता ही रहता था। अब अष्टाध्यायी का पाठ, अब महाभाष्य, अब शेखर, अब मनोरमा, अब न्याय, अब काव्य, अब कौमुदी, अब परिभाषेन्दु,

बस एक ताँता लगा रहता था। जिस सिद्ध पुरुष ने चालीस वर्ष तक यही सत्र लगा रक्खा हो उसकी महती किन शब्दों में वरनी जावे। सचमुच स्वामीजी सतयुगी पुरुष थे और अपने भोले भाले स्वभावानुरूप यही समझते रहे कि अभी सतयुग का प्रथम चरण चल रहा है और इसी विचार से वे सबसे वैसाही वर्त्ताव रखते रहे और वैसाही वर्त्ताव सब से चाहते रहे। उन्होंने प्रकृति के अनुरूप वैसा वर्त्ताव रक्खा किन्तु उनको वैसा वर्त्ताव दूसरी ओर से नहीं मिला, यही उनको क्लेश था। पर समय-गति को क्या किया जाय।

उनके बृहत् शिष्य समुदाय में से एक तुच्छ सेवक यह लेखक भी है। इसने स्वामी जी से अष्टाध्यायी, महाभाष्य, काशिका योगदर्शन (मूल) न्यायदर्शन (मूल) भट्टिकाव्य संपूर्ण पढ़ा था। स्वामी जी का छात्रवत्सल तो स्मरण कर-करके हृदय भर आता है—ईश्वर का परम अनुग्रह, पूर्व जन्म का कुछ पुण्य कि सन् १८९८ जून मास में स्वामी जी के प्रथम दर्शन हुये थे तब से अब तक मंगलवार सप्तमी (आश्विन शुक्ला १९९०, सन् १९३३) रात के दस बज कर तीन मिनट तक हम गुरु शिष्यों का घनिष्ठ संबन्ध बराबर अव्याहतरूप में बना रहा—नहीं तो इस घोर कलिकाल में कौन गुरु, कौन किसका शिष्य, और कैसा गुरु-शिष्य-सम्बन्ध !!!

आपके शिष्यवृन्दों में पं० पद्मसिंह साहित्याचार्य, कविराज पं० सीताराम शास्त्री जैसे स्वर्गीय महानुभाव भी थे। इन्होंने कितने शास्त्री, कितने तीर्थ, कितने आचार्य तैयार किये, बस अभी तो

कोई हिसाब नहीं लग सका है—समस्त उत्तर भारत में चहुँ ओर आपका शिष्य मंडल फैला हुआ है ।

हरद्वारी पंचपुरी के साधुसंतों में बड़ा होहल्ला मचा हुआ है कि महाविद्यालय वालों ने दण्डीस्वामी शुद्धबोधतीर्थ को जलाया, उनका अग्निसंस्कार किया यह अच्छा नहीं किया, उनके शरीर को जलप्रवाह करना चाहिये था । इन साधु सन्तों को यह पता नहीं कि संन्यासियों को जलप्रवाह करने की प्रथा इसलिये चल पड़ी थी अथवा डाली गयी थी कि ये कहां से लकड़ी लाते, कहाँ से घृत व कहां से सामग्री । इसलिये जहां देखा कि संन्यासी मरा कि पास के जलप्रवाह में उसको प्रवाहित कर देते थे । जिस स्वामी शुद्धबोधतीर्थ का इतना बड़ा विद्या का परिवार था, जिसका इतना बड़ा इतना महाविद्यालय था वह न तो अनाथों की तरह मर सकता था और न ही लावारिस लाश की तरह बहाया जा सकता था । उसका इलाज भी राजाओं जैसा हुआ, उनकी बीमारी भी शान की थी, एक वर्ष तक बराबर वे उस बीमारी से लड़ते रहे, व अन्त में शान से मरे, होश में मरे, ॐ ॐ कहते कहते मरे, और आपकी श्मशानयात्रा भी धूमधाम से हुई, समस्त पंचपुरी के लोग इसमें सम्मिलित हुये—शुद्ध स्वच्छ स्मृति व यज्ञ छोड़ कर स्वामी शुद्धबोध न जाने किस लोक लोकान्तर को पधार गये । अब ढूढ़ने से भी नहीं मिलेंगे ।

यदि गुरुकुल कांगड़ी के प्रारम्भ में स्वा० शुद्धबोध जैसे आचार्य न मिलते तो स्वा० श्रद्धानन्द जी को इतनी कामयाबी न मिलती । इन दोनों में गाढ़ प्रेम था और बीच में कुछ काल के लिये उसमें व्यत्यय आकर फिर पूर्ववत् गाढ़ हो गया था ।

इनको काशी से पहले–पहले बुलाया स्वा० श्रद्धानन्द जी ने और भेजा स्वा० दर्शनानन्द सरस्वती ने, इसलिये पहले इन्होंने स्वा० श्रद्धानन्द जी का (गुरुकुल का) काम किया और पीछे मरने तक स्वा० दर्शनानन्द का (महाविद्यालय का) का काम किया। स्वा० शुद्धबोध संसार से सब प्रकार से उऋण होकर गये। इन्होंने ऋषितर्पण (स्वाध्याय और तप) खूब किया, ऐसा किया कि कोई क्या करेगा, सशुल्क गुरुकुल व निःशुल्क गुरुकुल दोनों का उद्धार किया और भाग्यशाली शुद्धबोध ने अपने अन्तिम समय में पास-पास देखा-कितना बड़ा पुण्य !

अब इनकी शिष्यपरम्परा का कर्तव्य है कि वे इनकी स्मृति को ऋषितर्पण (स्वाध्याय और तप) द्वारा सुरक्षित रक्खें। स्वा० शुद्धबोधतीर्थ, लोकैषणा से दूर भागते थे व यही चाहते थे कि आर्यजगत् में विद्वानों की अधिक से अधिक संख्या हो। बस उनकी इसी इच्छा की पूर्ति होनी चाहिये, वैसे जब तक गुरुकुल कांगड़ी, तथा महाविद्यालय ज्वालापुर हैं तब तक इनकी स्मृति को कौन मिटा सकता है ।

जाओ स्वा० जी जाओ, आप अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर गये। आप जगत् में आये, आपका नाम गंगादत्त पड़ा और अन्त में आपकी राख भी गङ्गा जी में ही बह गयी और पीछे केवल आपका अमिट शुद्धबोध शेष रह गया है, हम लोग आपकी बृहत् शिष्यपरम्परा उसी से लाभ उठाते रहेंगे और आपकी कीर्त्ति सुरक्षित रखने का प्रयत्न करेंगे।

यह तुच्छ लेखक जब पहले-पहले कालेज छोड़कर लाहोर से

आपके चरणों में पहुँचा था तब इसका नाम था नरसिंहराव, आपने नाम सुनते ही मुस्करा कर कहा यह आधा मनुष्य का आधा पशु का नाम कैसा, तुम्हारा नाम **नरदेव** कर देते हैं। मैंने कहा बहुत अच्छा, आपने कहा बहुत अच्छा और महात्मा मुन्शीराम ने कहा बहुत अच्छा और तब से मैं सचमुच नरदेव बन गया।

स्वामी जी का स्वर्गवास

स्व० श्री० १०८ स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज के निधन के उपलक्ष्य में जो महानुभाव बराबर तार पत्र भेज कर दुःख में सहानुभूति व समवेदना प्रकट कर रहे हैं उन सबको, बीमारी की दशा में मेरठ के प्रसिद्ध वैद्य पं० रामसहाय शर्मा, पं० हरिशंकर वैद्य, कनखल के पं० रामचन्द्र वैद्य ने जो परिश्रम उठाया उसके लिये कृतज्ञता किस प्रकार किन शब्दों में प्रकट की जावे। श्री स्वा० गोपालतीर्थ व उनका शिष्य मण्डल (मुरादाबाद) श्री स्वा० घनानन्दतीर्थ (किरठल), श्री पं० रविशङ्कर शर्मा वानप्रस्थ ब्र० पद्मनाभ (ट्रावनकोरवासी) ब्र० सोमदेव (अलीगढ़), देवदत्त शास्त्री आचार्य (स्वा० शुद्धबोधतीर्थ के सम्बन्धी) पं० प्रभुलाल (लाँक) पं० जयनारायण शास्त्री, पं० कांचीदत्त जी शर्मा आदि तो रातदिन स्वा० जी के पास ही रहे और सेवाभाव का आदर्श

दिखलाया। महाविद्यालय का पण्डितमण्डल, अधिकारीवर्ग ब्रह्मचारीवर्ग बराबर श्रद्धा से तत्पर रहा। स्वा० जी के शिष्य-वर्ग ने बीमारी के दिनों में मुक्तहस्त से खर्च किया और महाविद्यालय पर कोई किसी प्रकार का बोझ न पड़ने दिया।

स्वामी जी का अन्तिम संदेश।

मैंने कहा—कुछ कहना है।

स्वा०—कुछ नहीं।

मैं—महाविद्यालय वालों से कुछ कहना है।

स्वा०—संगठन व प्रेम से काम करें तो अच्छा है।

मैं—किसी से मिलना है।

स्वा०—नहीं।

मैं—कुछ खाने को जी चाहता है ?

स्वा०—जो चाहे खिलाओ।

(सब प्रकार की मिठाई लाकर सामने रख दी गयी व स्वा० जी ने प्रत्येक मिठाई में से मासा-मासा भर उठाई, और खायी।)

मैं—और कुछ।

स्वा०—हमारे पास बैठे रहो, हिलो मत।

मैं—अच्छी बात है।

स्वा०—महाविद्यालय के घाट पर ले चलो।

मैं—इस समय रात में वहां मच्छड़ बहुत होंगे कल देखा जायगा।

थोड़ी देर के पश्चात्।

स्वा०—मुझे उठाओ।

उन्हें उठाया गया।

बस ॐ ॐ और तीन सांस और समाप्ति ।

स्वामी जी की श्मशान यात्रा ।

स्वामी जी की श्मशान यात्रा बहुत बड़ी थी। पंचपुरी के प्रायः सभी प्रमुख लोग पधारे थे। कई स्थानों में जलूस का फोटो लिया गया। चिता का भी फोटो लिया गया— पूर्ण वैदिक रीति से अन्त्येष्टि हुई।

नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

———

ओ३म् तत्सत्

"विद्ययामृतमश्नुते"

महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार)

कुलपति स्वा० शुद्धबोधतीर्थ

का

आर्यजगत् को अन्तिम सन्देश ।

कुलपति श्री १०८ स्वा शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज (भूतपूर्व आचार्य महाविद्यालय ज्वालापुर) का स्वर्गवास आश्विन शुक्ला सप्तमी सम्वत् १९९० मङ्गलवार ता० २६-९-३३ को हुआ। आप बड़े शान्त, दान्त, तपस्वी, सन्यासी एवं धर्ममूर्ति वैदिकसाहित्य के प्रकाण्ड पण्डित तथा व्याकरण के सूर्य थे। आपने अपने अन्तिम समय में आर्यजगत् तथा महाविद्यालय के प्रेमियों को निम्नलिखित सन्देश दिया है—

(१) आर्यसमाज को वैदिक संस्कृत-साहित्य के सदाचारी विद्वान बनाने चाहियें।

(२) प्राचीन निःशुल्क शिक्षा तथा प्राचीन सभ्यता का प्रचार करना चाहिये।

(३) गुरुकुल महाविद्यालय की सर्वात्मना रक्षा करनी चाहिये।

आशा है प्रत्येक आर्य व्यक्ति एवं महाविद्यालय के प्रेमी निःशुल्क प्राचीन शिक्षा दीक्षा के अनुरागी स्वर्गीय आत्मा के इस सन्देश का ध्यान रखेंगे।

महाविद्यालय का परिचय

महाविद्यालय ज्वालापुर एक गुरुकुल है जो प्राचीन रीति पर निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिये सम्वत् १९६४ सन् १९०८ को स्वर्गवासी स्वा० दर्शनानन्दसरस्वती ने स्वर्गीय श्री बा० सीताराम जी के रमणीय उद्यान में स्थापित किया था। विद्यालय का प्रबन्ध "महाविद्यालय सभा" (रजिस्टर्ड) के आधीन है। इस विद्यालय ने प्राचीन शिक्षा के उद्धारार्थ जो प्रयत्न किया है और इसके द्वारा किस प्रकार सैंकड़ों निर्धन छात्रों का उपकार हुआ है इस बात को आर्यजगत् स्वयं जानता है। इस विद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त कर अनेक स्नातक और विद्वान् निकल चुके हैं जो आर्यजगत् व देश की सेवा में संलग्न हैं। यह सब कार्य इस लिये सम्पन्न हुआ कि स्वर्गीय श्री १०८ स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी महाराजका वेहद हस्त महाविद्यालय के सिर पर था और यह सब उन्हीं के तप और पुरुषार्थ का फल है। सम्प्रति इस गुरुकुल

में दो सौ ब्रह्मचारी लालित, पालित हो रहे हैं। हमें पूर्ण आशा है कि प्राचीन शिक्षा के प्रेमी संस्कृतानुरागी महानुभाव उत्तरीय भारत में एक मात्र निःशुल्क शिक्षा का प्रचार करने वाली इस लोकोपयोगी संस्था का यथाशक्ति भरण पोषण कर अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे, जिससे इस विस्तृत महावृक्ष की छाया में बैठ कर भविष्य में भी अनन्त छात्रों का कल्याण तथा आर्य जगत् का उपकार हो सके।

भवदीयः—

शङ्करदत्तशर्मा मंत्री विश्वनाथशास्त्री मुख्याधिष्ठाता

हा श्रीस्वामी

अत्यन्त दुःख से लिखना पड़ता है कि महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य पूज्य श्री स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज अब इस संसार में नहीं रहे। गत सप्ताह आपका महाविद्यालय में देहान्त हो गया। आचार्य जी की आयु ७२ वर्ष से अधिक थी। आप दो मास के लगभग बीमार रहे, महाविद्यालय के विद्वानों तथा ब्रह्मचारियों ने आचार्य जी की जो परिचर्या तथा सेवा-शुश्रूषा की वह अनुकरणीय और प्रशंसनीय है। पीयूषपाणि वैद्य श्री पं० रामचन्द्र जी (कनखल) और श्री पं० हरिशङ्कर जी शास्त्री (मेरठ) रात-दिन आचार्य जी की चिकित्सा में लगे रहे,

परन्तु हुआ वही जो भगवान् की इच्छा थी। पूज्य आचार्य जी चुपचाप ठोस काम करने वाले महाविद्वान् थे। यही कारण है कि उनके नाम और काम से समाचारपत्र पढ़ने वाले बहुत कम परिचित हैं। आचा र्य जी ने आर्यसमाज को संस्कृत के सब से अधिक विद्वान् दिये। वे व्याकरण के सूर्य थे। जिस समय स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कांगड़ी गुरुकुल की स्थापना की उस समय आचार्य जी (श्री पं० गङ्गादत्त जी) उनके साथ थे और बरसों कांगड़ी गुरुकुल के आचार्य रहे। आचार्य जी के सैकड़ों शिष्य-प्रशिष्य हैं। आज आर्यसमाज में जितने संस्कृत के विद्वान दिखाई देते हैं, उनमें से अधिकांश आचार्य जी महाराज की बदौलत ही हैं। स्वर्गीय श्री० पं० भीमसेन शर्मा, स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा साहित्याचार्य, श्री पं० नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ जैसे विद्वान् आचार्य जी के मुख्य शिष्यों में हैं। आचार्य जी की सारी सेवायें निःस्वार्थ हैं। संन्यासी होने से पूर्व भी उन्होंने अध्यापन-कार्य के लिये कभी किसी से कुछ भी नहीं लिया, वल्कि ब्रह्मचारियों के लिये भोजन का प्रबन्ध भी अपने उद्योग से ही करा दिया। हमें अच्छी तरह ज्ञात है, आचार्य जी को एक बहुत बड़ी गद्दी मिल रही थी, परन्तु उन्होंने उसे यह कह कर ठुकरा दिया कि ऋषि दयानन्द के सेवक के लिये इस आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। हम समझते हैं इतने बड़े प्रलोभन को इस तरह उपेक्षा एवम् उदासीनता की दृष्टि से देखना साधारण बात नहीं है। आचार्य जी के निधन से यों तो सब ही को घोर दुःख होना स्वाभाविक है, परन्तु श्री पं० नरदेवशास्त्री जी की हृदयवेदना सब से बड़ी हुई है। आचार्य जी ने शास्त्रीजी का पुत्रवत् लालन-पालन तथा शिक्षण किया था। वे इन पर

शायद सबसे अधिक वात्सल्यभाव प्रदर्शित करते रहते थे। आचार्य जी की मृत्यु से आर्यसमाज की जो भारी क्षति हुई है, उसकी पूर्ति इस समय तो सर्वथा असम्भव सी ही दिखाई देती है। परमात्मा दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे, इस प्रार्थना के अतिरिक्त अब हम और कर ही क्या सकते हैं।

संपादक आर्यमित्र।

राव मामराजसिंह जी रईस ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट शामली भूतपूर्व प्रधान महाविद्यालयसभा—

श्री आचार्य जी के निधन से महाविद्यालय की बहुत हानि हुई। वास्तव में स्वा० जी महाराज ही का ऐसा व्यक्तित्त्व था कि प्रायः विरुद्ध वायु के झोकों के आने पर भी महाविद्यालय अपना पग आगे ही बढ़ाता रहा और वे झोकें शान्त होते रहे। स्वर्गीय स्वा० जी के नाम से ही महाविद्यालय चलता रहेगा।

पं० शंकरदत्तशर्मा मंत्री महाविद्यालय सभा—

स्वा० जी से महाविद्यालय का अत्यन्त गौरव था। आज महाविद्यालय अनाथ होगया।

श्री डा० शिवदत्त जी भिषगाचार्य (अमृतसर) वर्त्तमान प्रधान महाविद्यालयसभा—

स्वा० जी महाराज का संरक्षकता का हाथ उठ जाने से जो क्षति विद्यालय की हुई उसकी पूर्त्ति होती दृष्टिगोचर नहीं होती।

............अब आप सब पर ही विद्यालय का कार्यभार व उत्तरदायित्त्व आपड़ा है, जिसे निभाना आप सब का कर्त्तव्य है।

उन्होंने पच्चीस वर्ष तक विद्यालय को अपनी समस्त शक्तियों से चलाया।

वानप्रस्थमंडल, वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर—

"निःसन्देह यह त्यागशील महात्मा जिन्होंने गुरुकुल कांगड़ी व महाविद्यालय ज्वालापुर की दीर्घकाल तक निःस्वार्थ सेवा की, व्याकरण के सूर्य थे। उनके परलोक-गमन से जो हानि आर्यजगत् की, विशेष कर आर्यमहाविद्यालय ज्वालापुर की हुई है उसकी पूर्त्ति कठिन ही नहीं प्रत्युत असंभव सी है।"

पं० वंशीधर जी पाठक, बरेली—

प्रातःस्मरणीय दिवंगत श्री १०८ स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज के जिन्होंने एक वार भी दर्शन किए बस वह उनका तपस्वी जीवन, उनका विद्याबल आदि देखकर मुग्ध हो गया।

जिन जिन समाचारपत्रों ने शोक प्रकाशित करते हुए स्वा० जी का गौरव किया उनकी नामावली—

वेंकटेश्वरसमाचार, बम्बई।	कर्मवीर, खाण्डवा।
स्वराज्य, खाण्डवा।	आर्यमार्त्तण्ड, अजमेर।
अर्जुन, देहली।	श्रद्धानंद, देहली।
तेज, देहली।	नैशनल काल, देहली।
हिन्दुस्तान टाइम्स, देहली।	विकास, सहारनपुर।
ट्रिब्यून, लाहोर।	प्रकाश, प्रताप-लाहौर।

चित्र सं० ६

श्रीस्वामी दर्शनानन्द जी संस्थापक महाविद्यालय,
ज्वालापुर ।

मिलाप उर्दू, मिलाप हिंदी, आर्यगजट, लाहोर।
ऋषि, बिजनौर। आर्यमित्र, आगरा।
लीडर, भारत, प्रयाग। आज, बनारस।
विश्वामित्र, कलकत्ता। गढ़वाली, देहरादून।
प्रताप, कानपुर। इत्यादि-इत्यादि

शोकसभाएँ।

स्वा० जी के विषय में शोकसभाएं प्राय: सर्वत्र प्रमुख आर्यसभाओं में हुईं। जो सनातनी स्वा० जी के विद्या, त्याग व तप पर मुग्ध थे उन्होंने अनेक स्थानों पर शोक मनाया। आर्यसमाज के शिक्षणालयों में विशेष शोक रहा। अर्द्धशताब्दी अजमेर के अवसर पर भी सम्मिलित शोक प्रकट किया गया।

शोकपरक पत्रों में निम्नलिखित महानुभावों के पत्रों का उल्लेख करना आवश्यक है—

(१) उपाध्याय पं० दिलीपदत्त जी दतियाना-गंधौर-बिजनौर।
(२) चौ० रघुराजसिंह जी रईस पृथ्वीपुर-दारानगर-बिजनौर।
(३) आयुर्वेदाचार्य पं० शिवव्रतशर्मा, हृषीकेश।
(४) श्री ठा० गोविंदसिंह मनसबदार पातूर-अकोला-बरार।
(५) श्री पं० द्विजेन्द्रनाथ जी सिद्धान्तशिरोमणि आचार्य आर्यसमाज बम्बई।

(६) बाबू जगदम्बाप्रसाद जी ठेकेदार भरतपूर स्टेट ।
(७) पं० राधावल्लभ जी खण्डूडी बालूगंज (मसूरी)
(८) आयुर्वेदभास्कर पं० हरिशंकरशर्मा वैद्यराज मेरठ ।
(९) विद्याभास्कर पं० वासुदेवशर्मा साँख्यतीर्थ, सुजानगढ़ (बीकानेर)
(१०) विद्याभास्कर पं० विश्वनाथशास्त्री आचार्य गुरुकुल भैंसवाल–हरियाना–रोहतक ।
(११) श्री नरेन्द्रनाथशास्त्री मैनपुरी ।
(१२) श्री राजाराम वाजपेयी मंत्री आर्यसमाज लखनऊ ।
(१३) श्री सुखानंद मंत्री आर्यसमाज चंदौसी ।
(१४) बाबू केशवदेव गुप्त कैसरगंज अजमेर ।
(१५) श्री चिम्मनलाल भद्रगुप्त तिलहर–शाहजहाँपुर ।
(१६) श्री चंद्रगुप्त शास्त्री बेलोन–नरौरा–बुलन्दशहर ।
(१७) श्री ओम्प्रकाश जी पुरैनी—बिजनौर ।
(१८) श्री देवदत्त जी सदर बाजार हरदोई ।
(१९) श्री पं० अमरनाथ वैद्य–वनस्पतिभवन देहरादून ।
(२०) श्री चांदकिरण शारदा–अजमेर ।
(२१) श्री पं० कांचीदत्त शर्मा सुजानगढ़ ।
(२२) श्री पं० श्रुतिकान्त शास्त्री वेदतीर्थ (गुजरात पंजाब)
(३३) श्री महेन्द्रनाथ शास्त्री सांख्यतीर्थ बड़ौदा ।
(३४) श्री पं० रामगोपाल जी शर्मा वैद्यरत्न बदायूँ ।
(३५) श्री पं० वंशीधर जी पाठक बरेली ।
(३६) श्री अभयसिंह परैरा (निगेम्वा–लंका)
(३७) आर्यसमाज लखनऊ ।
(३८) श्री मंत्री आर्यसमाज बेलोन नरौरा बुलन्दशहर ।

(३९) श्री रामचंद्र विद्यारत्न सेमरी हरचंद हुशंगाबाद सी० पी०
(४०) श्री गोविन्दप्रसाद देहरादून।
(४१) श्री पं० भगवत्प्रसाद सनातन स० संपादक विकास सहारनपुर।
(४२) श्री विद्याधर शास्त्री डूंगर इंटरकालेज बीकानेर।
(४३) प्रो० मनोरंजनप्रसाद एम० ए० हिन्दूविश्वविद्यालय।
(४४) श्री विष्णुदत्त शास्त्री एम० ए० साहित्याचार्य हरदोई।
(४५) श्री प्रेमचंद जी काव्यतीर्थ।

विद्वत्कला (हिन्दी । हस्तलिखित मासिक) में निम्नलिखित लेख आये हैं—इसके संपादक श्री ब्र० रामचरणशर्मा (नवम श्रेणी) व सहायक संपादक ब्र० कपिलदेव हैं।

कुलपति का प्रयाण,	श्री नरदेवशास्त्री।
दैवी विचित्रा गतिः,	श्री ऋषिदेवशास्त्री।
हा गुरुदेव,	विद्याभास्कर लक्ष्मीनारायणशर्मा
स्वर्ग को सिधारो है (कविता)	श्री देवदत्तशास्त्री व्याकरणाचार्य।
गुरुवर का सदुपदेश,	ब्र० गौरीशङ्कर शर्मा।
कविता,	व्यक्त।
सिधारा है (कविता)	श्री ब्र० शिवदत्तशर्मा नवम श्रेणी
व्याकरण का सूर्यास्त,	... ...
देवलोक को गयो है (कविता)	ब्र० विद्याधर षष्ठ श्रेणी।
यम का साहस,	ब्र० रणवीर दशम श्रेणी।
आर्यजगत् अन्धकारमय होगया,	ब्र० विद्याधर।
अनभ्र वज्रपात (कविता)	कश्चित्।

विद्वत्कला (संस्कृत हस्तलिखित पत्रिका) में निम्नलिखित संस्कृत गद्य लेख व पद्य आये हैं। संपादक हैं श्री ब्र० शिवदत्त शर्मा दशम श्रेणी, उपसंपादक ब्र० सच्चिदानन्द शर्मा, इस अङ्क का नाम बोधाङ्क है—

श्री शुद्धबोधाष्टकम् (कविता)	श्रीआचार्यहरिदत्तशास्त्री पञ्चतीर्थः।
हा शुद्धबोध महात्मन् (कविता)	व्याकरणाचार्य छेदीप्रसाद जी शर्मा।
श्री शुद्धबोधतीर्थप्रयाणम् (गद्य)	श्रीनरदेवशास्त्री वेदतीर्थः।
श्री शुद्धबोधप्रशस्तिदशकम् (पद्य)	श्री उपाध्यायदिलीपदत्तशर्मा
दुर्निवारिता व्यसनोपनिपातानाम्	....
शुद्धबोधो गुरुर्नः (कविता)	श्रीदेवदत्तशास्त्री व्याकरणाचार्यः
वियोगजोद्गाराः,	श्री पद्मनाभः (ट्रावनकोरवास्तव्यः)।
श्रीगुरुचरणाः,	श्रीलक्ष्मीनारायणशर्मा विद्याभास्करः।
शोकविन्दवः (क०)	श्रीपद्मनाभः।
शिष्यप्रलापः (क०)	श्रीप्रेमचन्द्रकाव्यतीर्थः।
अनभ्रवज्रपातः,	श्रीऋषिदेवशास्त्री।
हा आचार्यपादाः,	श्री ब्र० रमेशाचन्द्रः।
किमुत हृतं वद (क०)	... ...
हा दैव (क०)	... ...
हे गुरो (क०)	... ...
वर्णिनां शोकनिराकरणम्,	उपसंपादकः।
गुरोर्विप्रयोगः,	ब्र० रणबीरवर्मा।
हृदयोद्गाराः (क०)	संपादकः।

श्री शुद्धबोधपरिचयः,	श्री धनपालवर्मा ।
गुरुशोकभारः,	श्री ब्र० रामचरणशर्मा ।
श्रीगुरुचरणसरोजस्मरणम	संपादकः ।
प्रयाणं गुरूणाम ,	ब्र० रणधीरः ।
क्वेदानीं समुपाश्रितोऽसि	ब्र० कपिलदेवः ।
हा काल, तव क्रूरता (क०)	विद्याभास्कररामदत्तशास्त्री ।
हा गुरुवर,	श्रीगौरीशङ्करशर्मा ।
आचार्याणां स्मृतिः	श्रीसत्यदेवविशारदः ।
शुद्धबोधवियोगाष्टकम्,	आयुर्वेदाचार्यश्रीशिवदत्तशर्मा ।
हा गुरो, भवानपि गतः,	श्री ब्र० विश्वनाथशर्मा ।

निखिलनिगमदक्षः शब्दशास्त्रैकसूर्यः,
सकलजनवदान्यो मण्डितः पण्डितैश्च ॥

प्रथितपटुवटूनां शास्त्रविद्यारसानां,
सुगमसुपथदर्शी शुद्धबोधो गुरुर्नः ॥

खनवनवपरेशाब्दाश्विने शुक्लपक्षे,
निशिदशवदनान्ते त्वर्द्धघण्टोत्तरं हे ।

स सकलमिह हित्वा सप्तमी–भौमवारे,
वत ! गत इति तीर्थः शुद्धबोधो गुरुर्नः ॥

देवदत्तशास्त्री व्याकरणाचार्यः ।

श्रीस्वर्गीय स्वामी जी

१८८०—घर से मथुरा भाग गये—वहां डेढ़ वर्ष रहकर कानपुर होते हुए काशी पहुँचे।

१८८२ से १८९२ काशी में अध्ययन।

१८९३—कुछ काल गृहपर वेलोन में, कुछ काल भारौल जि० मैनपुरी में वहां के रईसों को संस्कृत पढ़ाते रहे।

१८९४—जालन्धर आगमन, आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा संस्थापित वैदिक आश्रम का सञ्चालन, अध्ययनाध्यापन। महात्मा मुन्शीरामजी की प्रेरणा से स्वा० दर्शनानन्दजी ने काशी से भेजा।

१८९८—वैदिक आश्रम जालन्धर से गुजरांवाला चला गया, इस लिये वहां प्रयाण और वहीं दो वर्ष तक निवास। स्व० श्री राय रलाराम जी परमनंट रेलवे इन्स्पेक्टर वैदिक आश्रम के प्रबन्धक व निरीक्षक रहे।

१९००—हरद्वार आगमन, भारामल के दरवाजे में ब्र० हरिश्चन्द्र, ब्र० इन्द्र व ब्र० चन्द्रमणि सहित निवास।

१९०१–१९०६ गुरुकुल कांगड़ी के प्रथमाचार्य।

१९०६–१९०७ हृषीकेश, भोगपुर आदि निवास।

१९०७–१९३३ महाविद्यालय ज्वालापुर के आचार्य तथा कुलपति।

१९३३—सितम्बर ता० २६ तदनुसार आश्विन कृष्णा सप्तमी संवत् १९९० बुधवार रात्रौ दस बजकर तीस मिनट पर महाप्रयाण।

श्री स्व० स्वामी जी के गुरुजन

बाल्यावस्था के गुरु (चतुर्थ श्रेणी तक) पं० खमानीराम हेड-मुदर्रिस बेलोन।

ज्योतिष—गुरु श्री पं० किशोरीलाल जी खुर्जा।

व्याकरण—गुरु (कौमुदीमात्र) श्री पं० हरजसराय जी गौड़ भटियाना।

अष्टाध्यायी—गुरु श्री पं० उदयप्रकाश जी महाराज जो स्वा० दयानंद जी के सहाध्यायी थे व स्वा० विरजानन्द जी से अष्टाध्यायी महाभाष्य पढ़ चुके थे। मथुरावासी थे। इन्होंने यजुर्वेद का भाष्य भी किया था।

महाभाष्य—गुरु श्री पं० हरनामदत्त जी भाष्याचार्य्य गौड़ चूरू-(रामगढ) निवासी। आप महाभाष्य के अद्वितीय विद्वान् थे और समस्त भारत में संपूर्ण महाभाष्य के आपही विद्वान् थे, आपकी जोट का दूसरा अबतक नहीं हुआ।

चित्र सं० ६

गुरुवर श्री काशीनाथ शास्त्री, पं० भीमसेनशर्मा
(जब कांगड़ी गुरुकुल में थे तब)।

न्याय-गुरु श्री पं० सीतारामशास्त्री द्रविड़ नैय्यायिक। काशी के अद्वितीय न्यायशास्त्री। श्री पं० शिवकुमारजी के समकालीन जोट के पण्डित थे।

नव्यव्याकरण-वेदान्त-गुरु श्री गुरुवर पं० काशीनाथ जी षट्-शास्त्री छाता (जि० बलिया) निवासी। इस समय काशी में आप ही सब से अधिक वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध दर्शनाचार्य्य माने जाते हैं। आप गुरुकुल कांगड़ी में पंद्रह वर्ष व महाविद्यालय ज्वालापुर में छः वर्ष दर्शनशास्त्राध्यापक रह चुके हैं। इस समय काशीवास में ही संतुष्ट हैं और उनका स्वाध्यायसत्र अव्याहत चलरहा है। आपकी अवस्था इस समय ८५ वर्ष की है।

काव्यसाहित्य-गुरु श्री स्वा० मनीष्यानंद जी भूतपूर्व महा-महोपाध्याय श्री पं० हरनाथशास्त्री टेढी-नीम बनारस।

व्यायाम-गुरु पण्डा बालकृष्ण जी बेलोन के नामी पहलवान पण्डा थे। आप रामपुर स्टेट में राज पहलवान थे और रामपुर के नवाब आपको बहुत मानते थे।

संन्यास-गुरु श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य श्रीसुब्रह्मण्यदेवतीर्थ (गोवर्द्धनमठ पुरी)। पूर्वाश्रम में ये कुलयशस्वी नाम से प्रसिद्ध थे। संन्यास लेने के पश्चात् भी

कुलयशस्वी शास्त्री पण्डितस्वामी नाम से प्रसिद्ध रहे। कनखल मुक्तिपीठ आश्रम के ये ही संस्थापक थे, इन्हीं का रुपया उसमें लगा था। यद्यपि काग़ज़ वगैरा श्री स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी के नाम था तथापि स्वा० जी ने अपने गुरु की अन्तिम वासना का ध्यान रखकर अपनी प्रयाणयात्रा से पूर्व ही श्री १०८ गोपालतीर्थ जी संस्थापक व संचालक ऋषिकुल कठघर मुरादाबाद के नाम मुक्तिपीठ कर दिया। दण्डीस्वामियों का प्रबन्ध करना, उनके लिये क्षेत्र लगाना और संस्कृत विद्या का प्रचार करना, इन तीन उद्देश्यों से स्व० पण्डितस्वामी ने मुक्तिपीठ की स्थापना की थी। इस मुक्तिपीठ में पण्डितस्वामी का पाँच सहस्र रुपया लगा था। खेद है कि अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी आपका चित्र प्राप्त न हो सका।

काशी के तीन परम मित्र ।

श्री पं० टीकाराम वैद्य, श्री पं० नारायणसिंह जी नगर (भरतपुर) निवासी तथा श्री स्वा० शुद्धबोध, तीनों पं० हरनामदत्त जी भाष्याचार्य से भाष्य पढ़ते थे। तीनों में प्रगाढ़ मित्रता थी। पं० टीकाराम जी कासगंज जि० एटा के निवासी थे व प्रसिद्ध वैद्य थे। श्री पं० नारायणसिंह जी षट्शास्त्र व उपनिषदों के प्रकाण्ड पण्डित थे। स्वा० शुद्धबोध जी के चले आने पर भी सिंह जी कई वर्ष तक काशी में ही रहे। फिर ये दोनों मित्र गुजरानवाला में मिले थे। महाविद्यालय के स्वर्गीय मुख्याध्यापक श्री पं० भीमसेनशर्मा साहित्याचार्य, रावलपिण्डी के स्वर्गीय कविराज सीतारामशास्त्री स्वा० शुद्धबोध जी के वहीं के (काशी के) शिष्यों में से थे। स्वा० जी के समकालीन काशीनिवासियों में से श्री १०८ स्वा० दर्शनानन्द सरस्वती संस्थापक महाविद्यालय ज्वालापुर व श्री महामहोपाध्याय श्री पं० आर्यमुनि संस्कृत कालेज मोगा इन दोनों का नाम उल्लेख योग्य है। श्री आर्यमुनि जी श्री गुरुवर पं० काशीनाथ शास्त्री जी से वेदान्त पढ़ते थे। १९०३ में श्री स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी व मैं काशी गये थे तब वहां कई दिन रहकर समस्त काशी में भ्रमण किया। स्वा० शुद्धबोध जी पचासों पंडितों से मिले, मैं भी साथ रहता था। श्री गुरुवर काशीनाथ शास्त्री जी को लेकर स्वा० जी कांगड़ी लौट गये और मैं वहीं रहा। महामहोपाध्याय श्री पं० अम्बादास शास्त्री जी से रसगंगाधर, व्युत्पत्तिवाद, शक्तिवाद आदि पढ़ता रहा। श्री गुरुवर पण्डित काशीनाथ शास्त्री जी हम सबके बाबागुरु होते

हैं और हम सब उनका उसी प्रकार यथेष्ट आदर करते हैं। गुरुजी कांगड़ी आने के पूर्व अस्सीघाट पर मैथिल स्वामी की पाठशाला में पढ़ाते थे और नगवा में रहते थे। इनका शिष्यपरिवार इतना बड़ा है कि इस समय कौन कहां है और क्या करता है इस बात का पता चलाना असंभव सा है। इनकी परम्परा में से जो भी जीवित होगा, जहां भी होगा वह गीर्वाणवाणी के समुद्धार में सर्वात्मना संलग्न होगा इस विषय में लेखक को तनिक भी सन्देह नहीं है। श्री गुरुजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री पं० हरिनाथ शास्त्री, श्री पं० रघुनाथशास्त्री व्याकरणाचार्य काशी में ही पढ़ाते हैं। श्री गुरुजी के एक प्रिय विद्वान् शिष्य व हमारे सहाध्यायी श्री पं० रमापतिमिश्र बम्बई के नामी पण्डितों में गिने जाते हैं। वर्षों से बम्बई में ही रहते हैं। यह हमारा सौभाग्य कि हमारा ऐसी शाखा से सम्बन्ध रहा है।

श्री जगद्गुरु १००८ मधुसूदनतीर्थ।

जब श्री गंगादत्त जी (स्वा० शुद्धबोध) काशी पहुंचे थे तब इनके ही कुल के दूर के सम्बन्धी जिनको यह 'ताऊजी' कहा करते थे काशी में पढ़ते थे। ये भी स्वा० जी की तरह स्वा० जी से कई वर्ष पूर्व काशी भाग गये थे और वहीं पढ़ते थे। इनका नाम था कल्याणपण्डित। ये ही आगे जाकर इतने विद्वान् हुए कि इनको गोवर्धनमठ (जगन्नाथपुरी) की शंकराचार्य की गद्दी मिली व भारतवर्ष के जगद्गुरु कहलाये। बेलोन से दो ही ब्राह्मण बालक विद्याध्ययनार्थ घर से भाग गये थे। एक ने जाकर गोवर्धनमठ संभाला और जगद्गुरु बना दूसरे ने आर्यजगत्

संभाला व यहां के शंकराचार्य बनकर गुरुकुल कांगड़ी व महाविद्यालय ज्वालापुर द्वारा संस्कृतविद्या का उद्धार किया। इस प्रकार एक ही मुहल्ले के, एक ही कुल के दो व्यक्तियों ने दो परस्पर विभिन्न क्षेत्रों में अपूर्व कार्य किया। गोवर्धनमठ के शंकराचार्य बनने के पश्चात् कल्याणपण्डित श्री १००८ मधुसूदन-तीर्थ बनगये। हरद्वार के एक कुम्भ के अवसर पर स्वा० शुद्धबोधतीर्थ व श्री मधुसूदनतीर्थ ऋषिकुल में मिले थे। श्री मधुसूदनतीर्थ जी की उत्कट इच्छा थी कि स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी को गोवर्धनपीठ का उत्तराधिकारी बनाया जाय। उन्होंने नरवर (नरौरा) में स्वा० जी को बुलाया भी था, बहुत कहा भी था किन्तु स्वा० शुद्धबोध जी ने यह कह कर अस्वीकार किया कि समस्त आयु आर्यजगत् में व्यतीत हुई अन्तिम समय में मैं अन्य कार्यक्षेत्र में पदार्पण नहीं कर सकता। विवशतया उन्होंने श्री १००८ भारतीकृष्णतीर्थ जी को उत्तराधिकारी बनाया और आज कल ये ही गोवर्धनपीठ के सर्वे-सर्वा हैं।

स्वामी जी की वंशावली—

श्रीहरि जी वैद्य

पं० हेमराज वैद्य

प्रथम स्त्री से — द्वितीय स्त्री से

रामप्रसाद — कन्हैयालाल पुजारी — गंगादत्त

श्रीधर

अमृतसर में शास्त्री परीक्षा देते समय ज्वर के वेग में ही देहावसान हुआ। श्रीधर जी होनहार पण्डित थे और वक्ता थे, घण्टों बोलने पर भी नहीं थकते थे। अध्यापनकार्य में भी पटु थे

१९१५ में जब आप महाविद्यालय में ही थे तब गोबर्द्धनपीठ के उत्तराधिकारी श्री १०८ सुब्रह्मण्यदेवतीर्थ उर्फ पण्डितस्वामी से हरद्वार में संन्यास लिया था। तब से ही आप स्वा० शुद्धबोधतीर्थ कहलाये गये। संन्यास लेने पर भी कुटीचर बनकर आप अन्त तक अध्ययनाध्यापन सत्र बराबर चलाते रहे।

आप का विद्या का परिवार बहुत बड़ा है और समस्त उत्तरभारत में फैला हुआ हैं।

स्वा० दर्शनानद का प्रथम परिचय

महाभाष्य का मूल्य।

यदि स्वा० शुद्धबोध जी का काशी में स्व० दर्शनानंद जी (पं० कृपारामशर्मा जगरावां जिला लुधियाना निवासी) से परिचय न होता तो स्वा० शुद्धबोध जी किसी अन्य क्षेत्र में ही होते।

जिन दिनों पं० गंगादत्त जी काशी पहुँचे थे पं० कृपाराम जी भी वहीं थे, श्री स्वा० मनीष्यानंद जी से पढ़ते थे। उन दिनों काशी में "लाजरस कम्पनी" नाम की एक कम्पनी संस्कृत पुस्तकों का प्रकाशन करके मनमाना दाम रखती व खूब लाभ उठाती थी। उसने काशिका का दाम पच्चीस रु० रक्खा था। इसी-प्रकार अन्य पुस्तकों के दाम भी थे। पं० कृपाराम जी से यह न देखा गया। आपने अपने व्ययसे एक बड़ा प्रेस खोला और सस्ते दाम पर पुस्तकें छपा कर बेचने लगे। पच्चीस रु० की काशिका पाँच रु० में मिलने लगी। महाभाष्य भी बहुत सस्ता मिलने लगा। काशी के छात्रजनों में बड़ा उत्साह उठा, उन्होंने स्वा० जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। हमारे कथानायक पं० गंगादत्त को महाभाष्य चाहिये था। इनके पास पैसे नहीं थे। पं० कृपाराम जी ने संपूर्ण महाभाष्य की एक प्रति गंगादत्त जी को भेंट की। काशिका भी दी, न्यायदर्शन भी दिया—बस यहीं से पं० कृपाराम जी व गंगादत्त जी में सौहार्द बढ़ता गया और अन्त तक अविकृत रूप में बना रहा।

लाजरसकंपनी की पुस्तकें बिकनी बंद हो गईं। कंपनी घबरा गयी उसने कॉपी राईट का दावा पं० कृपाराम जी पर किया। बहुत देर मुकदमा चला, अन्त में पंडित कृपाराम जी की शानदार विजय हुई। उस विजय में पं० गंगादत्त जी का बहुत बड़ा हाथ था क्योंकि जब काशिका छप रही थी तब पाठान्तर रखने व नीचे टिप्पणी देने में गंगादत्त जी ने बहुत सहायता की थी। विजय तो पं० कृपाराम जी की हुई किन्तु सहस्रों रु० खर्च होगये। उदार पं० कृपाराम ने लगभग अस्सी सहस्र रु० इसी प्रकार निर्धन छात्रों के निमित्त व्यय किये। पं० कृपाराम जी की विजय से लाजरस कंपनी सदा के लिए दब गई और काशी में सस्ते दामों पर पुस्तकें मिलने लगीं।

काशी में गङ्गादत्त जी को मिले हुए महाभाष्य का मूल्य बहुत देना पड़ा। स्वा० दर्शनानन्द (कृपाराम) की प्रेरणा से ही गङ्गादत्त जी जालंधर गये, फिर गुरुकुल काँगड़ी में गये, वहां से महाविद्यालय ज्वालापुर जो आये छब्बीस वर्ष घोर तपस्या करनी पड़ी, अन्त में उसी में अन्त हुआ। इसी का नाम है अदृष्ट! इसी का नाम है दैवगति! विधाता न जाने कहाँ कहाँ किस किस को किस तरह मिलाता है और न जाने क्या क्या करवाता है। पूर्वजन्मों के ऋणानुबन्धन इसी प्रकार के होते हैं। कहां जालन्धर व कहां बेलोन और कहां काशी तो भी ऋणानुबन्ध ने गङ्गादत्त व मुन्शीराम को मिला कर बड़ा कार्य करा ही लिया। कहाँ हैदराबाद दक्षिण, कहां बेलोन तो भी अघटितघटना-पटीयसी भगवती भवितव्यता ने गङ्गादत्त, मुन्शीराम और नरदेव को मिला ही दिया। ऋणानुबन्ध के ऐसे ही खेल होते हैं। कहीं

का जन्म, कहीं का संयोग कहीं का वियोग, कहीं का कार्यक्षेत्र, ऐसे ही विधि के खेल होते रहते हैं।

नासाध्यं विद्यते विधेः

कहां जगरावां और कहां बेलोन, और विधि ने मिलाया गङ्गादत्त और कृपारामशर्मा को काशी में, जिसका परिणाम यह हुआ कि गङ्गादत्त जी का प्रवेश वहीं से आर्यमण्डल में हुआ। विधि ने उनको वहीं से उठाकर जालन्धर भेजा, वहां से गुजरानवाला, वहां से हरद्वार, हरद्वार से कांगड़ी, कांगड़ी से स्वा० दर्शनानन्द जी के महाविद्यालय में, विधि का कैसा विधि-विधान था!! गुरुकुल काँगड़ी व महाविद्यालय ज्वालापुर, जिनमें प्रारम्भिक दिनों में इतनी स्पर्द्धा थी, वे दोनों गुरुकुल आज ज्वालापुर में ही अड़ोस पड़ोस में हैं, क्या यह विधाता का विचित्र खेल नहीं है? क्या १९०६ में किसी को यह स्वप्न भी था कि जिस गुरुकुल कांगड़ी में पं० गङ्गादत्त आचार्य, पद्मसिंह शर्मा, पं० भीमसेन शर्मा, नरदेवशास्त्री, पं० यज्ञेश्वर जी ज्योतिषी आदि ने प्रारम्भ में इतना काम किया और जो किन्हीं मतभेदों के कारण फिर ज्वालापुर महाविद्यालय में आबैठे थे, क्या किसी को पता था वह गुरुकुल महाविद्यालय के पास ही आजायगा और दोनों के महोत्सव एक साथ होंगे, दोनों की धूम एक साथ मचेगी, आर्यजगत् में दोनों का चर्चा एक साथ चलता रहेगा, दोनों संस्थाओं में भ्रातृभाव होगा? क्या किसी को पता था कि पंजाब की दलबन्दी में म० मुन्शीराम जी के दक्षिणभुज-स्वरूप पं० कृपारामशर्मा कभी हरद्वार में ही महाविद्यालय

खोलेंगे, उसमें काँगड़ी की ही पण्डितमण्डली आबैठेगी, इतना बड़ा काम होगा ? गरीबों का इतना बड़ा उपकार होगा ? चारों ओर से विरोध रहते भी सरहद्दी पठानों की भान्ति पण्डित-मण्डली महाविद्यालय का काम धकेलती ही रहेगी। पहले पंजाब में कोई दल नहीं था, सब एक थे। डी० ए० वी० कालेज के कारण दो दल हुए। महात्मा पार्टी म० मुन्शीराम के नेतृत्त्व में और कालेज पार्टी म० हंसराज के नेतृत्व में कार्य करती रही। फिर १९०१ में गुरुकुल खुला और राय रलाराम, राय ठाकुरदत्त धवन आदि म० मुन्शीराम से पृथक् हुए। १९०५-६ में पण्डित-मण्डली म० मुन्शीराम से पृथक् होकर महाविद्यालयमें आजमी। संन्यास लेने के पश्चात् स्वा० श्रद्धानंद जी का कृष्ण-पार्टी से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। वर्तमान समय में कृष्ण-पार्टी भी अपने अस्तित्व के लिए झपट रही है। उनमें भी मतभेद हैं। संस्थाओं में ऐसा होना अपरिहार्य है। पूने में लोकमान्य तिलक, श्री गोपालकृष्ण गोखले, श्री प्रिन्सिपल अगरकर, श्री प्रिन्सिपल आपटे, सब के सब न्यू इङ्गिलश स्कूल व फर्ग्युसन कालेज में एक साथ काम करते थे। मतभेद इस बात पर हुआ कि सरकारी ग्रैंट लेनी चाहिये अथवा नहीं। गोखले-पक्ष ग्रैंट लेने के पक्ष में था। वह पक्ष प्रबल था इसलिये लोकमान्य तिलक उस सोसाइटी से पृथक् हुए। फिर दोनों दलों में मतभेद हुआ सुधारक व दुर्धारक नाम पर। फिर मतभेद चला नरम व गरम दल के नाम पर। इसमें तिलक दल अत्यन्त प्रबल रहा। उसका प्रभाव समस्त भारतवर्ष में फैला और अन्त तक लो० तिलक की विजय रही।

इस प्रकार विधाता कहीं मिलाकर, कहीं हटाकर, कहीं फिर मिलाकर अकल्पित रीति से जीवों से जन्मपत्री पूरी करवा लेता है। यह न समझिये कि महाविद्यालय मतभेद व विरोधाग्नि से दूर रहा। बाबू सीताराम ने भूमि व बाग दिया, स्वा० दर्शनानंद जी ने महाविद्यालय खोला, महात्मा मुन्शीराम व आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने एडी से चोटी तक का बल लगाकर विरोध किया, पर महाविद्यालय जोर बांधता ही गया। पण्डितमण्डली भी आ डटी, फिर कालयोग से उनमें भी मतभेद रहने लगा। यह अच्छी बात थी कि उसमें गुरुशिष्यभाव-सम्बन्ध था जिसके कारण परस्पर मतभेद सौम्यरूप में ही रहा और स्वा० शुद्धबोध-तीर्थ जी के महान् व्यक्तित्व के कारण मतभेद पनप न सका। अन्त तक सब काम शान्ति से सुलझते रहे।

लेखक भी अब सब कार्यक्षेत्र देख चुका है, शक्तिभर कार्य कर चुका है, जो कुछ मनमें था अथवा है वह सब कुछ तो नहीं कर सका किन्तु विभिन्न परिस्थितियों में जितना कार्य होसका कर चुका है, चाहता है कि शेष जीवन शान्तिपूर्वक निभ जाय, आत्मचिन्तन में, आत्मपरीक्षण में दिन कटें। उसको महाभारत-वर्णित व्यासोपदेश का स्मरण आरहा है जो कि भगवान् व्यास ने शुक के प्रति किया था—

अहःसु गण्यमानेषु
क्षीयमाणे तथाऽऽयुषि।
जीविते लिख्यमाने च
किमुत्थाय न धावसि?

हे शुक, दिन गिने जारहे हैं, आयु क्षीण होरही है, इस तरह यमराज के यहां तेरी आयु का हिसाब किताब जोड़ा जारहा है, हे पुत्र उठकर भाग क्यों नहीं जाता ?

महापदानि कत्थसे,
न चाप्यवेक्षसे परम् ।
चिरस्य मृत्युकारिका--
मनागतां न पश्यसि ।

बड़ो २ बातें बनाते रहते हो, शास्त्रों की डींग हाँकते रहते हो, आगे का कुछ ध्यान नहीं है, बुढापा सिर पर है ज़रा भी तुम्हें ध्यान नहीं ।

शुभाशुभे पुराकृते,
प्रमादकर्मविप्लुते,
स्मरन् पुरा न तप्यसे,
निधत्स्व केवलं निधिम् ॥
पुरा जरा कलेवरं,
विजर्झरीकरोति ते,
बलाङ्गरूपहारिणी,
निधत्स्व केवलं निधिम् ॥
पुरा शरीरमन्तको,
भिनत्ति रोगसायकैः,

प्रसह्य जीवितक्षये,
तपो महत्समारभ ॥
पुरा वृका भयङ्कराः,
मनुष्यदेहगोचराः ।
अभिद्रवन्ति सर्वतो,
यतस्व पुण्यशीलने ॥
धनस्य यस्य राजतो,
भयं न चास्ति चोरतः,
न तत्र संविभज्यते
समार्जयस्व तद्धनम् ॥

जब तक पुरातन शुभाशुभ कर्मों को स्मरण करके पछताने का समय न आवे उससे पूर्व ही तू उस केवल-निधि का जो अक्षय्य भण्डार है खूब ध्यान कर। बुढापे के आकर झंझोड़ डालने के पूर्व ही तू उस निधि को एकत्रित करले। यमराज आकर रोगरूपी बाणों से तेरे शरीर को छलनी बना डालेगा, उससे पूर्व ही कोई बड़ा तप तपले। मनुष्य-देह में स्थित षड्रिपुरूपी भेड़िये कोई उपद्रव कर डालेंगे और चारों ओर से झझोंडेंगे, पहले ही पुण्य कमाले। ऐसा धन कमाले जिसको न राजा का भय न चोर का, जिसको भाईबन्दों के बटवारे का भी भय नहीं—क्यों मोह में फंस रहा है। सबको मरना आवश्यक है कोई बचेगा नहीं, तू भी बचेगा नहीं, देख तेरे बावा परबावा और

अन्य सम्बन्धी कहां हैं। चल, उठ दौड़ कुछ कर सके तो कर, धर्मसंचय कर।

मातापितृसहस्राणि,
पुत्रदारशतानि च।
अनागतान्यतीतानि,
कस्य ते कस्य वा वयम् ॥
अहमेको न मे कश्चित्,
नाहमन्यस्य कस्यचित्,
न तं पश्यामि यस्याहं,
तन्न पश्यामि यो मम ॥
न तेषां भवता कार्यम्,
न कार्यं तव तैरपि।
स्वकृतैस्तानि जातानि,
भवांश्चैव गमिष्यति ॥

जन्मजन्मान्तरों को मिलाकर सहस्रों माता पिता पुत्र स्त्री हुए और होंगे, वे किसके और हम किसके। मैं अकेला ही हूं मेरा कोई नहीं और न मैं किसी का। न मेरा उनसे कोई कार्य अटका और न उनका कार्य मुझसे बना, है ही कौन किसका। अपने कर्मों से आये, गये, तू भी इसी तरह एक दिन जायगा।

निर्वेदमापन्नः—

नरदेवशास्त्री।

पिशाचो वित्तेच्छा,
भुवि विदितसारा ह्यपि, बुधाः !
न जाता यत्रार्ये,
यमिसमितिगीतस्तुतिगणे ।
सुतेच्छाव्यासङ्ग-
स्थितिमपि न लेभेऽतिविमले,
यदीये चित्ते तं,
नमत पुरुषाः ! चित्रचरितम् ॥

दिलीपदत्तोपाध्यायः

बेलोन

स्वामी जी की जन्मभूमि

राजघाट नरौरा से चार मील के अन्तर पर तथा डिबाई स्टेशन (ई० आई० आर० चन्दौसी–अलीगढ़ लाईन) से रामघाट को जो सड़क जाती है उसके तीसरे मील पर यह कसबा बसा हुआ है। नरौरा यहां से डेढ़ मील पर है। यहीं से गङ्गा जी की हज़ारा नहर निकाली गई है। देखने योग्य स्थान है। बेलोन नाम बिल्ववन का अपभ्रंश है। यहां किसी समय बेल वृक्षों का इतना घना जङ्गल था कि उसका नाम ही बिल्ववन पड़ा और यहां एक प्राचीन देवी का मन्दिर था जिसको बेला भवानी का मन्दिर कहते थे। पहले तो यह स्थान इतना प्रसिद्ध नहीं था फिर मरहटों की अमलदारी में बेला भवानी के कारण प्रसिद्ध हुआ। यहां प्रति वर्ष दो वार बड़ा मेला लगता है। पूर्व के ज़िले के बहुत यात्री आया करते हैं। पण्डों की संख्या भी यहां कम नहीं है। सब सनाढ्य ब्राह्मण हैं। सब मथुरा के ढंग के चौबे हैं, संभवतः इनका निकास ही मथुरा जी से है। वैसे बेलोन ठाकुरों का ग्राम है और ज़िमींदारी ठाकुरों की ही रही है किन्तु परस्पर वैमनस्य आदि के कारण ठाकुर निर्बल होते जा रहे हैं। यहीं के एक सनाढ्य कुल में हमारे चरित्रनायक का जन्म हुआ था। बेलोन ग्राम बड़ा लड़ाका ग्राम है। तीस एक वर्ष से ग्राम वाले सीधे होगये हैं, नहीं तो प्रतिवर्ष किसी न किसी बात पर लाठी-काण्ड हो जाता था और कोई न कोई मर अथवा मारा जाता था। मुकद्दमे में सहस्रों रुपयों का चूरा हो जाता था। पहले तो

चित्र सं० ७

श्री पं० पद्मसिंहशर्मा साहित्याचार्य संपादक भारतोदय।

मन्दिर के मामलों में झगड़े होते थे। फिर ठाकुरों व पण्डों में झगड़े होने लगे, वह भी केवल शान जमाने के लिये। यहां के केवल ठाकुर ही लड़ाक नहीं थे अपितु पण्डे, ब्राह्मण, लाला सब समानरूप से ही लड़ाक थे। एक बार लेखक को स्वा० जी के साथ बेलोन जाने का अवसर मिला था। उस समय ऐसा ही एक प्रबल लाठीकाण्ड हो गया था। एक ओर स्व० ठाकुर आरामसिंह का दल, दूसरी ओर स्व० पण्डा रघुनन्दन आदि का दल समझा जाता था। वैसे पण्डा रघुनन्दन जी आर्यसमाज बेलोन के प्रधान थे किन्तु मन्दिर में भी इनका कुछ हिस्सा था। अब इनके कनिष्ठ भ्राता पण्डा भिट्ठनलाल आर्यसमाज के प्रधान हैं। स्वा० जी के बालसखाओं में से पण्डित केदारनाथजी व लाला गङ्गाप्रसाद जी आज इस लोक में नहीं हैं। गङ्गाप्रसाद जी के छोटे भाई लाला बैनीराम जीवित हैं और इन्हीं से स्वा०जी की बाल्यावस्था के अनेक समाचार मिले। स्वा० जी के दूसरे बालसखा पण्डा रामचन्द्र (आयु ७०) ने भी अनेक वृत्तान्त बतलाये।

स्वामी जी का कुल।

स्वामी जी सनाढ्य वंश के थे। इनके पिता पं० हेमराज अच्छे वैद्य थे और 'हकीम जी' नाम से प्रसिद्ध थे। इसीलिये वैद्यक स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी की पैतृक संम्पत्ति रही है। ये चाहते तो वैद्यक से सहस्रों रुपये कमा लेते, धन-धान्य-समृद्ध पूंजीपति होते, पर स्वा० जी सदा गरीबों की मुफ्त चिकित्सा करते रहे। इनके स्वाध्याय-सत्र के साथ साथ कुटिया में कोई न कोई दवाई

घुटती ही रहती थी, प्रतिदिन रोगी आने ही रहते थे। यह स्वा० जी का कुल बड़ा तेजस्वी कुल था। इनके बड़े भाई पं० कन्हैयालाल पुजारी की एक बात बेलोन में प्रसिद्ध है, उसीसे ज्ञात होगा कि इस कुल में कैसा तेज था।

ठा० देवीसिंह जी ज़िमींदार थे। पुजारी जी प्रतिदिन पत्र-पुष्प ले जाकर ठाकुर साहब को आशीर्वाद दे आया करते थे। "जय हो यजमान की" कह आया करते थे। आप प्रतिदिन जाते किन्तु ठाकुर साहब अपने आसन से न उठते थे, बैठे २ ही 'पालागे पण्डा जी' "पालागे पुजारी जी" कह दिया करते थे। पुजारी जी के मन में बड़ी ग्लानि होने लगी कि हम ब्राह्मण यह क्षत्रिय, हमारे आने पर ये अभ्युत्थान नहीं देते हैं। उनको यह अपमान सहन न हुआ। उन्होंने मनु को टटोला और एक दिन मनुस्मृति को साथ ले गये। प्रतिदिन की भान्ति "पालागे पण्डा जी" कह कर ठाकुर साहब ने पुजारी जी को बैठने के लिये कहा। पुजारी जी ने क्रोध से मनुस्मृति की पुस्तक ठाकुर साहब के सिर पर फेंकी और कहा कि यदि मनु को मानते हो तो हमारे आने पर अभ्युत्थान दिया करो नहीं तो इस मनुस्मृति को ही फूँक दो जिसमें लिखा है कि पाँच वर्ष का ब्राह्मण बालक भी आवे तो उसको अभ्युत्थान देना चाहिये। इस तेजस्विता का ठाकुर साहब पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि दूसरे दिनसे ही पुजारी जी को दूरसे देखते ही आसन छोड़ कर खड़े हो जाते व उनको उच्चासन पर बैठाकर स्वयं साधारण आसन पर बैठ जाते थे। स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी ऐसे पुजारी जी के छोटे भाई थे। पं० हेमराज जी भी बड़े हठी पुरुष थे। जिस बात पर डटजाते उसी पर

मर मिटते, जिसका साथ देते अन्त तक निभाते थे। गरीबों का मुफ्त उपचार करते थे इसी लिये लोकप्रिय भी थे। स्वा० जी के भ्राता कन्हैयालाल जी बेलोन ग्राम से बाहर सड़क पर एक मढ़ी है, उसके मन्दिर के पुजारी थे। सारांश वह समय ऐसा था कि पं० हेमराज को सब प्रकार से गृहसौख्य प्राप्त था। स्वा० जी की माता बड़ी दयालु और श्रद्धावती देवी थी। लेखक को बेलोन में कई वार उनकी दयालुता का परिचय मिला था। ऐसा प्रतीत होता है बालक गङ्गादत्त में क्रोधादि उग्र गुण पैतृक व दयालुता आदि सौम्य गुण मातृक थे। जब हम बेलोन गये थे तब हमने देखा कि वहां के लोग गङ्गादत्त जी को 'ऋषिजी' के नामसे याद करते थे। स्वा० जी परले सिरे के क्रोधी थे इसलिये किशोरावस्था में ही इनका नाम "रिसीजी" (रिसी क्रोध करने वाले) पड़ा था। जब काशी जी से लौट आये तब "ऋषिजी" कहलाये जाने लगे और अब तक अनूपशहर की तहसील मे जिसमें कि बेलोन है सब लोग इनको "ऋषि जी" नाम से जानते हैं।

गङ्गादत्त जी का स्वभाव।

स्वामी जी में परस्परविरोधी अनेक गुण थे किन्तु उन गुणों का एकत्र संवास ही आश्चर्य जनक था। क्रोधी भी परले सिरे के, दयालु भी परले सिरेके। एक ओर कठोरता की भी हद थी दूसरी ओर मृदुता की भी पराकाष्ठा। एक ओर परिश्रमी भी परले सिरेके, दूसरी ओर कोमल भी ऐसे कि देखते ही आश्चर्य होता था। ऐसे मानी थे कि कोई किन शब्दों में वर्णन करे। क्रोधी भी ऐसे कि यदि घर से रूठे तो तीन-तीन चार-चार दिन का घोर उपवास रहता था। इनकी बाल्यावस्था की एक कथा

इस प्रकार बतलाते हैं कि जब ये मदरसे में पढ़ते थे तब छुट्टी के दिनों में लड़कों को एकत्रित करके दो दल बनाते थे। दोनों दलों के हाथों में बाँस की खपच्चियां होतीं थीं और दोनों में युद्ध होता था, कभी कोई दल हारता कभी कोई। गङ्गादत्त को इस प्रकार के खेलों में बड़ा आनन्द आता था।

जिन परिस्थितियों में उनका जन्म हुआ था उन्हीं परिस्थितियों का यह प्रभाव जान पड़ता है। गंगादत्त चौथे दर्जे तक बेलोन में ही पढ़े। फिर संस्कृत पढ़ने के लिए खुर्जे भेजे गये। वहां से वे तीसरे चौथे दिन भाग आया करते थे। पुजारी जी इनको खूब डाटते थे। खुर्जा में दो वर्ष रहकर इन्हों ने लघुकौमुदी का साधारण ज्ञान प्राप्त किया किन्तु ज्योतिष में अच्छे चल निकले थे। प्रतिदिन दो चार आने जेब में डाल कर ही स्वस्थान को लौटते। इनके गुरु थे पं० किशोरीलाल ज्योतिषी।

खुर्जा

एक बार गंगादत्त जी खुर्जे से उसी प्रकार चले आये जैसे पहले आया करते थे। भाई पुजारी को यह असह्य प्रतीत हुआ और उन्होंने भला बुरा जो कुछ कह सकते थे कह डाला और एकाध चपत भी जमा दिया—

पुजारी जी—इतना जल्दी क्यों आया

गंगादत्त—जी नहीं लगा...........

पुजारी जी—जी क्यों लगेगा, चौथे दिन यहां आबैठते हो। क्या पढ़ोगे, क्या सीखोगे ?

गंगादत्त—मुझे काशी भेजदो।

पुजारी जी—क्यों नहीं, काशी से महाभाष्य ही तो पढ़कर आयगा।

गंगादत्त से यह ताना न सहा गया। उन्होंने मन में ही काशी जाने की ठानी और जब मौक़ा लगा चुपचाप घर से चल-दिये। चलते समय उनके पास केवल दो पैसे थे। उन दिनों में डिबाई रेल भी नहीं आई थी। पैदल ही पैदल अतरौली होकर कोल (अलीगढ़) पहुँचे। वे दो पैसे यहीं इस यात्रा में समाप्त हुए। न जाने किस कष्ट से वहां से मथुराजी पहुँचे।

मथुरा में

पंडित उदयप्रकाश जी के पास

मथुराजी में नाम धाम पूछते पूछते श्री पं० उदयप्रकाश जी के पास पहुँचे। पं० उदयप्रकाश जी स्वा० दयानन्द जी के सहाध्यायी थे। गंगादत्त कई दिन के भूखे थे। जब पं० जी के द्वार पर पहुँचे तब गुरुपत्नी ने देखा कि कोई षोडशवर्षीय कुमार खड़ा है। उसने प्रेम से पूछा कि क्या चाहते हो।

गुरुपत्नी—कैसे आये हो, कहाँ से आये हो?

गंगादत्त—कोल से, पढ़ने के लिए।

गुरुपत्नी—अच्छा कुछ खाया भी है कि नहीं?

गंगादत्त—तीन दिन से कुछ खाया नहीं?

गुरुपत्नी—"ओहो" अच्छा चलो हमारे घरमें। पहले कुछ खालो फिर बातें करेंगे।

गंगादत्त को खिलाते हुए गुरुपत्नी ने पूछा।

गुरुपत्नी—तुम्हारा नाम।

गंगादत्त—गंगादत्त।

गुरुपत्नी—गोत्र?

गंगादत्त—भारद्वाज।

गुरुपत्नी—सनाढ्य हो?

गंगादत्त—जी हाँ—

गुरुपत्नी—यहाँ रहोगे?

गंगादत्त—यदि गुरुजी रखलेंगे तो।

गुरुपत्नी—रख तो लेंगे, मैं भी कहूँगी तुम कुछ काम भी करोगे।

गंगादत्त—जो आप बतलायेंगी।

गुरुपत्नी—हमारी दो गौएँ हैं। इनकी सानी करना, सेवा करना। हमारे यहां ही भोजन करना और खूब पढ़ना, कोई चिन्ता मत करना।

गंगादत्त—जैसी आज्ञा।

इतने में बाहर से पं० उदयप्रकाश जी महाराज पधारे।

उदयप्रकाश जी—यह कौन है?

गुरुपत्नी—एक विद्यार्थी है।

उदयप्रकाश जी—पहले ही क्या कम विद्यार्थी हैं जो और एक को ले आई हो।

गुरुपत्नी—लड़का अच्छा है, गौओंकी सेवा करेगा, दो अक्षर पढ़ लेगा हमारी क्या हानि है।

उदयप्रकाश जी—अच्छी बात है।

मथुराजी में इस गुरुपत्नी की कृपा से गंगादत्त को चार रोटियाँ मिल जाती थीं। दोनों समय गौओं की सेवा शुश्रूषा

करना, घर का भी थोड़ा बहुत काम करना, गुरुजी की आज्ञाओं को मानना व दिन में अवकाश के समय अष्टाध्यायी पढ़ना और रात भर घोकना, इस तरह दो वर्ष में गंगादत्त ने अष्टाध्यायी की तीन आवृत्तियाँ समाप्त कीं। फिर भला गंगादत्त अष्टाध्यायी के पाणिनीयाष्टक के एकमात्र विद्वान क्यों न बनते।

फिर गंगादत्त जी का जी वहां न लगा और काशी का नाम लेकर वहाँ से चल पड़े। कानपुर पहुँचे। वहाँ एकाध मास रह कर आगे बढ़े और पैदल ही पैदल काशीधाम पहुँचे जहां कि इनकी विद्या बुद्धि का विशेष विकास होना बँधा था, जहाँ से कि जं वनपथ में प्रबल क्रान्ति होने वाली थी। गंगादत्त जी के घर से चले जाने के पश्चात पुजारी जी को सब ने भला बुरा कहा, बेचारे पुजारी जी ने इधर उधर बहुत ढूँढा पर गंगादत्त का पता न चला। फिर यही मानकर सबने संतोष कर लिया कि "कहाँ जायगा? कहीं इधर उधर होगा, आजायगा दो-चार दिनमें।"

कल्याणपंडित।

स्वा० जी के कुल के सम्बन्ध से "ताऊ" कहे जाने वाले एक कल्याणपण्डित थे। गंगादत्त जी के काशी पहुँचने के पूर्व ही, नहीं नहीं, गंगादत्त जी अभी खुर्जे में ही पढ़ते थे तब, इसीप्रकार घर से रूठ कर काशी चलेगये थे। काशी में विश्वनाथ के मंदिर में अचानक दोनों मिले तब बेलोनवालों को पता चला कि गंगादत्त काशी पहुँचगये। यही कल्यणपण्डित आगे जाकर श्री १००८ स्वामी मधूसूदनतीर्थ बने और यही गंगादत्त आर्यसमाज के श्री १०८ स्वा० शुद्धबोधतीर्थ हुए।

नासाध्यं विद्यते विधेः।

अष्टाध्यायीपरम्परा

स्वा० विरजानंदसरस्वती (दण्डीस्वामी)

- पं० उदयप्रकाश जी (कट्टर पौराणिक)
  - पं० गंगादत्त (स्वा० शुद्धबोधतीर्थ)
- स्वा० दयानन्दसरस्वती (आर्यसमाज के प्रवर्तक)
  - पं० भीमसेन शर्मा (इटावानिवासी)
  - पं० ज्वालाप्रसादशर्मा, पं० यज्ञदत्त शर्मा इत्यादि

आश्चर्य है कि आर्यसमाज के प्रवर्तक के शिष्य कहलाने वाले सभी पण्डित स्वजीवनकाल में ही आर्यसमाज को छोड़ गये थे और कट्टर पं० उदयप्रकाश जी से अष्टाध्यायी का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी की समस्त आयु आर्यजगत् की सेवामें गई ।

काशी में

उस समय काशी में सत्ताईस सहस्र संस्कृत के छात्र थे। अन्नक्षेत्र भी छः सौ से कम न होंगे। काशी तो भारतवर्ष का विद्याकेन्द्र रहा है। अन्नक्षेत्र वालों ने अन्न दे दिया, भोजन देदिया, पढ़ाने वाले गुरुओं ने विना प्रतिफल की इच्छा से पढ़ा दिया, बस इसीप्रकार प्राचीन निःशुल्क शिक्षा चली आरही है जिससे भारतवर्ष को प्रतिवर्ष प्रत्येक विषय के सैकड़ों पण्डित मिलते रहे हैं और जब तक यह प्रणाली बनी रहेगी तब तक बराबर मिलते रहेंगे। प्राचीन निःशुल्क शिक्षा वही है जिसमें गुरुओं पर भी किसी प्रकार बोझ न पड़े, शिष्यों को भी सुभीता हो और स्वाध्यायसत्र अव्याहत चलता रहे। हमारे चरित्र-नायक के पास एक पाई भी नहीं थीं, अगत्या क्षेत्र की शरण लेनी पड़ी। गंगादत्त जी कई जगह पढ़ते थे और सायंकाल को स्वस्थान पर पढ़ाते भी थे। कभी कभी गुरुओं के पास से क्षेत्र में समय पर भोजन के लिए पहुँचना कठिन हो जाता था। विलम्ब से पहुँचने पर क्षेत्रवाले दरवाजा बन्द कर लेते थे, भोजन नहीं देते थे। गंगादत्त जी को बड़ी ग्लानि आई। एक भगत प्रतिदिन इन को दो पैसे देने लगा इससे दियाबत्ती का काम चल जाता था। किसी अन्य भक्त ने प्रतिदिन आध सेर आटा व एक छटांक दाल बाँध दी, बस इसीतरह स्वयंपाकी होकर निर्वाह करते रहे। खुर्जे के क्षत्रवालों से भी कभी कभी सहायता

मिलती थी। दस वर्ष तक एक वार भोजन करके व एक वार भूखे रह कर पढ़ा। अध्ययनाध्यापन में ऐसे जुटे कि छात्रजनों में व गुरुओं में इनकी बड़ी ख्याति हुई। कोई छोटा मोटा पाठ आया कि "अरे उस गंगादत्त के पास जाओ न, वह सब ठीक करा देगा उससे अमुक पुस्तक करवाकर फिर हमारे पास आना" ऐसा गुरुजन कहते थे। गंगादत्त के निवासस्थल पर छात्रों की अच्छी खासी भीड़ रहने लगी। उनमें श्री पं० भीमसेन जी साहित्यचार्य व श्री सीतारामशास्त्री जी का नाम उल्लेख योग्य है। पं० भीमसेन जी गंगादत्त जी से व्याकरण व श्री पं० भागवताचार्य जी से साहित्य व वेदान्त पढ़ते थे। इस प्रकार गंगादत्त जी ने काशी में श्रीगुरुवर काशीनाथ जी से नव्यव्याकरण के समस्त ग्रन्थ व वेदान्त, श्री पं० हरनामदत्त जी भाष्याचार्य (गौड) से संपूर्ण महाभाष्य, श्री पं० सीतारामशास्त्री द्रविड से नव्यन्याय पढ़ा। उन दिनों काशी में बड़े दिग्गज पण्डित रहते थे, प्रत्येक विषय के प्रकाण्ड पण्डितों की कमी नहीं थी। गंगादत्त जी उपर्युक्त गुरुओं के अतिरिक्त कहाँ २ जाते थे ठीक २ पता नहीं चलता, किन्तु यह पता चला कि गोपालमन्दिर में श्रीरामशास्त्री (महामहोपाध्याय पं० गंगाधरशास्त्री के भाई) के पास भी जाते थे। वहाँ स्वा० दर्शनानन्द जी (पं० कृपाराम जी) से किस प्रकार परिचय हुआ यह हम पहले लिख चुके हैं। स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी से बातों २ में पता चला था कि वे व पं० नारायणसिद्ध दोनों श्री स्वा० मनीष्यानन्द जी के पास भागवत पढ़ने जाते थे। स्वा० मनीष्यानन्द जी भागवत के परम श्रद्धालु थे। हम जब काशी गये थे तब हम भी इनके पास पहुँचे थे। तब उन्होंने हमसे भी कहा था—

"विद्यावतां भागवते परीक्षा"

श्री स्वा० मनीष्यानन्द जी अध्यापन में इतने सिद्ध थे कि लघुकौमुदी से लेकर व्याकरण के समस्त ग्रन्थ, इसी प्रकार साहित्य व वेदान्त के ग्रन्थ विना पुस्तक देखे अव्याहत गति से पढ़ाते थे। इस समय भी यदि काशी में कोई ऐसे विद्वान् हैं तो वे हैं श्री गुरुवर पं० काशीनाथ जी शास्त्री। समस्त आकरग्रन्थों को विना देखे पढ़ाना असाधारण बुद्धि का ही खेल है। श्री गंगादत्त जी जब १२-१३ वर्ष के थे तभी इनके पिता का स्वर्गवास होगया था।

जब गंगादत्त काशी में थे तभी पीछे इनके भाई पुजारी कन्हैयालाल का देहावसान होगया, कई वार बीमारी के पत्र गये किन्तु गंगादत्त जी यही उत्तर देते रहे कि 'अभी महाभाष्य समाप्त नहीं हुआ।" गङ्गादत्त जी ने लिखा कि "ईश्वर की कृपा होगी तो आप स्वस्थ होजायंगे। खेद है कि अभी महाभाष्य समाप्त नहीं हुआ इस लिए नहीं आसकूंगा, क्षमा।" बस पुजारी जी भी चल बसे। इनकी माता का देहावसान सन् १९०९ में हुआ था। जब महाविद्यालय में पं० गङ्गादत्त जी अत्यन्त रुग्ण थे तब वह एकवार आई थीं। पं० जी के भतीजे श्रीधर का निधन अमृतसर में शास्त्रिपरीक्षा देते समय हुआ था, यह बात हम पहले लिख चुके हैं। स्वा० शुद्धबोध का संसारी परिवार न था न सही किन्तु उनका विद्यावंश इतना अधिक विस्तृत है कि उसको देखकर विस्मय और गौरव करना ही पड़ेगा। आश्चर्य की बात यह है कि बेलोन की जिस गली व गृह में गङ्गादत्त जी का जन्म हुआ था, उसका वह नक़्शा ही बदल गया है। उस

मुहल्ले के किसी वंश का कोई बच्चा भी शेष नहीं रहा। उन गृहों को और लोगों ने लेकर अपने २ स्थान बनवा लिये हैं। उस मुहल्ले में ७० के लगभग आबालवृद्ध रहते थे। उनमें से दो बचे हैं और दोनों ही कुडैनी लोहगढ़ जि० बुलन्दशहर में रहते हैं, उनका नाम है पं० नेतराम व पं० रामचन्द्र। यह सब कुछ हुआ पर यह उसी गली का सौभाग्य कि वहाँ के जन्मे हुए दो लड़कों ने—एक ने गोवर्धनपीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य बनकर, दूसरे ने आर्यसमाज के विबुधाग्रणी होकर संस्कृतविद्या, धर्म व देश के कार्य में इतना बड़ा भाग लिया। यह गौरव के साथ कहा जा सकता है कि आर्यसमाज में जितना ठोस कार्य स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी ने किया उतना किसी ने नहीं किया। महात्मा हंसराज जी ने अपना कार्य एकरस निभाया व बहुत ठोस काम किया किन्तु उनका सारा ध्यान एँग्लोवैदिक शिक्षा में लगा रहा। उनका कार्य मिश्रित रहा। स्वा० श्रद्धानन्द जी ने भी साहस व वीरता से अपने जीवन-शकट को चलाया किन्तु उनमें कार्यक्षेत्र की स्थिरता नहीं रही क्योंकि उन जैसे साहसी पुरुष की सदैव सर्वत्र आवश्यकता पड़ती थी और स्वा० श्रद्धानन्द जी समय को कभी भी हाथ से नहीं जाने देते थे। यह उनकी अनेक विशेषताओं में से एक भारी विशेषता रही है। अस्तु यह कोई तुलना करने का अवसर नहीं, भिन्न विशेषताओं को रखने वाले महापुरुषों की तुलना ही कैसे होसकती है।

काशी के प्रसङ्ग में स्व० श्री पं० भीमसेन जी (मुख्याध्यापक, प्रमुख संचालक) का विशेष उल्लेख करना अपरिहार्य होगया है।

पं० भीमसेन जी भी काशी में कष्ट से ही निर्वाह करते व पढ़ते थे। इन्होंने भी कई वर्ष तक एक बार ही भोजन किया। कभी आधे पेट रहे। कभी सूखे चनों पर निर्वाह करते रहे। पं० गङ्गादत्त जी की तरह इनको भी क्षेत्रान्न से घृणा थी, इस प्रकार अत्यधिक कष्टसहिष्णुता का प्रभाव उनके शरीर पर सर्वदा के लिए हुआ। अतिरुक्ष अन्नसेवन से उनको वहीं कई रोगों ने घेर लिया। इसके विपरीत गङ्गादत्त काशी से लौटे, तब इन्होंने वहाँ की सब कसर बेलोन में निकाली। खूब दण्ड व्यायाम करते, खूब दूध पीते, खूब दौड़ लगाते। इस शरीराध्यास को देखकर बेलोनवाले उनको पहलवान पण्डित कहने लगे थे। क्योंकि इन्होंने संस्कृत के इतने बड़े पण्डित को व्यायाम करते व दौड़ लगाते पहले २ ही देखा था। भला पण्डित व व्यायाम यह कैसे हो सकता था। लेखक ने अपने जीवनकाल में काशी में पण्डित नकछेदीराम जी को देखा था जो संस्कृत के अगाध विद्वान् थे और पूरे पहलवान भी थे। इन्होंने गोरखपुर जिले में कई पहलवानों को कुश्ती में हराया था। पं० नेकछेदीराम जी ने "सनातनधर्मप्रकाशः" नामक सनातनधर्म पर प्रकाश डालने वाला एक बृहद् ग्रन्थ संस्कृत में लिखा था। पं० गङ्गादत्त जी में यह बात अन्त तक विशेष रही कि पण्डित होने पर भी व्यायामादि बराबर करते रहे—छात्रों से भी व्यायाम लेते रहे। हट्टे कट्टे छात्रों को देखकर आप प्रसन्न हुआ करते थे। दुर्बल छात्रों का खूब उपहास उड़ाते और उनको व्यायामादि द्वारा तगड़े होने का प्रोत्साहन देते थे। श्री स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी को भ्रमण का भी बहुत शौक था। प्रति दिन प्रातः सायं दो तीन मील टहलने के विना उनको कल नहीं पड़ती थी।

फिर बेलौन ।

काशी से लौट कर फिर बेलोन आये तब बेलोन को सर्वथा बदला पाया। बेलोन से "रिसीजी" कहला कर गये थे और वापस आकर 'ऋषिजी' कहलाये। यह है १८९३ की बात। उधर पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा ने महात्मा मुन्शीराम जी की निरीक्षता में जालन्धर में वैदिक आश्रम खोला था किन्तु उसके लिये कोई सुयोग्य पण्डित नहीं मिला था। महात्मा जी ने पं० कृपाराम को लिखा और पं० कृपाराम जी ने पहले ही गङ्गादत्त जी को पक्का कर रखा था–तदनुसार वे जालन्धर पहुँचे।

जालन्धर में ।

वैदिक आश्रम महात्मा मुन्शीराम जी की कोठी के सामने ही आर्यसमाज के पीछे रेलवे लाइन के किनारे था। गङ्गादत्त जी एक तो यू० पी० के थे, दूसरे काशी रहकर आये थे। पक्के चौका चूल्हे वाले थे। आकाश में भी चौका लगाते थे। म० मुन्शीराम जी के सहवास से उनका वह अतिरेक धीरे धीरे घटता गया। वहां के प्रथम विद्यार्थियों में श्री भक्तराम (डिंगा) श्री साहबाराम (विश्वमित्र) होशियारपुर निवासी, श्री पं० विष्णु-मित्र जी आदि थे। इनके पश्चात पं० पद्मसिंहशर्मा भी पहुँचे। संयुक्तप्रान्त के अर्थात् अपने ही देश के एक सुयोग्य छात्र को देखकर पं० गङ्गादत्त जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। छात्रमण्डल प्रसन्न था कि उनको ऐसा सुयोग्य गुरु मिला। पण्डित जी के दूर दूर से छात्र आने लगे। पण्डित जी की धाक सनातनी पं०

भी मान गये। एक तो काशी का नाम, फिर ऐसे उद्भट विद्वान्, धाक क्यों न जमती ? वहां के पं० ब्रजभूषण शास्त्री, पं० मेला-राम शास्त्री आदि प्रमुख पण्डित बराबर इनसे मिलने आते रहते थे। इसप्रकार पुरानी कट्टर दुनियाँ के प्रतिनिधि गङ्गादत्त व नयी दुनियाँ के प्रतिनिधि महात्मा मुन्शीराम इन दोनों का योगा-योग हुआ। उन्हीं दिनों 'गुरुकुल' की स्कीम भी बातों बातों में बन रही थी। उस समय हरिश्चन्द्र व इन्द्रचन्द्र बहुत छोटे थे स्कूल में पढ़ते थे। जालन्धर के ला० शालग्राम गुरुकुल की स्कीम में सहयोगी थे। उन्होंने अपने भतीजे चन्द्रमणि को गुरुकुल के लिये तैयार किया। भैरोवाल जि० हुशियारपुर के बा० प्रतापसिंह जी (जो कई वर्ष नैरोबी मुंबासा आदि (अफ़रीका) स्थानों में रह कर आये थे) का भी यहीं मेल हुआ। ग्वालियर के पेशकार मुन्शी तोताराम जी ने भी म० मुन्शीराम जी से प्रतिज्ञा की थी कि यदि गुरुकुल खुला तो वे अपने 'शङ्कर' को गुरुकुल भेजेंगे। बा० प्रतापसिंह अपने पुत्र ऋषिदेव को भेजने पर तैयार हो गये। म० मुन्शीराम तो हरिश व इन्द्र को भेजने को तैयार थे ही। गुरु गङ्गादत्त तो हाथ लगे ही थे। सामग्री सब जुट चुकी थी। पातूर जि० अकोला के मनसबदार ठाकुर गोविन्दसिंह (हमारे पिता जी के परम मित्र) भी अपने धर्मपाल को भेजने के लिये राजी हुए। उन्होंने गुरुकुल के लिये दशसहस्र रुपये देने की प्रतिज्ञा भी की। इस प्रकार वैदिक आश्रम भी चल रहा था और गुरुकुल की स्कीम भी बन रही थी।

वैदिक आश्रम जालंधर में १८९८ मई तक रहा। फिर आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब ने उसको गुजरानवाला में बदल दिया।

विवश आश्रम वहां गया। राय रलाराम जी के कारण ही यह सब कुछ हुआ। वहां 'आश्रम' को एक सुन्दर स्थान मिलगया था। संभवतः परिवर्तन का यह भी एक प्रमुख कारण था। लेखक लाहोर से इस परिवर्तन के कुछ दिन पूर्व ही जालंधर पहुँचा था। उसी वर्ष उसने मैट्रिक पास की थी। मिशन कालेज में नाम लिखवा चुका था, संभवतः कालेज में पढ़ता तो न जाने आज कहां होता और न जाने क्या करता। जिस बैंक में हमारे लिये रु० रक्खे हुए थे उस बैंक का दिवाला निकल गया, देश में हमारे घर में भी पिता जी की अनुपस्थिति में, चोर सहस्रों का माल उड़ा लेगये थे इस लिये कालेज की बात छोड़ देनी पड़ी—श्री पिता जी ने लिखा कि "अब विवशता है, घर लौट आओ" किन्तु लेखक ने घर लौटना पसंद न किया। उसन यत्न किया कि किसी नौकरी पर अफरीका आदि स्थानों में जावे किन्तु इसमें असफल रहा। अन्ततोगत्वा जन्मपत्री-लिखित देश व धर्म का मार्ग स्वीकार करना पड़ा। महात्मा मुन्शीराम की सलाह व राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी के परामर्श से मैं जालंधर पहुंचा और पं० जी से मिला। इसका नाम है ऋणानुबन्ध, इसका नाम है अदृष्ट-बंधन! कहां दाक्षिणात्य मैं और कहां उत्तरापथ के गंगादत्त, किन्तु

स्वप्नेऽपि यदसंभाव्यं
यत्र भग्ना मनोरथाः।
हेलया तद्विदधतो,
नासाध्यं विद्यते विधेः

चित्र सं० ८
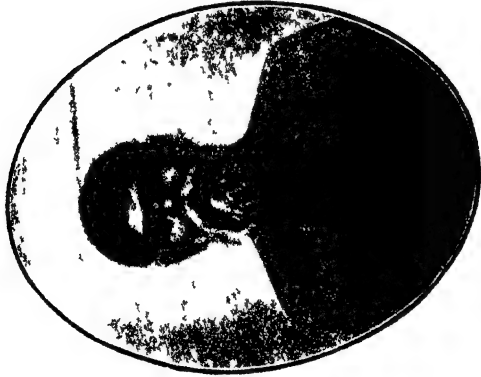
श्री बाबू सीताराम जी भूमिदाता
महाविद्यालय
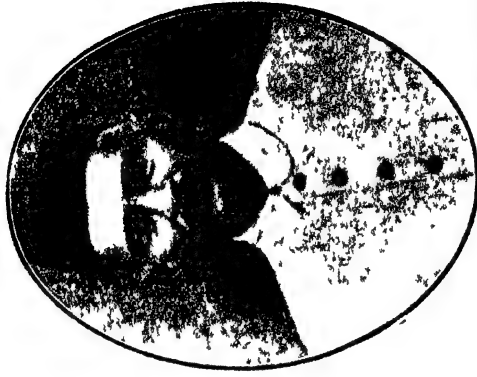
श्री बाबू जगदम्बाप्रसाद जी (भानजे
बाबू सीताराम जी)।

देहिनो व्यसनापातवैवश्याद्भ्रमतो पथि,
अकार्यं कुर्वतः कार्यं, सिद्धिं संसाधयेद्विधिः ॥

(राजतरङ्गिणी)

जिस बात को हम असाध्य समझते हैं, विधि के लिए क्या असाध्य है। स्कूल कॉलेज छुड़ाकर, संस्कृतविद्या की ओर झुका कर, फिर समस्त भारत को मेरा बना देने में दैव ने प्रबल सहायता दी है। उधर से आगे नहीं आया इधर से सही। अस्तु, पं० गङ्गादत्त जी के पास पहुँचते ही उन्होंने बातों २ में ही मुझ नरसिंहराव को नरदेव बना दिया। पहले २ यह नामकरण हुआ पश्चात् नई शिक्षादीक्षा मिलने लगी। जिस वायुमण्डल से निकल कर आया था, यह नया वायुमण्डल सर्वथा उसके विपरीत था। यहां तो सब बातों में एकदम नवीनता थी। पं० गङ्गादत्त जी हमको देखकर प्रसन्न हुए। जब वैदिक आश्रम गुजरानवाला जाने को था, उससे एक दिन पूर्व ही हम लाहोर गये, अपनी मित्रमण्डली से मिले। जब हम जालंधर से चले तब पं० जी ने हमसे लाहोर से अच्छे पान लाने को कहा। पं० जी को पान व सुति (तमाखू) का व्यसन था। जालंधर से गुजरानवाला जानेवाली ट्रेन जब लाहोर आई तब हम भी स्टेशन पर पहुँचे। हमने जलदी से वहीं स्टेशन पर पान खरीदे व नये गुरुमहाराज के अर्पण कर दिये।

पण्डित जी—ये पान कहां से लाये।

मैं—यहीं स्टेशन से खरीदे।

पण्डित जी—ऐसे तो हम भी स्टेशन से खरीद लेते, तुम्हें किस लिये कहा था।

मैं चुप रहा किन्तु मैंने देखा कि वे मुझसे अप्रसन्न होगये हैं। गुजरानवाला पहुँचने के पश्चात् भी ५–६ दिन तक मुझसे नहीं बोले। यह उनका प्रथम ही क्रोध था। मैंने मनमें कहा पंडित लोग भी क्या विचित्र प्राणी हैं, पान जैसी क्षुद्र वस्तु पर ५–६ दिन तक क्रोध !! मन ने कहा "अरे किस बबाल में आफँसा, किसके पास आफँसा'—आकाशवाणी ने कहा "अभी क्या है ऐसे पूरे पैंतीस वर्ष निभाने पढ़ेंगे"—मैंने कहा "ओहो" प्रतिध्वनि हुई "ओहो"—वे पैंतीस वर्ष धीरे २ आये और गये भी और भूतकालीन वह सब वृत्त केवल स्मृति-विषय होगये हैं। वैदिक आश्रम गुजरानवाला में १८९८ जून में गया

१७ जून १९५९, रविवार, प्रातः

गुजरानवाला।

गुजरानवाला में लगभग दो वर्ष तक आश्रम रहा। पढ़ाई की खूब धूम रहती थी। गुजरानवाला में भी संस्कृत पाठशाला थी। वहाँ पं० विद्याधर नामक एक नामी पंडित होगये थे उन्हीं के नाम पर पाठशाला चल रही थी। हमारे आश्रम के छात्रों व विद्याधर-संस्कृत पाठशाला के छात्रों में खूब स्पर्द्धा रहती थी। आर्यसमाज के प्रसिद्ध कवि मुन्शी केवलकृष्ण यहीं रहते थे व समाज के प्रधान थे। इनके भाई मु० नारायणकृष्ण बालब्रह्मचारी थे और आश्रम की देखभाल करते थे। राय रलाराम सर्वोपरि थे। उस समय श्री पं० जी के पास बड़े बड़े सुयोग्य छात्र थे। श्री पं० विष्णुमित्र, श्री विश्वामित्र, श्री यज्ञदत्त, श्री पं० सूर्यदत्त, श्री दीनानाथ, श्री कृष्णदत्त, श्री पं० नन्दलाल व्यास आदि प्रमुख छात्र थे। थोड़े दिनों में इस लेखक की गिनती भी प्रमुखों में होने लगी थी। वहां तो रातदिन पढ़ाई के सिवाय कोई काम नहीं था। एक बड़ा ढोल पं० जी के कमरे के सामने पड़ा रहता था। जहाँ ढोल की आवाज हुई कि चले छात्रवृन्द पढ़ने। प्रातः ४ बजे से रात्रि ११ बजे तक बराबर पाठ चलते ही रहते थे। काशीकी-सी डट के पढ़ाई होती थी। श्री गङ्गादत्त जी के सहाध्यायी पं० नारायणसिद्ध जी भी यहीं आ गये थे। बड़ी चहल पहल रहती थी। इधर यह चहल पहल थी और उधर प्रतिनिधिसभा पंजाब ने गुरुकुल खोलने का निश्चय कर लिया था। महात्मा मुन्शीराम ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक तीस सहस्र रु० एकत्रित न होंगे तब तक वे जालंधर नहीं लौटेंगे। महात्मापार्टी में खूब उत्साह था। सबने जोर लगाया और छः

मास में रु० एकत्रित हुआ और म० मुन्शीराम जालंधर पहुंचे। उधर राय रलाराम व राय ठाकुरदत्त धवन ने अङ्गरेजी में सुन्दर स्कीम लिखी। किन्तु रायद्वयी की पार्टी के मन में था कि गुरुकुल गुजरानवाला में ही रहे। म० मुन्शीराम व पं० रामभजदत्त आदि हरद्वार के पक्ष में थे। यह मतभेद उग्र होता गया और पं० गंगादत्त जी गुजरानवाला छोड़कर जालंधर म० मुन्शीराम से मिलने आये। साथ मैं भी चला आया। गुरुकुल के लिए जो ब्रह्मचारियों की प्रथम सेना तैयार हुई उसमें निम्न-लिखित नाम थे—

ब्र० हरिश्चन्द्र, ब्र० इन्द्रचन्द्र } पुत्र म० मुन्शीराम जी।

ब्र० जयचन्द्र ... पुत्र पं० बाशीराम जी वजीराबादी।

ब्र० चन्द्रमणि ... भतीजा ला० शालग्राम जी।

ब्र० लव, ब्र० कुश } पुत्र ला० काशीराम वैद्य वजीराबाद।

ब्र० विश्वकर्मा ... पुत्र ला० खुशाबीराम लायलपुर।

ब्र० शंकर ... पुत्र मु० तोताराम जी पेशकार आंतरी (ग्वालियर)

ब्र० धर्मपाल ... पुत्र ठा० गोविन्दसिंह मनसबदा

ब्र० ऋषिदेव ... पुत्र बा० प्रतापसिंह भैरोवाल।

हरद्वार को

२९ जून सन् १९०० को श्री पं० गङ्गादत्त जी हरद्वार आये

और कनखल भागमल के बाग में टिके। पण्डित बाशीराम जी कांगड़ी में जंगल साफ करवा रहे थे। नजीबाबाद के चौ० अमनसिंह जी ने कांगड़ी ग्राम गुरुकुल को देदिया था। पहले तो गु० कु० के लिए बा० ज्योतिस्वरूप जी रईस देहरादून की खड़खड़ीवाली ज़मीन देखी गयी। फिर विचार हुआ कि बस्तीराम की पाठशाला की ज़मीन ली जाय। जब कांगड़ी ग्राम मिला तब सब विचार स्थगित किये गये। कनखल में स्व० पं० हीरालाल, ला० कृष्णचन्द्र जी व डा० लक्ष्मीदत्त जी पहासूनिवासी ने आचार्य जी को सब प्रकार की सहायता दी।

कनखल।

तेहतीस वर्ष पूर्व कनखल एक उजड़ी हुई बस्ती थी। सायंकाल को ५-५॥ बजे के पश्चात् भारामल के दरवाज़े से बाज़ार में जाने में डर लगता था। भारामल के दरवाज़े में एक वृद्ध पण्डित रहते थे और दो-चार उनके विद्यार्थी। इधर पं० गंगादत्त जी के पास हरिश्चन्द्र, इन्द्रचन्द्र व चन्द्रमणि ये तीन छात्र थे। इस प्रकार गुरुकुल का सूत्रपात कनखल में हुआ और ५-६ मास पश्चात् ही महात्मा मुन्शीराम तेहतीस ब्रह्मचारियों को लेकर हरद्वार आये और सीधे कांगड़ी चले गये। वहां पं० बासीराम जी ने ब्रह्मचारियों के लिये झोपड़ियां बँधवा रक्खी थीं। म० मुन्शीराम जी के लिये एक टेण्ट गाड़ा गया था। उसी में वे रहते थे व उसी में कांगड़ी गुरुकुल का प्रथम कार्यालय था। आचार्य गङ्गादत्त एक सुन्दर कुटिया में रहते थे। तब ब्रह्मचारी संस्कृत बोलते थे। यज्ञशाला थी बेलवृक्षों के झुण्ड में बड़ी सुहावनी।

पं० भीमसेनशर्मा भी एक कुटिया में रहते थे। पहले भण्डारी थे श्री शालिग्राम जी जालंधरी। अङ्गरेजी मास्टर थे श्री सुन्दरसिंह जी बी० ए० बी० टी। इस प्रकार बाल-ऋषि जङ्गल में मङ्गल करते थे। जिसने उस गुरुकुल को देखा है उसे वर्तमान बृहत्काय, बेढंगा गुरुकुल क्या पसन्द आयगा। आचार्य पं० गङ्गादत्त जी कांगड़ी चले गये और भारतवर्ष भर में स्वेच्छापूर्वक परिभ्रमण करने के लिये मेरा मार्ग खुला होगया। मैं भूलता हूं, बाबू प्रतापसिंह जी आगये थे।

गुरुकुल का प्रथम समारम्भ।

गुरुकुल का प्रथम समारंभ देखने के लिए सहस्रों नर-नारियों का झुण्ड टूट पड़ा था। स्व० दर्शनानंद सरस्वती विशेषरूप से निमन्त्रित किये गये थे। यदि यह मेल भविष्य में भी बना रहता तो संभवतः महाविद्यालय ज्वालापुर की संस्थापना ही न होने पाती, पर विधाता को यही मंजूर था कि महाविद्यालय खुले और किसी दिन कांगड़ी भी स्वस्थान को छोड़कर ज्वालापुर का ही पड़ोसी बने।

गुरुकुल में पांच वर्ष।

१९०१ से १९०६

गुरुकुल का नाम व काम प्रतिवर्ष बढ़ता गया। अब ब्रह्मचारी झोपड़ियों को छोड़ कर पक्के साफ सुथरे आश्रमों में रहने लगे थे। बाक़ायदा शानदार कार्यालय, बाक़ायदा उपकार्यालय,

भण्डार, वस्तुभण्डार, औषधालय, चिकित्सालय आदि बनगया था। गङ्गा जी के किनारे म० मुन्शीराम जी का बङ्गला भी शोभा देने लगा था। गङ्गादत्त व मुन्शीराम दोनों के सहयोग से खूब कार्य चल पड़ा। दोनों परस्पर आदर करते थे। दोनों दोनों को सहते थे। मिलकर, सोचकर काम करते थे, बीचमें तीसरे का हाथ नहीं था।

तीसरा हाथ।

श्री रामदेव जी के पदार्पण से ही गुरुकुल का रंग बदलने लगा। पहले प्रच्छन्न रूप में फिर प्रकट रूप में वर्चस्व के लिये झगड़े प्रारम्भ हुए। फिर स्कीम का झगड़ा चला। संस्कृत का बल घटने लगा, नई पद्धति का प्रवेश होने लगा। इत्यादि अनेक कारणों से आचार्य गङ्गादत्त जी उदासीन रहने लगे। उन्होंने बहुत यत्न किया कि दशा बिगड़ने न पावे किन्तु कोई वश नहीं था। म० मुन्शीराम रामदेव के प्रभाव में आचुके थे। यही रामदेव आगे जाकर म० मुन्शीराम से गुरुकुल छुड़ाने व उनके संन्यास लेने में कारण हुए।

आज रामदेव जी स्वयं ही गुरुकुल छोड़कर कन्या गुरुकुल के आश्रय से दिनकटी कर रहे हैं। अस्तु इसप्रकार मित्रभेद होने के कारण पण्डित गंगादत्त जी छुट्टी लेकर हृषीकेश गये, और वहां से गुरुकुल को अन्तिम नमस्ते लिख भेजी। मैं उस समय कलकत्ते से ताज़ा ही आया था, हरिश्चन्द्रादि की श्रेणी को निरुक्त पढ़ाता था। मुझे यह सब दृश्य देखकर बड़ा दुःख हुआ

और पं० गङ्गादत्त जी के शिष्यों ने ठान ली कि सुभीते के अनुसार धीरे २ गुरुकुल से चला जाना चाहिये। पं० पद्मसिंह पहले ही चले गये थे। श्री आचार्य गङ्गदत्त जी के चले जाने के पश्चात् पं० भीमसेन शर्मा, बा० प्रतापसिंह जी, उनके पश्चात् मैं, मेरे पश्चात् पं० विनायक गणेश साठे एम० ए०, उनके पश्चात् श्री पं० यागेश्वर जी ज्योतिषी, उनके जाते ही श्री प्रो० सियाराम एम० ए० एक २ करके चल दिये। फिर कई बार मुन्शीराम जी ने यत्न किया कि आचार्य जी गुरुकुल वापस आवें पर वैसा न होसका।

युनक्ति कालः क्वचिदिष्टवस्तुना
क्वचित्त्वरिष्टेन च नीचवस्तुना,
तथैव संयोज्य वियोजयत्यसौ,
सुखासुखे कालकृते भवेद्भ्रम्यतः।

(शंकरदिग्विजय)

स्वलिखित आत्मकथा से उद्धृत निम्नलिखित भाग वाचकों को मनोरंजक प्रतीत होगा।

१९०६—१९०७

—" मैं कलकत्ते में श्री आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी जी के पास वेदाध्ययन कर रहा था। आचार्य गङ्गादत्त जी ने मेरे नाम एक तार भेजा कि आवश्यक कार्य है चले आओ। मैं वहाँ से

चित्र सं० ९
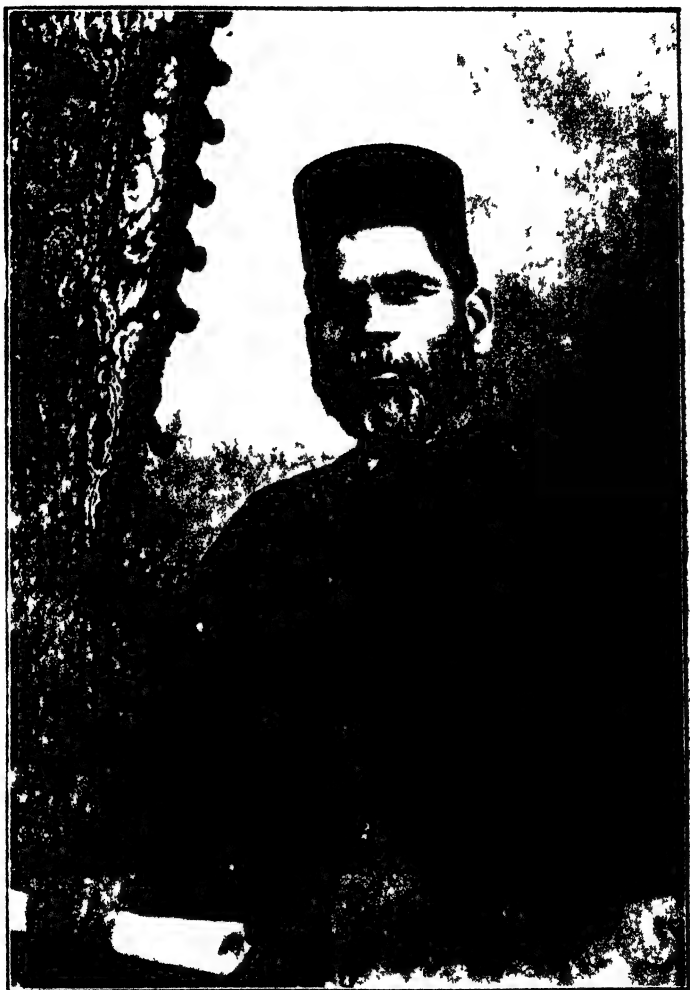
स्व० श्री बाबू ज्योतिःस्वरूप जी रईस देहरादून।

तुरन्त चल पड़ा। यहाँ पहुँचने पर गुरुकुल विषयक बहुत बात-चीत हुई। पं० जी ने मुझे काँगड़ी में ही रहकर निरुक्तादि पढ़ाने को कहा। मैंने निषेध कर दिया क्योंकि कलकत्ते में मेरी और स्कीम बनी थी। मैं कलकत्ते में ही रहना चाहता था। चौथे दिन मैं सद्धर्म प्रचारक में क्या देखता हूँ कि

"पं० नरदेव शास्त्री कलकत्ते से आगये हैं और गुरुकुल की उच्च श्रेणी को निरुक्त पढ़ाते हैं।"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैं तुरन्त म० मुन्शीराम जी के पास पहुँचा और कहा—

मैं—मेरी अनुमति के विना आपने कैसे छापा ?

मुन्शीराम जी (मुस्कराकर)—अपने गुरुजी से पूछो।

मैं आचार्य जी के पास गया, उनसे पूछा तो पता चला कि उन्हीं के कहने से म० मुन्शीराम जी ने छापा है। मैंने कहा आपने अच्छा नहीं किया इस पर वे उल्टे मेरे पर ही क्रोध करने लगे। क्या हुआ छप गया तो आखिर कहीं तो काम करना ही है" इत्यादि।

"श्रीरामदेव जी गुरुकुल के हेडमास्टर थे। जिन रामदेव जी ने एक समय गुरुकुल के विषय में आर्यपत्रिका में लिखते हुए आचार्य गङ्गादत्त जी के प्रशंसा के पुल बाँधे थे, वे ही रामदेव आज आचार्य जी के साथ दौर्मनस्य रखते हैं, यह देख कर तो मेरे आश्चर्य की सीमा ही नहीं रही। बात सारी यह थी कि आचार्य जी के रहते न रामदेव जी का और न अन्य किसी का, और

की तो और साक्षात् म० मुन्शीराम का भी प्रभाव ब्रह्मचारियों पर नहीं जम सकता था। जब रामदेव आये थे तब अङ्गरेजी नवम श्रेणी में पढ़ाई जाती थी, रामदेव चाहते थे कि छटी श्रेणी से ही अङ्गरेजी चले। रामदेव जी सीधे कालेज से निकल कर आये थे, बी० ए० तो थे ही किन्तु सबसे अधिक गुण यह था कि कालेज पार्टी से फूट कर महात्मा पार्टी में आमिले थे। उनके दिमाग़ में कालेज की ही बातें बहुतायत से भरीं थीं। आचार्य गङ्गादत्त जी पुरानी प्रथा के कट्टर उपासक थे। इस लिये दृष्टिभेद के कारण भी प्रबन्ध में मतभेद बढ़ता ही गया। कुछ काल म० मुन्शीराम बीच में पड़ कर स्थिति संभाल लेते रहे। किन्तु जब नये ढङ्ग का टाइमटेबल बना व स्कूल के-से घण्टे बजने लगे तब आचार्य जी ने समझा कि संस्कृतविद्या यहाँ से खिसकने लगी। वे पुराने ढङ्ग से पढ़ाते थे दक्षता से पढ़ाते थे। अभी एक सूत्र का अर्थ समझा भी नहीं पाते थे कि घण्टी बज जाती थी, पाठ बीच में छूट जाता। यह बात उनको बहुत अखरने लगी। धीरे २ अङ्गरेजी ढङ्ग बढ़ता गया। नये ढङ्ग के रहन सहन के साथ नई लालटैनें आईं। कड़ुए तेल के दीपकों को बिदाई मिली। कड़ुए तेल का स्थान मिट्टी के तेल ने लिया। इस परिवर्तन का कारण यह बतलाया गया कि पुराने ढर्रे के दीपकों के प्रकाश में पढ़ने से ब्रह्मचारियों की आंखों पर ज़ोर पड़ता है इत्यादि। इसी प्रकार छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी बातों में उग्र मतभेद रहने लगा। ये सब बातें मेरे गुरुकुल में पहुँचने के पूर्व ही हो रही थीं। मेरे आने पर आचार्य जी का पक्ष प्रबल हुआ क्योंकि यथार्थ बातों में मैंने श्री आचार्य गङ्गादत्त का ही साथ दिया और

पण्डितमण्डली सब हमारे साथ थी। चाहे और औपरिष्टिक प्रकार कितने ही बदलें किन्तु गुरुकुल जैसी प्राचीन पद्धति की संस्था में संस्कृत का ही प्राधान्य रहे, यह मैं भी चाहता था। अङ्गरेजी के लिये सरकारी, गैर सरकारी स्कूल क्या थोड़े थे ?

"आचार्य गङ्गादत्त जी व म० मुन्शीराम जी की क्या २ बातें हुईं कौन जाने। एक दिन रात्रि के दस बजे सेवक आनन्दाश्रम (मेरी कुटिया) में आया और कहने लगा चलिये आचार्य जी बुला रहे हैं। मुझे आश्चर्य हुआ कि रात के दस बजे ऐसा कौनसा कार्य अटका ? कौनसी ऐसी विपत्ति आई ? आचार्य जी गुरुकुल बाटिका में मेरी प्रतीक्षा में खड़े थे। मैं गया, प्रणामोत्तर मैंने पूछा—

मैं—कैसे बुलाया गया हूँ।

आचार्य गङ्गादत्त—मैं हृषीकेश जा रहा हूँ, कल।

मैं—क्यों ?

आचार्य जी—जी उकता गया है, पड़े २ बहुत दिन होगये।

मैं—क्यों ऐसी क्या बात है ?

आचार्य जी—बस इतना ही कहता हूँ कि तुम सावधान होकर रहो और दक्षता से अपना काम करते रहो।

मैं—अच्छी बात है।

इतना कहकर आचार्य जी स्वस्थान को चले गये व मैं अपनी कुटिया में आकर लेट गया।

"दूसरे दिन ऊपर पर्वत में वर्षा पड़ने के कारण गङ्गा जी में जल बढ़ गया था। श्री आचार्य जी को बहुत रोका गया पर वे चले ही गये। घाटवाले ने विशेष नौका का प्रबन्ध किया तब वे पार कनखल जासके। बाबू प्रतापसिंह जी व मैं श्री आचार्य जी को पहुँचाने घाट तक गये थे। फिर मुझे पता चला कि म० मुन्शीराम व आचार्य जी में कोई ऐसी बात अवश्य हुई जिससे आचार्य जी चले गये और फिर नहीं लौटेंगे। इधर उधर खोदने खादने से पता चला कि श्री आचार्य जी ने जब वर्तमान स्थिति के सुधार के प्रश्न पर बहुत बल दिया तब म० मुन्शीराम ने आचार्य जी से कहा कि "आप तीन मास के लिये इधर उधर घूम आइये, तीन मास में लौटेंगे तब पूर्ववत् दशा देखियेगा" "मैं सब स्थिति को काबू में लाकर ठीक कर लूंगा।" रामदेव जी के उद्धत व्यवहार से आचार्य जी तंग आ गये थे। महात्मा मुन्शीराम इतने दबे हुए थे कि वे कुछ नहीं कह सकते थे।

"तीसरे दिन हृषीकेश से एक पुर्जा आया जिसमें आचार्य जी ने मुन्शीरामजी को निम्नलिखित शब्द लिखे थे—

श्रीमन्नमस्ते,

गुरुकुल को मेरी अन्तिम नमस्ते है।"

"महात्मा मुन्शीराम जी ने एक चपरासी मुझे बुलाने भेजा। मैं कार्यालय में पहुँचा तब मुन्शीराम जी उस चिट्ठी को मेरे हाथ में देकर बोले "देखिये यह क्या है" मैंने उस पर्चे को पढ़ा और वापस लौटा दिया।

मुन्शीराम—आपसे कुछ कह गये हैं ?

मैं—कल रात्रि दस बजे के समय मुझे उन्होंने बुलाया था। तब उन्होंने कहा था कि "हृषीकेश जाता हूं"।

मुन्शीराम—देखिये इस तरह कैसे काम चलेगा ?

मैं—आप जानें और वे जानें।

मुन्शीराम—आप उनको लिखिये।

मैं—मैं उनका स्वभाव जानता हूं, मैं नहीं लिखूंगा। बातें तो उन की व आपकी हुई होंगीं, आपको ही लिखना चाहिये।

"आचार्य जी के पत्रवाहक थे श्री श्रीधर जी, आचार्य जी के भतीजे। श्री मुन्शीराम जी जब मुझ से बात कह रहे थे तब यह समझ रहे थे कि मुझे उनकी व आचार्य जी की बातों का पता नहीं है। उनकी बातों को केवल बा० प्रतापसिंह जानते थे। आचार्य जी उनसे सब बातें कह गये थे। बहुत सिर होने पर ही बा० प्रतापसिंह ने मुझे सब बातें बतलाई थीं। गुरुकुल भर में इस बात का किसी और को पता नहीं था। स्वयं रामदेव जी को भी पता नहीं था कि यह क्यों हुआ। जब धीरे धीरे पण्डित मण्डली को इस बात का पता चला तब उनको क्लेश हुआ कि अपना बल रहते हुए भी इस तरह बिना कुछ कहे सुने आचार्यजी क्यों चले गये"।

"जिन रामदेव जी के हाथों में मुन्शीराम जी खेल रहे थे उन्हीं हाथों ने पश्चिम अवस्था में मुन्शीराम जी को भी उसी

प्रकार के क्लेश पहुँचाये, यह एक विचित्र योगायोग की बात है। श्री मुन्शीराम जी ने कृष्ण-पार्टी अथवा प्रकाश-पार्टी को हाथों में लेकर कई प्रतिस्पर्द्धी व प्रतिरोधी दलों को कुचल डाला था। उसी प्रकाश-पार्टी के हाथों महात्मा मुन्शीराम को गुरुकुल से अर्द्धचन्द्र मिलने वाला था, किन्तु प्रारब्ध के बली मुन्शीराम ने संन्यास लेकर इस पार्टी से पिण्ड छुड़ाया, अपना संकुचित कार्य-क्षेत्र बदला, और संसार में वह अपूर्व यश प्राप्त किया जिसके लिये बड़ों बड़ों को भी ईर्ष्या हुई"।

संन्यास लेने के पश्चात् आचार्य गङ्गादत्त शुद्धबोधतीर्थ बन गये थे और म० मुन्शीराम जी बने थे स्वामी श्रद्धानन्द। इस लिये पिछली बातों को भुलाकर दोनों स्वा० अन्त तक बड़े प्रेम से रहे। परस्पर मिलते रहे, सुखदुःखगोष्ठी करते रहे किन्तु एक बात सोलह आने खरी और निश्चित कि स्वा० शुद्ध-बोधतीर्थ व स्वा० श्रद्धानन्द दोनों ही रामदेवजी से घृणा करते रहे।

हाँ पं० विश्वम्भरनाथ भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता गु० कु० कांगड़ी जब जब स्वामी जी के पास आते थे तब घण्टों बातचीत होती थी। पर रामदेव जी का नाम आते ही भ्रूभङ्ग हो ही जाता था, भ्रुकुटी ऊपर चढ़ ही जाती थी। यह श्री रामदेव जी का सौभाग्य कि दौर्भाग्य हम कह नहीं सकते। गुरुकुल काँगड़ी और महाविद्यालय ज्वालापुर का मेल न हो सका, इसमें श्रीरामदेव जी का बड़ा हाथ है। वैसे श्रीरामदेव जी ने मुन्शीराम जी के पश्चात् गुरुकुल-कार्य बड़ी संलग्नता से किया, चलाया इस बात की हम प्रशंसा ही करेंगे। मेरी समझ में श्रीरामदेव जी का गु० कु०

कांगड़ी में आना अच्छा ही हुआ क्यों कि यदि इस प्रकार की घटना न होती तो स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी कांगड़ी में ही पड़े रहते व निःशुल्क प्राचीन शिक्षा द्वारा सैकड़ों गरीब छात्रों का अनन्त उपकार कदापि न कर सकते, ईश्वर की कृपा थी कि वे वहां से चले आये।

वाणी न तेषां गणने गुणानाम्,
सामर्थ्ययुक्ता भवतीति चिन्ता ।
कः शक्नुयादम्बरमध्यगानाम्,
संख्यां विधातुं स्फुटतारकाणाम् ॥

रामदत्तशास्त्री
(विद्याभास्करः)

चित्र सं० १०

श्री नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ (स्वामी जी के एकनिष्ठ शिष्य)

हृषीकेश ।

हृषीकेश मोनी की रेती में स्वा० ब्रह्मानन्द भारती स्वा० जी के पुराने परिचित थे। संभवतः परिचय काशी का था। उन्होंने अपने मन्दिर के साथ खाली पड़ी हुई ज़मीन में दो सुन्दर कुटिया बनवा दी थीं। उसी में आचार्य जी रहने लगे। इनके साथ चन्द्रगुप्त (बलोनवासी चन्द्रगुप्त शास्त्री) सोमगुप्त (कविराज सोमगुप्त वैद्यभूषण जो लोलेन के ही हैं और इस समय चंदौसी के प्रसिद्ध वैद्य हैं) श्रीधर जी (स्वा० शुद्धबोध जी के भतीजे) श्रो ऋषिदेव (बा० प्रतापसिंह जी के ज्येष्ठ पुत्र अब ऋषिदेव शास्त्री हैं और नासिक में व्यापार करते हैं। ये चार छात्र रहने लगे। इनके अतिरिक्त दिन भर साधु लोग पढ़ने आते थे। इधर आचार्य जी आ बसे और उधर बाबू प्रतापसिंह जी अपना सब कुनबा लेकर, श्री पं० भीमसेन जी के साथ भोगपुर जा डटे। पं० भीमसेन जी बाबू जी की पुत्री सत्यवती, शान्ति, विद्या को पढ़ाते रहे। दसवें पंधरवें दिन बाबू जी व पं० जी आचार्य जी से मिलने हृषीकेश आते रहते थे और बाबू जी भोगपुर व हृषीकेश दोनों स्थानों का व्ययभार उठाते थे। भोगपुर में ला० मुसद्दीलाल नामक एक भक्तजन रहते थे उनके भी लड़के कुन्दनलाल, राधेलाल आदि पं० भीमसेन जी से पढ़ते रहे। इधर हृषीकेश में चहल पहल थी तो उधर भोगपुर में भी खूब धूम रही। हृषीकेश में स्वाध्याय, अध्ययनाध्यापन, जप तप के अतिरिक्त काम ही क्या था। वहां रहते हुए स्वा० जी ने जटाएं बढ़ा ली थीं और साक्षात् 'ऋषि' प्रतीत होते थे। उन दिनों हृषीकेश निवासयोग्य स्थान था।

आजकल का-सा उपनगर न बना था। मानो की रेती तो निरा जङ्गल स्थान था, बहुत एकान्त था। एक वर्ष तक यहां निवास रहा। मैं भी फर्रुखाबाद से कभी २ मिलने चला आता था। मैं फर्रुखाबाद में गु० कु० वृन्दावन का आचार्य था। श्री बाबू प्रतापसिंह जी व पं० भीमसेन के आग्रह से आचार्य जी भोगपुर ही चले गये और साथ शिष्यमण्डल भी। अब तो वहां बड़ी रौनक़ होगयी।

भोगपुर।

देहरादून के ज़िले में भोगपुर जैसा सुन्दर स्थान और कोई नहीं। पहाड़ी की तलाई में और जङ्गल से ऊपर पहाड़ी नहर के किनारे भोगपुर अच्छे ढंग से बसा हुआ है। न यहां गरमी अधिक पड़ती है और न सरदी, वर्षा भी मसूरी से कम नहीं होती। मलेरिया का यहां नाम नहीं। गांव छोटे २ सुन्दर, दृश्य रमणीय। हृषीकेश से जाते हुए मार्ग में ९ मील तक घना जङ्गल पड़ता है वह भी देखने योग्य है। टिहरी की सरहद यहां से केवल तीन मील पर है। पास ही थाना है, पोस्ट आफ़िस है। थानों नामक सुन्दर स्थान यहीं से तीन मील पड़ता है। डोईवाला स्टेशन से भोगपुर आठ मील है। कच्ची सड़क से देहरे से सोलह मील पड़ता है। यहां झरने, ओगल, जलप्रपात, वनश्री, कुल्या आदि की बहार रहती है, इस तरह ये कांगड़ी के पाण्डव भोगपुर में रहने लगे। दूर दूर से इष्ट मित्रजन आकर मिल जाते थे। बड़ा ही सुन्दर जीवन था। १९०७ मास याद नहीं, एक दिन पं० अनन्तराम मैनेजर सद्धर्मप्रचारक प्रेस म०

मुन्शीराम की एक चिट्ठी लेआये। उसमें श्री आचार्य जी को मायापुर की गुरुकुल वाटिका में मिलने के लिये बुलाया था। श्री आचार्य जी जाना ही नहीं चाहते थे किन्तु हम लोगों के आग्रह करने से तैयार होगये। आचार्य जी के साथ बाबू प्रताप-सिंह जी भी गये। अन्य लोग वहीं भोगपुर में रहे।

मायापुर की वाटिका।

लगभग डेढ़ वर्ष के पश्चात् दोनों मित्र मायापुर की वाटिका में बातचीत कर रहे थे। बातचीत कई बार कई घण्टे तक हुई और हमको यह खबर मिली कि दोनों में समझौता होगया किन्तु तीसरे ही दिन फिर खबर आई कि बात बनी नहीं। जब बाबू जी व आचार्य जी कई दिन तक भोगपुर वापस नहीं आये तब चिन्ता हुई। एक विशेष दूत हरद्वार भेजा गया। वह पता लाया कि बाबू प्रतापसिंह जी आचार्य जी को लेकर महाविद्यालय चले गये। मैं यह बतलाना भूल गया कि इस घटना से दो मास पूर्व पं० दिलीपदत्त जी अपने गुरु श्री पं० भीमसेन जी को महा-विद्यालय लेगये थे। अब महाविद्यालय में आचार्य जी, बा० प्रतापसिंह जी, पं० भीमसेन जी, पं० दिलीपदत्त जी, इतने लोग एकत्रित होगये। बाबू जी का परिवार और आचार्य जी का शिष्य-मण्डल भी महाविद्यालय चला गया और भोगपुर खाली होगया।

मायापुर में क्या हुआ था?

मायापुर में जब दोनों मित्र मिले तब म० मुन्शीराम जी ने आचार्य जी से गुरुकुल चलने व पूर्ववत् कार्य करने के लिए कहा।

आचार्य जी ने दो-एक शर्तें डालीं जिनको म० मुन्शीराम जी ने स्वीकार कर लिया। फिर यह निश्चय हुआ कि बड़ी श्रेणी के लड़के (ब्रह्मचारी) श्री आचार्य जी को लेने आवेंगे और हृषीकेश घूमघाम कर आचार्य जी व ब्रह्मचारिगण कांगड़ी पहुंचेंगे। इतने निश्चय के पश्चात् मुन्शीराम जी कांगड़ी लौट गये व आचार्य जी व बाबू जी मायापुर में ही रहे। बहुत देर प्रतीक्षा करने पर भी ब्रह्मचारी काँगड़ी से नहीं आये किन्तु म० मुन्शीराम जी का एक दूत पत्र लेकर आया जिसमें लिखा था कि "क्या कहें बड़े दुःख की बात है कि ब्रह्मचारी आना नहीं चाहते ईश्वरेच्छा" इस पत्र को पढ़कर आचार्य जी बहुत ज़ोर से खिलखिला पड़े और बाबू जी से बोले "कहो देखा, तुम्हारे बल देने पर ही मैंने कांगड़ी लौटना स्वीकार कर लिया था। मैं तो भागपुर से यहां भी नहीं आना चाहता था, तुम्हीं लोगों के हठ के कारण चला आया था।"

बाबू प्रतापसिंह जी इस बात पर 'प्रतिज्ञाभङ्ग' पर महात्मा जी से बहुत बिगड़े, पीछे पता चला कि आचार्य जी के आने की खबर सुन कर रामदेव-कैम्प में बहुत खलबली मची और उन्हीं के कारण म० मुन्शीराम ने वैसा पत्र लिखा। ब्रह्मचारियों के न आने का बहाना मात्र था। वे तो बड़े प्रसन्न थे।

बाबू प्रतापसिंह जी एक तांगा लाये उसमें बैठकर श्री आचार्य जी व बाबू जी महाविद्यालय में मिलने पं० भीमसेन जी के पास आये सो रह ही गये। इसके पश्चात् लगभग पंधरह बीस दिन पश्चात् अमृतसर के प्रसिद्ध आर्य रईस चौ० जयकृष्ण जी भी महाविद्यालय में पधारे। आप आचार्य जी के परमभक्त मित्र थे।

इन्होंने आकर आचार्य जी को और भी पक्का कर दिया। महाविद्यालय के भूमिदाता स्व० बा० सीताराम ने भी ज़ोर दिया। तब आचार्य जी ने यह शर्त डाली कि बाकायदा महाविद्यालयसभा बनाओ, उसकी रजिस्टरी कराओ तब रह सकूंगा। बस इसी बात पर म० वि० सभा के बाकायदा नियम बने। सन् १८६१ के एक्ट के अनुसार इसकी रजिस्टरी भी होगयी।

महाविद्यालय में

महाविद्यालय के प्रथम मंत्री थे श्री तुलसीराम बापू चित्रकार (नागपुर निवासी, अब देहरादून में हैं।) उसके पश्चात् कुछ काल पं० परमानंद रुड़कीवासी मंत्री रहे। फिर पं० भीमसेन जी मंत्री हुए। महाविद्यालय का इतिहास एक लम्बा इतिहास है। जब आचार्य जी हृषीकेश में थे, और पं० भीमसेन जी भोगपुर में, तभी म० मुन्शीराम व स्व० दर्शनानंद जी का घोर युद्ध छिड़ चुका था। और जब पं० भीमसेन जी म० वि० आये तब स्वा० जी सब काम उनको सौंपकर पंजाब चले गये थे। उन झगड़ों का विवरण देने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। स्वा० दर्शनानंद जी के पंजाब चले जाने से युद्धस्थली पंजाब बन गयी। महाविद्यालय में पण्डितमण्डली इस क्रम से आई—

१ श्री पं० शालग्रामशास्त्री साहित्याचार्य, आयुर्वेदाचार्य। (आप पहले म० वि० में रहे, फिर कुछ काल कांगड़ी में, फिर ऋषिकुल में, फिर कविराज होकर लखनऊ रहने लगे)

२ पण्डित दिलीपदत्त उपाध्याय (किशनपुर पो० सिकन्दराबाद जिला बुलन्दशहर निवासी)।

३ श्री पण्डित भीमसेनशर्मा (आगरा निवासी)।

४ श्री आचार्य पं० गंगादत्तजी शास्त्री।

५ १९०८ फरवरी ता० २१ को जब आचार्य जी रुग्ण होकर कांगड़ी गये तब मैंने चार्ज लिया।

६ पण्डित पद्मसिंहशर्मा साहित्याचार्य अजमेर में परोपकारी के संपादक थे, मार्च में उत्सव के अवसर पर आये और भारतोदय-संपादक बने।

रजिस्टर्ड सभा के प्रथम प्रधान थे स्व० चौ० महाराजसिंहजी रईस मानकपुर फतेरड़ा। स्व० चौ० अमीरसिंह जी रईस गढ़-मीरपुर, स्व० लाला केवलकृष्ण जी इमलीखेड़ा (रुड़की) स्व० डाँ० हरद्वारीसिंह (रुड़की) श्री पं० रविशङ्कर जी शर्मा आदि इस महाविद्यालय के स्तम्भ थे। चौ० जयकृष्ण जी तो तन मन धन से पूरी पूरी सहायता करते रहते थे। स्व० ला० मुसद्दीलाल (कोषाध्यक्ष म० वि०) के नाम को हम कदापि नहीं भूल सकते जिनकी सामयिक सहायता से महाविद्यालय के शकट चलाने में बड़ी सहायता मिलती रहती थी। म० वि० के पहले मन्त्री थे श्री तुलसीराम बापू और उस समय श्री कर्मचन्द्र विद्यार्थी भी काम करते थे। इन्होंने कई वर्ष महाविद्यालय का उत्साह पूर्वक कार्य किया। लेखक अपनी आत्मकथा से निम्नलिखित भाग उद्धृत करता है जिस से महाविद्यालय की परिस्थिति पर पूर्ण प्रकाश पड़ेगा—

"गुरुकुल फर्रुखाबाद से चले आने के पश्चात् श्रीगुरु जी (आचार्य श्री सत्यव्रत सामश्रमी जी) का पत्र आया जिसमें

मुझे कलकत्ते बुलाया गया था। श्रीगुरु जी चाहते थे कि कलकत्ता विश्वविद्यालय में वेदव्याख्याता का स्थान मुझे दिलाया जावे। श्रीगुरु जी अपने स्थान में मुझे करना चाहते थे। श्री आशुतोष मुकर्जी (वाइस चैन्सलर) से उन्होंने मेरे विषय में बातचीत करली थी, किन्तु मुझे नौकरी से घृणा थी इसलिये मैं नहीं गया और हमारे गुरु जी अत्यन्त रुष्ट हुए। उनकी बहुत इच्छा थी कि मैं आर्यसमाज के मण्डल से निकल कर कलकत्ते में रहूं और अन्य क्षेत्र में काम करूं। खेद है मैं इनकी इच्छा को पूर्ण न कर सका। फर्रुखाबाद से चल कर सीधे शिमले में पहुँचा और वहाँ कई मास तक रहा। शिमले में देश के सभी विशेष विशेष पुरुषों से परिचय हुआ। स्व० श्री पं० बलदेवसहाय व्यास (भूतपूर्व मन्त्री म० वि० सभा ज्वालापुर) का परिचय वहीं हुआ था।"

"भारतवर्ष के शासन की बागडोर शिमला शैलशिखर से हिलती है यह मैं सुना करता था। तब क्या अब भी बागडोर शिमले से ही हिलती है। यद्यपि भारत सरकार का स्थायी केन्द्र देहली है तथापि शिमले के शीतल वातावरण में गौराङ्ग प्रभु अधिक प्रसन्न रहते हैं और प्रत्येक महत्त्वपूर्ण बात की रूप-रेखा वहीं खेंची जाती है यह बात तो दिन में सूर्यप्रकाश की भान्ति स्पष्ट है।"

"शिमले में रहकर मैंने भविष्य के विषय में विचार किया। मन में आया चलो कलकत्ते वहीं रहेंगे। पर कभी कभी मन में यह आता रहा कि जिन अदृश्य हाथों ने तुझे पूने से लाहौर में, लाहौर से संयुक्तप्रान्त में, कभी हरद्वार, कभी ग्वालियर, कभी

काशी व कलकत्ते में धकेला, कभी काँगड़ी फर्रुखाबाद दिखाया, वही अदृश्य हाथ जहां मेरी आवश्यकता होगी वहीं धकेलेगा।

ऐसा विचार इस लिये हुआ अथवा आया कि मैं पक्का प्रारब्धवादी बन चुका था। हमारे साथ हमारे मित्र मुनिदेव (गढ़ीचकेरी-कासगंज) थे। वे भी वार वार कहते रहे कि सोचने से क्या होता है, अब तक जो बातें सोची थीं वह कौन सी हो गई? मैंने कहा बात तो ठीक कहते हो। जब जब हम निराश्रित हुए तब तब उस परमात्मा ने ही अपने अदृश्य हाथों से सहायता पहुँचाई व रक्षा की। उस भगवान् की अनुपम लीला देखिये बाल्यावस्था में घर छुड़ाकर धीरे धीरे समस्त भारतवर्ष को ही मेरा बड़ा घर बना दिया। मेरा मोह जाता रहा, समस्त भारतवर्ष ही मेरा देश है। समस्त भारतवर्ष ही मेरा कुटुम्ब है। पिता जी मुझे इंजीनियर बनाना चाहते थे, जब विघ्न हुआ तब मैंने डाक्टर बनने की ठानी पर भगवान् चाहते थे कि मैं सच्चे अर्थों में देशभिक्षु बनूं। जब स्कूल छुटा और कालेज के अध्ययन में बाधा पड़ी तब मैं बहुत दुःखी था कि क्या होगा? कैसे होगा? अब समझ में आरहा है कि ऐसा होना था, यही होना था। जब से मैंने शरीर को प्रारब्ध के सुपुर्द किया है तब से मैं सुखी रहने लगा, मस्त बन गया। तबसे किसी घटना पर आश्चर्य नहीं होता, संयोग वियोग में किसी प्रकार का विस्मय नहीं होता, किसी दुर्घटना अथवा क्लेश के लिए मैं अन्यों पर दोषारोपण नहीं करता। मैं भगवान् से प्रार्थना कर रहा हूं कि वह मेरे शेष जीवन को अर्थदरिद्रता में ही क्यों न हो सरलता से व्यतीत करने की शक्ति देवे, क्योंकि—

चित्र सं० ११

पं० दिलीपदत्त जी उपाध्याय प्रथम मुख्याध्यापक
महाविद्यालय ज्वालापुर।

"जीवत्यर्थदरिद्रोपि
धीदरिद्रो न जीवति"

भगवान् से मेरी दो ही प्रार्थनाएँ रहती हैं।
एक—

"धर्मे मे धीयतां बुद्धिः
मनो मे महदस्तु च"

मेरी बुद्धि धर्म में लगी रहे व मेरा मन उदार हो।
दूसरी प्रार्थना यह है कि—

"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"

मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

मेरे जीवन का यही **बोधसार** है।"

"हम लिख रहे थे शिमला शैलकी बात, और लिखने के प्रवाह में जा पहुँचे किधर। अभी तो तब से अब तक की बात शेष है। और एक बात लिखकर दूसरी ओर चलेंगे। मेरा यह अनुभव है कि भगवान् देना चाहे तो छप्पर फाड़कर भी देदेता है। जबसे लाहोर छोड़ा बराबर इसी बात का अनुभव मिलता गया। उसके अदृश्य हाथों की लीला को योगिजन भले ही जान सकें तो जान सकें, सामान्य मनुष्य क्या जाने—"

महाविद्यालय में

शिमले की सैर कर ही रहे थे कि ज्वालापुर से पत्र आया

कि आचार्य जी सख्त बीमार हैं। बाबू प्रतापसिंह जी का एक तार भी पहुँचा, हम शिमले से ज्वालापुर आये—

वस्तुत: आचार्य जी की दशा शोचनीय थी। मैंने महात्मा मुन्शीराम जी को लिखा—"आपके मित्र श्री आचार्य जी इतने रुग्ण हैं तो भी आपने खबर नहीं ली—" इधर देहरादून के डाक्टर श्रीराम जी को बुलवाकर आचार्य जी की परीक्षा कराई गई। बाबू प्रतापसिंह जी, चौ० अमीरसिंह जी, चौ० जयकृष्ण जी, कर्मचन्द विद्यार्थी आदि ने आचार्य जी की प्रत्येक बात का ध्यान रक्खा। श्री पं० रविशङ्कर शर्मा, श्री मास्टर हरद्वारीसिंह जी आदि सज्जन भी पधारे थे। श्री आचार्य जी को कुछ आराम होने लगा। मैं कार्यवश मुरादाबाद गया। वहाँ से फिर एक पत्र मुन्शीराम जी के पास भेजा। ज्वालापुर से मेरे पास एक और पत्र आया जिसमें रोग के बढ़ने का ज़िक्र था। बाबू प्रताप-सिंह जी का अर्जण्ट तार भी आया। मैं फिर मुरादाबाद से ज्वालापुर आया। आचार्य जी की दशा देखी। मनमें विचार आया कि इनको काँगड़ी क्यों न भेजदिया जाय जहां सब प्रकार का सुभीता रहेगा। यदि इनका शरीर छूट गया तो, और इनका शरीर स्वस्थ हुआ तो, दोनों दशाओं में ठीक ही है।

हमारे मित्र ठाकुर मुलायमसिंह (मुनिदेव) हमारे साथ थे, हमसे सहमत थे। उनको हमने रात्रि में ही कांगड़ी भेजा, दूसरे दिन प्रात:काल म० मुन्शीराम ६०-७० ब्रह्मचारियों के साथ आगये। साथ पालकी भी लिवाते लाये। चिरकाल में बिछड़े हुए दोनों मित्र मिले यह देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। म० मुन्शीराम ने श्री आचार्य जी से कांगड़ी चलने की प्रार्थना की किन्तु आचार्य

जी हिचकिचा रहे थे और मैं आचार्य जी के जाने के पक्षमें था। चौ० जयकृष्ण जी, चौ० अमीरसिंह जी आदि इस बात को उचित नहीं समझते थे। आचार्य जी इस लिये हिचकिचा रहे थे कि उन्होंने महाविद्यालय के मेम्बरों से कह रक्खा था कि वे महाविद्यालय में ही रहेंगे और इसको समुन्नत बनाने की चेष्टा करेंगे। चौ० अमीरसिंह यही कहते रहे कि आचार्य जी को किसी दशा में भी कांगड़ी नहीं भेजना चाहिये, पर हम कब सुनने वाले थे। हम यह अच्छी तरह जानते थे कि यदि आचार्य जी यहीं रहे तो इनके साथ हम लोगों को भी महाविद्यालय में मरना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त हमको इस बात पर बहुत दुःख था कि यह स्थान आचार्य जी महाराज के अनुरूप नहीं है इसी लिए दोनों मित्रों के इस संमेलन के अपूर्व योग को मैं हाथ से नही जाने देना चाहता था। म० मुन्शीराम ने मुझसे आकर कहा 'आचार्य जी तो नहीं मान रहे हैं, जाओ, समझाओ।' मैं कमरे में आया आचार्य जी से बातचीत की—

मैं—क्या बात है, आप क्यों नहीं जाते ?

आचार्य जी—कैसे जाऊँ, मैं तो मेम्बरों से प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि महाविद्यालय से कहीं नहीं जाऊँगा। इसी प्रतिज्ञा के बल पर महाविद्यालय सभा की रजिस्टरी करवाई गई है।

मैं—इस समय आप मृत्युमुख में हैं। प्राण शेष रहेंगे तो आप फिर यहां लौट सकते हैं। आप काँगड़ी जाइये। आपके स्वस्थ होकर लौटने तक मैं यहां बैठा हूं।

आचार्य जी—अच्छी बात है मुन्शीराम जी से कहदो।

जब से आचार्य जी म० वि० में बैठ थे तब से इन्होंने कई वार बुलाकर मुझ से महाविद्यालय का कार्य चलाने के विषय में कई वार कहा था। मैंने इनकी इस बात पर कभी ध्यान नहीं दिया। कांगड़ी छोड़ने के पश्चात् मैंने विश्वास कर लिया था कि भविष्य में आर्यसमाज के संस्थावाद में नहीं पड़ूंगा। जब मैंने आचार्य जी को यह आश्वासन दिया कि उनके लौट आने तक म० वि० में रहूंगा, तब उनको अत्यन्त प्रसन्नता हुई, किन्तु यह गुरुदक्षिणा मुझे अत्यन्त मंहगी पड़ी। मैंने बाहर आकर महात्मा मुन्शीराम जी से कहा "ले जाइये।" महात्मा भी परम प्रसन्न हुए और बड़े आदरभाव व सावधानी से आचार्य जी को पालकी में लेटाया और ब्रह्मचारियों से कहा "सावधान होकर धीरे २ ले जाओ"।

"ब्रह्मचारिगण आचार्य जी को लेकर चले गये और महात्मा जी यहीं रह गये और बा० प्रतापसिंह व मुझ से यही कहते रहे कि 'चलो, हमारे साथ चलो' हमने मनाकर दिया, अनेक बहाने बनाये, यह भी कहा कि हम कई दिनों से जाग रहे हैं, अब स्वस्थ सोयेंगे। मुन्शीराम जी ने कहा "आज तो चलो, कल लौट आना" तब हम उनके साथ हो लिये। मार्ग की बातों में पुराने किस्से कहानियों की पुनरावृत्ति हो गयी। जो बातें स्वप्नवत् प्रतीत हो रही थीं उनकी पुनरावृत्ति हो गयी। सारे पंचपुरी में इस प्रकार मुन्शीराम जी के आने व श्री आचार्य जी को ले जाने की बात बिजली की तरह फैल गई। लोग बहुत प्रसन्न थे। हमने यह सब वृत्तान्त समाचार पत्रों में भी भेज दिया था। लोग चकित थे कि यह असम्भव बात सम्भव कैसे

हुई। आर्यजगत् में प्रसन्नता की लहर फैल गयी। म० मुन्शीराम, बाबू प्रतापसिंह, ठा० मुलायमसिंह हम सब कांगड़ी पहुंचे। यह घटना है ता० ३ फरवरी सन् १९०८ की। वहां आचार्य जी की सब व्यवस्था देखकर, सब से मिल कर महाविद्यालय लौट आये। हम समझ रहे थे कि इसप्रकार चिरकाल से वियुक्त दोनों मित्रों को मिलाने में विधि का कोई विशेष हेतु है। उस समय में महाविद्यालय में ग्यारह विद्यार्थी थे। तीन बीघे ज़मीन थी। बीच का शान्तिनिकेतन का बङ्गला व जिसको देवाश्रम कहा जाता है, ये भी थे। इसी में ब्रह्मचारी रहते थे। श्री बाबू प्रतापसिंह, श्री पं० भीमसेन शर्मा, श्री चिमनलाल वैश्य तिलहारनिवासी, इन तीनों का परिवार यहीं रहता था। चौ० जयकृष्ण जी गृहस्थों के मकानों की लाइन में अमृतसर वालों की एक कुटिया थी, उसमें रहते थे। उस समय ब्रह्मचारियों में श्री विश्वनाथ शास्त्री (वर्तमान मुख्याधिष्ठाता) श्री हरिशंकर शास्त्री (वर्तमान महोपदेशक) श्री चन्द्रदत्त शास्त्री काव्यतीर्थ (अध्यापक गु० कु० कुरुक्षेत्र) श्री जयदेव गुप्त नजीबाबादी (वैद्यभूषण संगरिया मण्डी बीकानेर) इत्यादि थे। शेष का नाम स्मरण करने पर भी याद नहीं आ रहा है। ता० ८ फरवरी १९०८ सद्धर्म-प्रचारक में महाविद्यालय की स्थिति के विषय में मैंने एक लेख छपवाया। स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ने किस प्रकार म० वि० की स्थापना की थी व अबतक क्या विघ्न-बाधायें आ पड़ीं और भविष्य में श्री पं० भीमसेन जी की निरीक्षकता व मुख्याध्यापकत्व में किस प्रकार सुन्दर कार्य की संभावना है इत्यादि बातों का उल्लेख किया गया था। यह भी लिख दिया गया था कि स्वामी दर्शनानन्द जी के हाथ में काम नहीं रहा, रजिस्टर्ड सभा के

हाथों में सौंप कर स्वामी जी पञ्जाब चले गये हैं इत्यादि। उस लेख के नीचे स्थानापन्न कार्यकर्त्ता की हैसियत से मैंने हस्ताक्षर किये थे। महात्मा मुन्शीराम जी को भी उनकी सद्भावना के लिये धन्यवाद दिया गया था। मार्च तक (महाविद्यालय के महोत्सव तक) मेरा यहां रहना अपरिहार्य हो गया। उन दिनों महाविद्यालय व गु० कु० दोनों के जलसे एक साथ होली की छुट्टियों में हुआ करते थे। मैंने सोचा कि महोत्सव के अवसर पर महाविद्यालयसभा स्वयं किसी व्यक्ति को मुख्याधिष्ठाता चुन लेगी और मैं स्वतन्त्रता-पूर्वक कहीं चला जाऊंगा।

"बीच में और एक घटना हुई। श्री म० मुन्शीराम व पूज्य पिता (श्री रावसाहब पं० श्रीनिवासराव) का सदैव से पत्र व्यवहार रहता था। पिता जी ने मुझे लिखा था कि तुम्हे मुन्शीराम जी जैसे सर्वश्रेष्ठ आर्यसमाज के नेता के पास रहना चाहिए। वे जिस जिस बात को कहें मान लेनी चाहिये। एक तार भी आया जिसमें दो शब्द थे "Join Kangri" कांगड़ी में काम करो। अचानक इसप्रकार के पत्र व तार आने से मैं समझ गया कि म० मुन्शीराम जी व पिता जी का कोई विशेष पत्र-व्यवहार हो रहा है। महात्मा मुन्शीराम जी ने मुझे बुलाया और कहा, कहां इधर उधर जाते फिरोगे, कांगड़ी के लाइफ मेंबर बनकर यहीं रहो। मैंने लाइफ मेंबरी के नियम पूछे। नियमों को पढ़कर मैंने दो चार दिन का अवकाश मांगा और कहा कि सोच विचार कर उत्तर दूंगा। महाविद्यालय लौट कर कई दिन तक सोचता रहा। इसी अवसर पर कलकत्ते से गुरु जी का भी पत्र आया जिसका आशय यह था कि आर्यसमाज जैसे संकुचित कार्यक्षेत्र

को छोड़कर कलकत्ते चले आने से भविष्य में बहुत कल्याण होगा, तुम्हारे लिये हमने स्थान की आयोजना कर रक्खी है इत्यादि। आप ही की कृपा से मैं ७-८ वर्ष तक कलकत्ता-संस्कृत-कालेज की तीर्थ, मध्यमा, प्रथमा परीक्षा का परीक्षक रहा। जब मैं कई दिन तक कांगड़ी नहीं गया और न कोई उत्तर दिया तब म० मुन्शीराम का नौकर चिन्ता एक पत्र लेकर मेरे पास आया जिसमें मुन्शीराम जी ने मेरे निश्चय के विषय में पूछा। मैंने उसी समय उत्तर लिख दिया। उसके शब्द मुझे अभी तक याद हैं।

श्रीमान प्रधान* जी सादर नमस्ते !

मैंने पूर्ण विचार किया किन्तु वहाँ आने की बात मेरी समझ में नहीं आरही है। नौकरी से मुझे अत्यन्त घृणा है। पिता जी भी मुझे काँगड़ी जाने को लिख रहे हैं किन्तु विवश हूं। अंतरात्मा नही मान रहा है। मैं महाविद्यालय के उत्सव तक यहीं हूं। क्षमा

नरदेवशास्त्री।

पिता जी को लिख दिया कि मैं काँगड़ी नहीं जासकता। गुरुजी को लिखा कि मार्च के पश्चात् उधर के विषय में सोचूंगा। बस यह बात यहीं समाप्त हुई। पिता जी को मैंने कांगड़ी के पहले वृत्तान्त लिख भेजे और लिख दिया कि जब एक बार वहाँ से चले आए अब जाना ठीक नहीं। सच पूछो तो मुझे महात्मा मुन्शीराम जी के पास ही रहना चाहिये था। किन्तु आचार्य जी का साथ छोड़ना कृतघ्नता की बात समझी जाती। कांगड़ी में जो लोग आचार्य जी से मिलने जाते थे वे यही आकर कहते

*उस समय हम महात्मा जी को प्रधान जी ही कहते थे।

रहते थे कि आचार्य जी महाविद्यालय अवश्य आवेंगे, वे वहाँ प्रसन्न नहीं हैं। यह भी पता चल गया था कि रामदेव जी की कही हुई कई बातें आचार्य जी के कानों तक पहुँच चुकी हैं इस लिये वे अप्रसन्न हैं। इस प्रकार आचार्य जी और रामदेव जी का गोत्र न मिल सका। उस समय मुन्शीराम जी की यह स्थिति थी कि रामदेव जी के विना वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। श्री आचार्य गङ्गादत्त जी यहां से जो गये बराबर हस्पताल में ही रहे और महाविद्यालय के मेम्बर लोग जाकर गुरुकुल काँगड़ी व महाविद्यालय उत्सव के दिनों में ही उनको ले आये। महात्मा मुन्शीराम आचार्य जी का महाविद्यालय आना नहीं चाहते थे पर भगवती भवितव्यता की बात को वे भी कैसे टालते।

फिर महाविद्यालय में

महाविद्यालय के महोत्सव में खूब जमघट रहा। मास्टर आत्माराम जी, पं० गणपति शर्मा, पं० अखिलानन्द जी, पं० जगन्नाथ निरुक्तरत्न, पं० सीताराम जी शास्त्री कविरत्न आदि समाज के जितने भी प्रमुख पण्डित व्याख्याता थे आये। जो भी कांगड़ी गया वह यहाँ अवश्य आया। इस उत्सव की सफलता का श्रेय अधिकतर चौ० जयकृष्ण जी को देना चाहिये। आर्य-जगत् में एक तहलका-सा था। लुक्सर स्टेशन पर तीस सहस्र विज्ञापन बांटे गये थे। दत्त के मन्दिर पर उधर से यात्रियों को लाने के लिये बैलगाड़ियों का प्रबन्ध किया गया था। गणपति शर्मा व मास्टर आत्माराम जी के व्याख्यानों ने आर्य-जनता को हिला दिया। जब आचार्य जी कांगड़ी से लौट आये उस दिन तो महाविद्यालय में अपूर्व उत्साह रहा। पं० अखिलानन्द

चित्र सं० १८

श्री पण्डा रामचन्द्र जी बेलोन (स्वामी शुद्धबोधतीर्थ के बालसखा, अवस्था ७१ वर्ष)।

ने टोपी उतार २ कर खूब धन मांगा। पांच सहस्र रु० (नक़द और प्रतिज्ञारूप में) प्राप्त हुआ। कई नये ब्रह्मचारी प्रविष्ट हुये। उनमें पं० वासुदेव शर्मा भजनोपदेशक (ऊमरी निवासी) के भतीजे पं० सत्यव्रत शास्त्री अध्यापक महाविद्यालय भी थे। ये गये थे वहां कांगड़ी प्रविष्ट होने, पर वहां प्रवेश नहीं हुआ। फर्रुखाबाद गुरुकुल के महोत्सव के पश्चात् यह पहला ही इतना बड़ा समारोह देखने को मिला व यह कार्य हमारे हाथों से सम्पन्न हुआ, इस बात की बड़ी प्रसन्नता रही। पण्डित पद्मसिंह शर्मा भी उत्सव से पूर्व आगये थे, उनके कारण भी विनोद, आमोद-प्रमोद की प्रचुर मात्रा रही।

मैंने पद्म सिंह जी को म० वि० के महोत्सव का निमन्त्रण भेजा था साथ ही लिख दिया था कि "अतर्कित गति से यहां फंस गया हूं। महोत्सव पर चला जाऊंगा'। पद्मसिंह शर्मा ने लिखा कि मैं आरहा हूँ, वहीं विचार होगा पर स्मरण रखिये—

भयाद्रणादुपरतं, मंस्यन्ते त्वां महारथाः।
येषां च त्वं बहुमतो, भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥
अवाच्यवादांश्च बहून्, वदिष्यन्ति तवाहिताः।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम्॥

मैंने उत्तर दिया कि दूर से बैठे २ ही बातें बना रहे हो, आओ देखो तो पता चले किस मुसीबत का सामना है। शर्मा जी लाहोर आर्यविद्यार्थी-आश्रम में पढ़ते थे, तभी का हमारा इनका परिचय था। दो वर्ष एक साथ रहे। १८९६ में शर्मा जी

लाहोर से चले गये फिर १९०१ में विजनौर के उत्सव पर मिले थे। जब ये काँगड़ी में थे। (मेरे वहाँ जाने के पूर्व) तब हम दोनों में पत्र व्यवहार रहता था। पत्र व्यवहार प्रायः संस्कृत में होता था। सामाजिक क्षेत्र में यत्र तत्र मिलते ही रहते थे। जब महाविद्यालय के महोत्सव पर भेंट हुई तब से आमरण घनिष्ठ सम्बन्ध रहा।

"इस उपर्युक्त महोत्सव की समाप्ति पर महाविद्यालय की महासभा हुई। उसमें सबने सर्वसम्मति से लेखक को ही मुख्याधिष्ठाता चुना। श्री आचार्य जी, पं० पद्मसिंह शर्मा, चौ० जयकृष्ण जी के अत्याग्रह के कारण सत्याग्रह (म० वि० से चलेजाने का) फेल हुआ। पं० पद्मसिंह शर्मा भारतोदय के सम्पादक बने। श्री पं० भीमसेन शर्मा मुख्याध्यापक बनाये गये। आचार्य जी, जो कहीं भी जाँय आचार्य ही रहते हैं, महाविद्यालय के आचार्य रहे।

तब से मेरा अब तक महाविद्यालय से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध चला ही जाता है। क्या प्रतिष्ठित सदस्य, मन्त्री, उपप्रधान, प्रधान (गतवर्ष पांच घण्टे के लिये प्रधान भी रह चुका हूँ), मुख्याध्यापक, व्यवस्थापक, भारतोदय-सम्पादक, किस २ बात को लिखा जाय प्रायः सभी पदों का काम करना पड़ा। प्रथम पाँच वर्ष अर्थात् १९०८ से १९१३ तक लेखक ही महाविद्यालय का मुख्याधिष्ठाता रहा। फिर लगभग दो वर्ष मन्त्री रहा। फिर तब से कभी २ एक हाथ से महाविद्यालय व दूसरे हाथ से देहरादून—गढ़वाल सम्भालना पड़ा।

आज श्री स्वामी दर्शनानन्द जी (संस्थापक) श्री बाबू सीताराम जी (भूमिदाता) श्री पं० पद्मसिंह शर्मा, श्री पं० भीमसेन शर्मा, प्रधान महाराजसिंह, चौ० अमीरसिंह, ला० केवलकृष्ण, चौ० जयकृष्ण जी, सेठ सीताराम (अहार), पं० रामस्वरूप (अहाद) डाँ० हरद्वारीसिंह जी (रुड़की), पं० गणपतिशर्मा, पं० सीताराम शास्त्री, कविरत्न, श्री पं० तुलसीराम जी (सामवेदभाष्यकार मेरठ) श्री बाबू ज्योतिस्वरूप जी रईस देहरादून, श्री पं० बलदेवसहाय व्यास, चौ० मानसिंह रईस मुडलाना, ला० मुसद्दीलाल जी कोषाध्यक्ष, ला० शिवदयालसिंह रईस जानसठ, पं० वासुदेव शर्मा अमरी आदि आदि महाविद्यालय के प्राण-प्रतिष्ठापकगण इस असार संसार में नहीं हैं। इन्होंने जिस लगन से, जिस श्रद्धा से, किसी ने तन से, किसी ने मन से, किसी ने तन मन धन से सेवा की, उसको आर्यजगत् जानता है। महाविद्यालय के इतिहास में इनके नाम सुवर्णाक्षरों में लिखे जाने चाहियें। और साथ ही नाम लिखा जाना चाहिये आचार्य स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज का जिन्होंने चौबीस वर्ष तक शान्त गम्भीरभाव से कार्य किया और और कार्यकर्त्ताओं को भी सूत्र में बाँध रक्खा।

हम पांचों में (श्री पं० रविशङ्कर जी को मिलाकर) एक बात विशेष थी। वह यह कि जब एक ने कोई काम कर डाला तो बस, इच्छापूर्वक हो अथवा अनिच्छापूर्वक सब उस काम में जुट जाते थे। हानि लाभ यश अपयश का लेखा सब में समानरूप से बट जाता था। परस्पर उग्र मतभेद भी रहते थे पर गुरुशिष्य-संबन्धपरम्परा के कारण घर में ही मामले सुलझा लिये जाते थे। रूठा-

राठी भी हो जाती थी पर शीघ्र ही मिट भी जाती थी। सन् १९१६ से मेरा ध्यान राजनैतिक क्षेत्र में लगा, और सम्पादक पं० पद्मसिंह शर्मा घर की उलझनों में फंसे। और इसी वर्ष से दोनों के कार्यक्षेत्र भिन्न हुये। वे साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुये, मैं राष्ट्रीय क्षेत्र में उतर पड़ा।

हमारे पीछे महाविद्यालय का समस्त भार श्री आचार्य जी व पं० भीमसेन जी शर्मा, पं० रविशंकर जी, ब्र० आनन्दप्रकाश जी व स्नातकमण्डल पर जा पड़ा। पं० काँचीदत्त जी शर्मा भी खूब काम करते रहे। इनके सुयोग्य पुत्र वि० भा० पं० वासुदेव शर्मा सांख्यतीर्थ होनहार व्यक्ति हैं। १९१६ से १९३२ इस अवसर में एक बार १९२३ में जेल से आने के पश्चात् व एक बार १९२८ में मुख्याधिष्ठातृपदका भार लेना पड़ा। महाविद्यालय में हम चारों तो थे ही किन्तु गुरुकुल काँगड़ी छोड़ने के पश्चात् गुरुवर श्री पं० काशीनाथ शास्त्री भी छः वर्ष तक महाविद्यालय में रह गये। भाष्याचार्य श्री पं० हरनामदत्त जी भी दो वर्ष रहे। आपके आने से महाविद्यालय की ख्याति उत्तरोत्तर बढ़ती गयी।

१९०८ में ग्यारह विद्यार्थी और निराकार फण्ड का चार्ज लेकर जो कार्य चलाया गया आज उसी विद्यालय में दो सौ छात्र विद्याध्ययन कर रहे हैं। जिसके पास केवल तीन बीघे ज़मीन थी उस महाविद्यालय के पास चार सौ बीघे ज़मीन और डेढ़ लक्ष के आश्रम तथा अन्य भवन हैं। सैकड़ों स्नातक व सुयोग्य उपाधिधारी ब्रह्मचारी यहां से निकल कर स्वशक्त्यनुरूप देश तथा धर्म की सेवा कर रहे हैं। महाविद्यालय में जिस २ प्रकार वृद्धि होती गयी, गृहकलह बहुत रहे। और आर्य-

समाज में कौन सी संस्था है जो इस रोग से बची। उन सबके विषय में मौनसाधन ही श्रेष्ठ है।

तीन प्रकार के दान राजस, तामस, सात्विक, और तीन प्रकार के कार्यकर्त्ताओं की तीन प्रकारकी बुद्धि राजसी, तामसी, सात्विकी, उनकी तीनों प्रकार की प्रवृत्तियां, फिर उनके तीन प्रकार के मिश्रित फल, इन सब झमेलों में यही आश्चर्य है कि इतना कार्य कैसे हो सका, जितना चाहते थे और जैसा चाहते थे वैसा और उतना नहीं हो सका, इसका आश्चर्य नहीं।

जीवन भर का अनुभव है कि आर्यसमाज रजोगुणी सोसाइटी है। इसमें भी तामस का अंश अधिक व सात्विक अंश थोड़ा, इसीलिये मिश्रित फल मिलना ही चाहिये। अकारण अथवा निष्कारण धर्म समझ कर केवल कर्तव्य बुद्धि से कार्य करने वालों की भी संख्या बहुत न्यून है। इस प्रकार राजसी प्रकृति के लोगों में से चुनकर बनाई हुई कमेटियों द्वारा प्रवर्तित व सञ्चलित संस्थाएं दुःख उद्वेग परिताप और परिहास का कारण बन गई तो फिर आश्चर्य करने की क्या बात है। आर्यसमाज की संस्थाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करने से यह बात स्पष्ट समझ में आ सकती है कि आर्यसमाज का इतिहास ही दो पार्टियों का इतिहास हैं। फिर आर्यसमाज व उसकी संस्थाएं पार्टी-फीलिंग से किस प्रकार बच जातीं, कारण के गुण कार्य में आते ही रहते हैं।

महाविद्यालय के प्रारम्भिक दिनों में श्री वैद्यराज रामचन्द्र जी ने खूब पुरुषार्थ किया है और जब से वे स्वतन्त्ररूप से कनखल में रहने लगे तब से अब तक अपनी अनुपम चिकित्सा द्वारा

महाविद्यालय की सेवा करते रहते हैं। श्री पं० यागेश्वर जी की भी सहायता प्रशंसनीय है और शतमुख से प्रशंसनीय है।

स्वर्गीय लोगों के अतिरिक्त अब तक जिन्होंने महाविद्यालय के कार्य में सहायता दी है और जिनके सम्बन्ध अक्षुण्णरूप से बने हुए हैं, उनके नामों का उल्लेख करना भी हमारा कर्तव्य है-

श्री बा० मथुरादास जी रईस रुड़की, तन मन धन से महाविद्यालय के सहायक रहते हैं, इनमें पदलोलुपता का लेश भी नहीं है। चौ० भगीरथलाल जी महेवड़ श्रद्धालु व्यक्ति हैं, पच्चीस वर्षों में महाविद्यालय में उलट पुलट अर्थात् क्रान्ति हुई किन्तु आप एकरस चले आते हैं। ला० जमनादास जी रईस जसपुर, आपने महाविद्यालय को अच्छी आर्थिक सहायता दी। श्री पं० शङ्करदत्त जी शर्मा, मुरादाबाद, आप तो महाविद्यालय में जीवन-रस डालने वालों में अथवा नवरस उत्पन्न करने वालों में से एक हैं। चौ० रघुराजसिंह पृथ्वीपुर विजनौर, दशवर्ष से अधिक काल तक प्रधानपद को अलंकृत कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त विद्याभास्कर विश्वनाथ शास्त्री, विद्याभास्कर रामावतार शास्त्री, विद्याभास्कर उदयवीर शास्त्री, विद्याभास्कर काशीनाथ शर्मा काव्यतीर्थ, आयुर्वेदभास्कर हरिशङ्कर शास्त्री, विद्याभास्कर चन्द्रदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर हरिदत्त शास्त्री पञ्चतीर्थ (वर्तमान आचार्य म० वि० ज्वालापुर) श्री हरिशङ्कर शास्त्री इत्यादि के सहयोग व सद्भाव की प्रशंसा करनी पड़ती है। स्वा० ब्रह्मानन्द जी सरस्वती भी पूर्ण सहयोग देते रहे, आप मांगने के कार्य में सिद्धहस्त हैं।

हमारे पुराने प्रेमियों में चौ० लालसिंह नारसन खेड़ा, चौ० तुलसीराम बड़सू, चौ० हुक्मचन्द लिबरहेड़ी, चौ० मामराजसिंह जी रईस शामली, चौ० झण्डूसिंह जी वलहेड़ी, स्वा० सदानन्द जी (ला० सुन्दरलाल वानप्रस्थी), म० शीतलप्रसाद विद्यार्थी (शान्ति प्रेस सहारनपुर) इत्यादि का नाम भी उल्लेख योग्य है। बहादुरपुर के चौ० रघुवीरसिंह व चौ० सतराम को भी हम नहीं भूल सकते। स्वा० मुक्तानन्द जी (बा० मोतीराम) ने भी महाविद्यालय के लिये बहुत कष्ट सहे। पुराने भक्त अत्रिवर्मा (कटारपुरी) को भी कोई कैसे भुलाये। ला० इन्द्रराजसिंह सलेमपुरी महाविद्यालय के एकरस भक्त चले आरहे हैं। कनखल के लाट कृष्णचन्द्र जी व ला० बेनीप्रसाद जी, इनका भी अटूट प्रेमसम्बन्ध आज तक चला आता है। बा० जगदम्बाप्रसाद (स्व० बा० सीताराम जी के भान्जे) के स्नेह के विषय में मैं क्या वर्णन करूं, ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा इनका कोई पूर्वजन्म का ही सम्बन्ध है। पं० वासुदेव शर्मा भजनोपदेशक के शिष्य कुंवर नरेन्द्रसिंह, चौ० ऋषिराम भजनोपदेशक को भी हम भुला नहीं सकते, इनके सुयोग्य पुत्र प्रिय वलजित् पञ्जाब में प्रोफेसर हैं, भक्तिभावपूर्वक महाविद्यालय की बराबर सेवा कर रहे हैं।

महाविद्यालय के स्वर्गीय स्नातकों व ब्रह्मचारियों में श्री विद्याभास्कर विश्वनाथ शर्मा (रत्नगढ़), श्री विद्याभास्कर रुद्रदत्त शर्मा (उन्नाव), श्री भगवद्दत्त शर्मा (उन्नाव), श्री बलवीर शर्मा (पुत्र ला० मूलराजसिंह इन्द्री करनाल), श्री सरस्वतीभूषण मानपाल वर्मा (मुख्याधिष्ठाता), श्री सत्यव्रत शास्त्री (मतलबपुर), श्री विश्वानन्द, श्री चारुदत्त शास्त्री, फिजीवासी रामदेव गुप्त, ब्र०

अर्थपति, ब्र० सत्यपाल, ब्र० सहदेव वर्मा आदि की स्मृति आती है तो बहुत क्लेश होजाता है। पर क्लेश करने की बात ही क्या है, संसार की गति ही ऐसी है। जो जन्मा सो मरा। जो आया सो गया। ईश्वरीय नियम टाले नहीं जा सकते।

श्री श्रीधर (श्री आचार्य स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी का भतीजा) श्री दीपचन्द (बेलोन) ये दोनों अत्यन्त होनहार छात्र थे, किन्तु असमय उठ गये। श्रीधर जी अमृतसर शास्त्रिपरीक्षा देने गये थे, वहीं समाप्त हुये। परीक्षा भी पूरी न देसके। श्री ब्र० शुकदेव (भोगपुर निवासी) प्रो० माणिकराव जी के पास बड़ौदा व्यायाम सीखने गया था, वहां से बम्बई गया और वहीं उसका अकस्मात् देहावसान होगया।

प्रिय वाचकवृन्द ! मैं महाविद्यालय का इतिहास लिखने नहीं बैठा हूँ। महाविद्यालय का इतिहास लिखेंगे महाविद्यालय के अधिकारी।

चित्र सं० १३

पं० नरदेवशास्त्री सहित महाविद्यालय ज्वालापुर की एक मण्डली।

महाविद्यालय कैसे चलाया गया ।

वाचकवृन्द ! यह तो अच्छी तरह जान गये कि कांगड़ी से दो मित्रों का वियोग किस प्रकार हुआ, उसमें मुख्य कारण क्या था, फिर समझौते की चेष्टा करने पर भी किस प्रकार वह हो न सका, किस प्रकार श्री आचार्य जी महाविद्यालय में पधारे, किस प्रकार उनका शिष्यमण्डल एकत्रित हुआ, सभा की रजिस्टरी श्री आचार्य जी के कारण ही हुई ।

जब उपाध्याय दिलीपदत्त जी स्वा० दर्शनानन्द जी की प्रेरणा से श्री पं० भीमसेन जी को लेने भोगपुर पहुंचे तब वे उपाध्याय जी सहित श्री आचार्य जी के पास अनुज्ञा मांगने आये। श्री उपाध्याय जी ने पहले २ यह बात मुझसे छिपाई पर पीछे से उन्होंने अपने आने का प्रयोजन सुनाया। मैं उस समय महाविद्यालय के विषय में अच्छे विचार नहीं रखता था। दूसरी बात यह थी कि एक बड़े गुरुकुल को छोड़ने के पश्चात् फिर उसी लाइन में उसी प्रकार काम छेड़ना मुझे नहीं रुचता था, इस लिये मैंने पण्डित जी से कहा—

मैं—सुना है आप महाविद्यालय जा रहे हैं ?

पं० जी—हां

मैं—श्री आचार्य जी ने अनुमति देदी ?

पं० जी—जब मैंने निश्चय ही कर लिया था तब वे भी क्या करते ।

मैं—पं० जी आप अग्नि में कूद रहे हैं ।

पं० जी—अब जो हो।

मैं—अच्छा मेरे कहने से आप एक कार्य अवश्य करें।

पं० जी—वह क्या ?

मैं—आप एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित करें जिसमें कांगड़ी छोड़ने के कारणों का विस्तृत वर्णन हो फिर चाहे महाविद्यालय में ही बैठिये। पर चुपचाप जाकर साधारण व्यक्ति के सदृश न बैठिये।

पं० जी—यह बात मैं अवश्य करूंगा।

उपाध्याय दिलीपदत्त जी व पं० भीमसेन जी शर्मा महाविद्यालय पहुंचे और मैं पं० जी के वक्तव्य की प्रतीक्षा ही देखता रह गया और उधर महाविद्यालय-समाचार में निम्नलिखित आशय की विज्ञप्ति निकली—

पं० भीमसेन शर्मा का शुभागमन।

"बड़े हर्ष का विषय है कि श्री पं० भीमसेन शर्मा जो व्याकरण, साहित्य व वेदान्त के बड़े पण्डित हैं और जिन्होंने कांगड़ी में कई वर्ष कार्य किया, महाविद्यालय में आगये हैं और उन्होंने कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।"

(महाविद्यालय समाचार)

इसी विज्ञप्ति के नीचे एक मनोरंजक समाचार छपा था।

"एक दानी महाशय ने महाविद्यालय को तेहतीस बोरियां दान दी हैं, आशा है इन बोरियों को भरने के लिए कोई और दानी महाशय अन्न भी भेज रहे होंगे"।

इस महाविद्यालय समाचार के अंक में पं० भीमसेन जी का कोई वक्तव्य नहीं था। मुझे दुःख हुआ कि पं० जी ने बड़ी भूल की कि वक्तव्य दिये विना ही महाविद्यालय में बैठ गये, काम करने लग गये। म० मुन्शीराम अब इन्हें रगड़े विना नहीं छोड़ेंगे।

पं० जी की कष्टसहिष्णुता।

पं० जी का वेतन ५०) लिखा गया था पर वहां था क्या जो इन्हें मिलता। छः सात मास तक अपने पल्ले से खर्च करके काम चलाते रहे। भण्डार में कुछ नहीं था, कोष में कुछ नहीं था। केवल कोरा चार्ज देकर स्वामी जी पंजाब चले गये थे। तुलसीराम बापू जो उस समय मन्त्री थे, एक दिन मंत्री का बस्ता पं० जी के सुपुर्द कर के चले गये। अब तो पं० जी ही महाविद्यालय के अनभिषिक्त राजा थे, जो चाहें करें। उस समय छात्रों को, ब्रह्मचारियों को भोजन भी पर्याप्त नहीं मिलता था। कई दिन तक शीशम के पत्तों का साग उबला, कभी आटा है दाल नहीं, कभी दाल है आटा नहीं, कभी दोनों नहीं यह दशा रही। पं० जी ने बड़े धैर्य से कार्य किया और धीरे धीरे दुर्दिन हटते गये। फिर मायापुर वाली वह घटना हुई और बा० प्रतापसिंह जी श्री आचार्य जी को लेकर महाविद्यालय में पहुंचे। वहाँ बा० सीताराम जी, चौ० जयकृष्ण जी रईस अमृतसर, पं० रविशंकर जी शर्मा, चौ० अमीरसिंह जी, चौ० महाराजसिंह जी आदि के अनुरोध से श्री आचार्य जी रह गये। यह समाचार हमको जब भोगपुर में मिला तब बड़ा दुःख हुआ कि पण्डितलोग क्या करने लगे हैं। मैं तो फिर इसी संताप से महाविद्यालय

गया ही नहीं, सीधे फर्रुखाबाद चला गया क्योंकि छुट्टी लेकर आया था। जब रेल से जा रहा था तब महाविद्यालय के सामने जब गाड़ी आई तब मैंने एक लम्बा साइन बोर्ड देखा जिसमें लिखा था—

"साधु आश्रम, निःशुल्क गुरुकुल महाविद्यालय बुनने का कारखाना, "ब्रह्मचर्य-आश्रम" और न जाने क्या क्या। हां भूल गया "उपदेशक विद्यालय" भी लिखा गया था।

इस साधु आश्रम में पहले स्वामी सर्वदानंद जी आदि रहे थे, यह बात पीछे से ज्ञात हुई।

मैंने मन में कहा कि फूटे भाग्य पण्डितों के, पर यह क्या पता था कि लेखक की समाधि भी इनके साथ बनने वाली थी। यह क्या पता था कि इसी स्थान से पण्डितमण्डली का प्रकाश होने वाला था। इसी धाम से सहस्रों गरीब ब्रह्मचारियों का उद्धार होना था। यही निःशुल्क शिक्षा का केन्द्र बनने वाला था। और सब से बड़ी बात यह कि जिस कांगड़ी को छोड़ चुके थे वह भी महाविद्यालय के पड़ोस में आने वाली थी। यही तो है विधि की विचित्र लीला। श्री आचार्य जी के महाविद्यालय में आते ही सब प्रबन्ध ठीक हो गया। पं० भीमसेन जी शर्मा तो ऐसे प्रसन्न हो गये जैसे कोई अक्षय्य भण्डार मिल गया हो। अब तो इनको यही एक चिन्ता रही कि पं० पद्मसिंह शर्मा व राव जी (लेखक) आजायें तो बस बाजी जीत ली। पं० पद्मसिंह व मैं किस प्रकार आये यह पहले लिख चुके हैं।

इतने बड़े दिग्गज पण्डित, प्रत्येक विषय के प्रकाण्ड पण्डित जब महाविद्यालय में पहुंच गये तब महाविद्यालय की ख्याति

बढ़ती ही। श्री आचार्य जी प्रातः ४ बजे से बराबर रात्रि के ११ बजे तक पढ़ाते रहते थे। बीच में भोजन व विश्राम में तीन घण्टे जाते थे। अब महाविद्यालय में केवल कोई त्रुटि थी तो धन की, अन्न की। अमृतसर वालों ने उस समय जो भी सहायता की उसका वर्णन कैसे किया जावे। सब सहायता चौ० जयकृष्ण जी के कारण आती थी। ला० हरदयाल तालवड़, ला० कर्मचन्द सर्राफ, ला० राधाकृष्ण अहलूवालिया, ला० बालमुकुन्द कपूर, किस किस का नाम लिया जाय, नाम याद भी तो नहीं। म० वि० की रजिस्टरी होने के पश्चात् का प्रथम महोत्सव जिस धूमधाम से हुआ उससे भी महाविद्यालय की धाक जम गयी। चौ० महाराजसिंह, चौ० अमीरसिंह जी आदि ने किसानों से अन्न उगाहने की प्रथा चलाई जोकि अब तक चली आ रही है। मैं तो यही कहूंगा कि अब तक महाविद्यालय जो चल सका इन्हीं किसानों व ज़िमींदारों की अन्न की सहायता के कारण ही चला और भविष्य में भी यही प्रथा चलाती रहेगी।

महाविद्यालय के प्रारंभिक दिनों में, विपत्ति के दिनों में, जब कांगड़ी व ज्वालापुर में 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे'' हो रहा था, उन दिनों में जिन्होंने महाविद्यालय की रक्षा की, तन मन धन से सहायता पहुंचायी वे सचमुच धन्यवाद के पात्र है, वे सचमुच पुण्यशाली हैं क्योंकि वही अंकुर आज महावृक्ष हो गया है जिस की शीतल छाया में सहस्त्रों पान्थजन विश्राम करते रहते हैं। जिसके मधुर फल के आस्वाद से जनता प्रसन्न होती रहती है। निदाघ काल में थोड़ा बहुत भी जल देकर जो अंकुरों की रक्षा करता है उस मालाकार का कृतज्ञ होना ही चाहिये। वर्षा ऋतु के बादल वर्षा काल में ही जल पहुंचाते हैं, निदाघ कालमें उनके दर्शन कहाँ ?

तोयैरल्पैरपि करुणया,
भीमभानौ निदाघे ।
मालाकार ! व्यरचि भवता ,
या तरोरस्य पुष्टिः ।
सा किं शक्या जनयितुमिह,
प्रावृषेण्येन वारां ।
धारासारानपि विकिरता ,
विश्वतो वारिदेन ॥
(जगन्नाथ)

पण्डितराज जगन्नाथ की उपर्युक्त अन्योक्ति महाविद्यालय पर सर्वात्मना संगठित होती है ।

श्री आचार्य जी महाराज की निरीक्षकता में,

असाधना वित्तहीना:,
बुद्धिमन्तो बहुश्रुता:,
साधयन्त्याशु कार्याणि
काकाखुमृगकूर्मवत् ॥

विष्णुशर्मा की उक्ति के अनुसार कार्य होता रहा। श्री आचार्य जी महाविद्यालय की हाईकोर्ट थे। महाभाष्य के शब्दों में कहना हो तो "यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणम्" थे। गुरु थे, आप्त थे,

ज्येष्ठ थे, श्रेष्ठ थे। यह आवश्यक नहीं था कि हम लोग अनुकूल बातों को ही मानते, न रुचने वाली बात को भी मानते थे। इस प्रकार काम चलता रहा। जब आचार्य जी का कोई अस्त्र नहीं चलता था तब "शेषं कोपेन पूरयेत्" उन केक्रोध से सब काँपते रहते थे। सब का यह निश्चय था कि चाहे कुछ भी हो जहाँ तक संभव हो श्रीआचार्य जी को नाराज़ नहीं किया जायगा। कभी कभी घर के बड़े बूढ़ों की तरह आचार्य जी रुठ कर चले जाते थे, हम लोग फिर मनाकर लाते थे। जिन्होंने इस गुरूशिष्य प्रणय को देखा वे जानते हैं कि यदि महाविद्यालय के संचालकों में गुरुशिष्यभाव न होता तो महाविद्यालय चल ही नहीं सकता था।

शिष्य लोग तो आचार्य जी को गुरु करके मानते ही थे किन्तु महासभा अथवा महाविद्यालयसभा भी उनको इतना अधिक मानती थी कि सब कमेटी एक तरफ रहे तो स्वा० शुद्धबोध जी की ही बात चलती। महासभा अथवा महाविद्यालय के पास किये हुए प्रस्ताव स्वा० शुद्धबोध जी की अनुमति अथवा स्वीकृति के विना महीनों पड़े रह जाते थे। स्वा० शुद्धबोध जी महाविद्यालय के मुसलिनी, हिटलर, डिक्टेटर जो कुछ कहिये, थे। क्या मज़ाल कि इनकी इच्छा के विरुद्ध कोई बात हो जाय। महाविद्यालय के सभासदों व अधिकारियों ने, मैं कहूंगा, स्वा० जी का पूर्ण संमान रक्खा। स्वा० जी जब कभी रुठ कर जाते तब अपनी ही इच्छा से जाते थे। गत छब्बीस वर्षों में दो-तीन वार सभा में गड़बड़ हुई, पर स्वा० जी रुठ कर चले जाते तो गड़बड़ें तत्काल मिट जातीं। स्वा० जी अपनी इच्छाविरुद्ध न देखना चाहते थे न सुनना। उनका उग्र तेजस्वी स्वभाव ही ऐसा था। कभी कभी

वे समय की गति को पहचानने में भूल कर जाते थे। वे कांगड़ी से जिस प्रकार आये, हम लोगों का परामर्श लिये विना ही, कुछ कहे-सुने विना ही आये, यह कोई अच्छी बात नहीं थी। स्वा० शुद्धबोध जी में एक विचित्र बात यह थी कि जब उनका पूर्णबल होता था तब भी कभी कभी रूठ जाते थे व चले जाते थे। जब स्वा० जी कांगड़ी से चले तब वहां हम लोगों का पूर्णबल था यहां तक कि म० मुन्शीराम जी एक वार मुझे मुख्याधिष्ठातृपद का चार्ज देने को तैयार हो गये थे पर मैंने नहीं माना।

बड़े गुरुकुल में रहकर, बड़ी शान में रहकर आचार्य जी अपने पूर्व दिनों को भूल गये थे। उनको गुरुकुल काँगड़ी के सन्मुख कोई अन्य गुरुकुल नहीं भाता था। मनुष्य को अपनी पूर्वस्थिति को कभी नहीं भूलना चाहिये। ईश्वर ने उन्हें कांगड़ी से निकालकर एक प्रकार से यह कहा—

"गङ्गादत्त, तू उन दिनों को भूल गया क्या, जब दो पैसे लेकर घर से भागा था। तुझे मथुरा के गुरुगृह के वे दिन भूल गये क्या, जब डेढ़ वर्ष तक गौओं की सानी करके अष्टाध्यायी पढ़ता रहा। काशीवास के दिन भूल गया क्या, जब छत्र का द्वार बंद होने के कारण तुझे कई वार भूखा लौटना पड़ा। चल निकल यहां से, जाकर गरीब छात्रों का उपकार कर, यहां के इस ठाट बाट में नष्ट होजायगा" इत्यादि ।

आचार्य जी ने गुरुकुल कांगड़ी जैसा वैभवशाली गुरुकुल छोड़ा तो क्या, उसी जैसा दूसरा विचित्र गुरुकुल (महाविद्यालय) चलाकर दिखाया, जहां दो सौ ब्रह्मचारी विद्याध्ययन कर रहे हैं।

चित्र नं० १५

राजाश्रयाभाव, लोकाश्रयाभाव इत्यादि अभावों के रहते भी वर्तमान समय में प्राचीन निःशुल्क शिक्षा का बीड़ा उठाना है साहस, तेज व तपस्या की बात।

गुरुकुल काँगड़ी भी अनुभव के रूप में खोला गया था। महाविद्यालय भी अनुभव-रूप में चलाया गया था। दोनों प्रणालियों का अनुभव-फल आर्यजगत् के सामने है। किस प्रणाली से आर्यजगत् का अधिक उपकार होरहा है इस बात का निर्णय आर्यजगत् ही करे। किन्तु महाविद्यालय द्वारा आर्यसमाज का जितना ठोस कार्य हुआ है, निर्धन छात्रों का जितना उपकार हुआ है और होरहा है उसको आर्यजगत् स्वयं अनुभव कर रहा है। विपरीत परिस्थितियों में स्वल्प व्यय में इससे अधिक कार्य हो ही नहीं सकता। जितना सात्त्विक दान आरहा है उतना अच्छा कार्य होता जारहा है, राजस दान से राजसी बुद्धि के कार्यकर्त्ता व संचालक कभी २ आपस में कलह करके हानि कर बैठते हैं। तामसी दान भी यथार्थ उन्नति में बाधक है ही। अस्तु इस तात्त्विक विवेचन की यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। आज स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी इस लोक में नहीं हैं किन्तु उनका तप फल रहा है यही सन्तोष का विषय है। आज स्वा० श्रद्धानन्द इस लोक में नहीं हैं और गुरुकुल कांगड़ी भी अपने ढंग पर चल रहा है। दोनों गुरुकुल व महाविद्यालय पास २ हैं। दोनों की सीमाएं आपस में सट गई हैं। दोनों में सौमनस्य बढ़ रहा है यही सन्तोष का विषय है। काल की अनन्त गति किस समय किस रूप में दोनों संस्थाओं को किस गति पर लेजायगी इसको कोई मानवी प्राणी नहीं जान सकता। लेखक दोनों के लिये अभ्युदय की आकांक्षा करता हुआ आगे बढ़ता है।

श्री स्वा० जी का स्वभाव।

स्वा० जी के स्वभाव को थोड़े शब्दों में कहना हो तो जगन्नाथ पण्डित के श्लोक में इस प्रकार कह सकते हैं—

उपरिकरवालधाराकाराः,
भुजङ्गमपुङ्गवाः
अन्तःसाक्षाद्द्राक्षादीक्षागुरवो
जयन्ति केऽपि जनाः ॥

उनके निर्देशानुसार यथारीति अध्ययन न करने वालों के लिए साक्षात् भुजङ्गरूप थे, किन्तु हृदय इतना कोमल था कि उसका वर्णन नहीं होसकता। वे इतने छात्रवत्सल थे कि छात्रों का हित सधता हो तो वे अन्यों के हिताहित की पर्वाह नहीं करते थे। छात्रजनसमुदाय ही उनका सर्वस्व था। वे उसके लिए जो चाहे कर सकते थे। यदि किसी समय छात्र रूठकर भोजन करने नहीं गया तो वे भी जब तक उसको मनाकर भोजन न करा लेते तब तक स्वयं भी भोजन न करते। एक क्षण में दुर्वासा ऋषि प्रतीत होते तो दूसरे क्षण ही शान्त दान्त वसिष्ठ मुनि दिखलायी पड़ते। कभी २ ऐसा भी देखने में आया कि वे जिस छात्र पर, ब्रह्मचारी पर अप्रसन्न होते थे कई दिन तक उससे नहीं बोलते थे, फिर भी छात्र न समझे तो स्वयं दयार्द्र-हृदय होकर समझाने लगते थे। उनका कुछ खयाल ऐसा था कि गुरु के आकार इङ्गित चेष्टित से ही ब्रह्मचारी को उसका मनोगत विदित होकर उसको (ब्रह्मचारी को) सावधान होकर कार्य करना चाहिये। श्री स्वा० जी के पुराने छात्र तो

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥

इस आकार-इङ्गित विद्या में खूब प्रवीण होगये थे । श्री स्वा० जी आधी बात कहते थे और शेष शिष्य की बुद्धि पर छोड़ते थे । नई पीढ़ी के ब्रह्मचारी तथा उनके शिष्यों को इस विद्या में बड़ी कठिनाई उठानी पड़ी । उनका यह भी दृढ़ विचार था कि गुरुशिष्यों के बीच में तीसरा व्यक्ति नहीं आना चाहिये । गुरु के लिये शिष्य ही सब कुछ और शिष्य के लिए गुरु ही ईश्वर तुल्य रहना चाहिये, तो भी प्रसंग प्रसङ्ग पर छात्रजनों से—

"यान्यस्माकꣳ सुचरितानि
तानि त्वयोपास्यानि"

इत्यादि वाक्य कह जाते थे ।

कमेटियों से आपको घृणा रहा करती थी । किन्तु आश्चर्य है महाविद्यालयसभा की रजिस्टरी कराने में आपका ही हाथ था । जब कभी इनकी इच्छा-विरुद्ध कार्य होता तब झल्ला उठते कि "आजकल के गुरुकुल कमेटीकुल हैं न कि गुरुकुल" तब हम भी मुस्कराकर उत्तर देते कि "महाविद्यालय की कमेटी किसने बनाई । रजिस्टरी करने पर बल किसने दिया" तब चुप होजाते । उनको चुप कराने का यह अच्छा मंत्र था कि इस प्रकार का उत्तर दिया जाय । कभी २ लेखक

'त्रयो दोषाः स्वयंकृताः'

इस विष्णुशर्मा की बात को स्मरण दिलाकर उनको चुप करा देता था ।

इस उग्र स्वभाव की बात छोड़ दी जाय तो वैसे वे

(१) सच्छिष्यों के लिये सद्गुरु।
(२) असच्छिष्यों के लिये दुर्वासा।
(३) रोगी के लिये शुश्रूषु (श्री स्वा० जी अच्छे वैद्य थे, वैद्यक पैतृक संपत्ति थी)।
(४) अर्थी के लिए कल्पवृक्ष।
(५) परिश्रमी छात्रजन के लिए व्यास।
(६) शुश्रूषु किन्तु दुर्मेधा छात्र के लिए करुणा के सागर।
(७) पक्के आतिथेय।
(८) विनोदी। जो पास रहते थे उनको ही इस स्वभाव का अधिक परिचय मिलता रहता था। अध्यापन के समय भी परिचय मिलता था।
(९) अपनी बात के धनी।
(१०) यात्रा के लिये दीर्घसूत्री।
(११) अध्यापन में चौबीसों घण्टे तत्पर।
(१२) छात्रों को खिलाने-पिलाने में एक।
(१३) प्रबन्ध में कठोर व बद्धमुष्टि।

स्वा० जी की अध्यापनशैली।

स्वा० जी की अध्यापन शैली ऐसी अनुपम थी कि इस बात की प्रसिद्धि समस्त उत्तर भारत में होचुकी थी। वे तो छात्रों के मन से मिलाकर पढ़ाते थे। उनके दो ही वाक्य थे—

(१) "मम चित्तमनु चित्तं तेऽस्तु"
(२) 'मा विद्विषावहै"

लघुकौमुदी, सिद्धान्तकौमुदी, तत्त्वबोधिनी, शेखर, मनोरमा, अष्टाध्यायी, काशिका, महाभाष्य सम्पूर्ण, इत्यादि व्याकरणग्रन्थ तो उनके हस्तामलकवत् थे। व्याकरण ही अधिक रुचि से पढ़ाते रहते थे इसीलिये उनकी प्रसिद्धि व्याकरणशास्त्र से हुई। वैसे न्याय, योग, साँख्य, वैशेषिक, शंकरोपस्कार, औद्योतकर आदि ग्रन्थ सटीक सभाष्य खूब पढ़ाते थे। काव्यग्रन्थ भी पढ़ाते थे किन्तु वही व्याकरणशास्त्र का ढंग रहता था। निरुक्त को खूब पढ़ाते थे क्यों कि वह भी वैदिक व्याकरण का ग्रन्थ है। व्याकरणशास्त्र में नव्य व प्राचीन कोई ग्रन्थ शेष नहीं रहा था जिस को इन्होंने काशी में न पढ़ा हो अथवा पढ़ाया हो। वे प्रायः कहा करते थे कि आर्यजगत में उन ग्रन्थों के पढ़ने वाले छात्र कम मिलते रहते हैं इसलिये इस मण्डल में आकर अनेक ग्रन्थों को खोलने की बारी भी नहीं आयी। यदि हम काशी में ही रहते तो कहां पहुंच गये होते। श्री गुरुवर आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी जी फेलो एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, वेद-व्याख्याता कलकत्ता-विश्वविद्यालय एकवार काँगड़ी-गुरुकुल के महोत्सव पर हमारी प्रेरणा से व स्वामी श्रद्धानन्द जी के आग्रह से गये थे तब व्याकरण के किसी शब्द पर शास्त्रार्थ हो पड़ा था। तब श्री स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी ने ही उनको यथार्थ उत्तर देकर चुप कराया था। इस बात को श्री सामश्रमी जी महाराज ने स्वयं हमसे कहा था कि "तुम्हारे व्याकरण-गुरु हैं तगड़े पर हैं उग्र स्वभाव के, उनको क्रोध बहुत शीघ्र आ जाता है"।

जिस स्वामी ने आर्यजगत् में आकर तप व स्वाध्याय का सत्र अनवरत चालीस वर्ष चलाया और आर्यसमाज में सैंकड़ों

संस्कृत के विद्वान् तैयार किये उनकी महिमा कहां तक लिखी जावे। शित्तक का, गुरु का है पवित्र कार्य। इसमें निरपेत्तभाव से, केवल कर्त्तव्यबुद्धि से, कार्य करते रहना ही श्रेयस्कर है। आयु भर व्यतीत करो तब कहीं दो-चार तेजस्वी शिष्य मिल जाते हैं, तब कहीं गुरु जी की प्रसिद्धि होती है, तब कहीं यशः-सौरभ दिग् दिगन्तरों में प्रसरित होने लगता है, नहीं तो कोई नहीं जानता। बस अन्तरात्मा की प्रसन्नता ही गुरु का सर्वश्रेष्ठ पारितोषिक रहता है। बहुत छात्र बीच में ही गल जाते हैं, पूर्ण अध्ययन नहीं करने पाते। बहुत से पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् स्वकार्य में ऐसे लिप्त हो जाते हैं कि पूर्वोपकारी गुरुजनों की सुध-बुध भी भूल जाते हैं। समर्थ, शक्त-भक्त शिष्य कोई मिल ही जाता है जो किसी समय सारी कसर निकाल देता है। श्री स्वामी जी को भी इस प्रकार के दस बारह शिष्य मिल ही गये। पं० पद्मसिंह शर्मा, पं० भीमसेन शर्मा, नन्दलाल व्यास गुजराती, पं० सीताराम शास्त्री आदि अनेक शिष्यों का नाम गुण और गौरवपूर्वक लिया जासकता है। यदि दण्डी विराजानन्द जी को दयानन्द न मिलते तो उनको कौन जानता? यदि रामकृष्ण परमहंस को विवेकानन्द न मिलते तो परमहंस जी का प्रकाश कैसे होता,—यदि श्री ६ गुरुवर काशीनाथ शास्त्री व श्री भाष्याचार्य श्री पं० हरनामदत्त जी शास्त्री को पं० गङ्गादत्त जैसे श्री नारायणदत्त सिद्ध जैसे तेजस्वी सच्छिष्य न मिलते तो आर्यमण्डल में ही इन गुरूणां गुरुओं को कौन जानता। वैसे तो दूसरी ओर उनके सहस्रों शिष्य-प्रशिष्य हैं, जब स्वामी जी को कभी दुर्बुद्धि छात्रों से पाला पड़ता था तब मुस्कराकर कहा करते कि—

एकेनापि सुपुत्रेण, सिंही स्वपिति निर्भयम् ।
समैश्च दशभिः पुत्रैः भारं वहति गर्दभी ॥

अभिप्राय यह कि सिंही अकेले पुत्र के भरोसे पर बेखटके सोये रहती है पर गधी का यह हाल रहता है कि दश बच्चों के रहते भी स्वयं भी बोझा ढोती रहती है और सन्तान भी बोझा ढोती रहती है ।

स्वामी जी लिखने में बड़े कच्चे थे । एक पत्र लिखना हो तो उन्हें दो-चार दिन लग जाते । एक कार्ड में पूरा नहीं भर पाते थे । आज दो पंक्तियाँ लिखी, कल दो लिखीं, फिर कहा रहने दो सोचकर लिखेंगे । कोई बहुत आवश्यक कार्य हुआ, किसी ने ज़ोर दिया तो बड़ी कठिनता से वह पत्र डाक में डाला जा सकता था । यात्रा में भी यही दशा थी । स्टेशन पर गाड़ी आने पर कुटिया में सामान बांधने का प्रारंभ होता था और गाड़ी निकल जाने पर स्टेशन पहुंचते थे । प्रायः कोई यात्रा ठीक समय पर नहीं होती थी, एक दो ट्रेन छूट ही जाती थीं । एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ कि आपको प्रवास का व्यसन नहीं पड़ा। यह भी अच्छा ही हुआ कि लेखन में रुचि नहीं हुई । उनका समस्त ध्यान अध्ययन व अध्यापन में ही रहा, यह ईश्वर की परम कृपा थी । यह भी अच्छा ही हुआ कि वे सभाशूर नहीं थे नहीं तो आर्यसमाज में बोलने का चस्का उनको नष्ट कर डालता व स्वामी जी का स्वाध्यायसत्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता । यदि इनको व्याख्यानादि में रुचि हो जाती तो आर्यसमाजी इनको घुमा २ कर ही मार डालते—अस्तु सहस्रों उपदेशकों, सैकड़ों लेखकों ने वह ठोस काम नहीं किया जिसको स्वामी शुद्धबोध अपने परम पवित्र शुद्धबोध (ज्ञान) से कर गये ।

श्री स्वामी जी महाराज

[लेखक—श्री डाक्टर मङ्गलदेव जी शास्त्री, एम० ए०, डी० फिल, रजिस्ट्रार संस्कृतकॉलेज बनारस।]

श्री १०८ श्री स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज के परमपदारूढ़ होने के संवाद को सुनकर मुझको विशेष खेद हुआ। आप उन गिने चुने तपस्वी सत्पुरुषों में थे जिनके प्रयत्न से तथा जिनके परार्थ-जीवन के उदाहरण से इस समय इस प्रान्त में एक नवीन स्फूर्ति और विद्या का प्रकाश दिखाई दे रहा है। आप आजीवन ब्रह्मचारी रहे और सदा संस्कृत के ओजस्वी विद्वानों के तय्यार करने में दत्तचित्त रहे। महाविद्यालय ज्वालापुर जैसी संस्था की सफलता में आप का बड़ा हाथ था। अनेकानेक विद्वानों ने आपके शिष्य होने का गौरव प्राप्त किया है। मुझे भी दो चार वार आप के दर्शनों का सौभाग्य मिला था। गत ग्रीष्म काल में अन्तिमवार मैंने आपके दर्शन कनखल में किये थे। आप की मुझ पर बड़ी कृपा थी। अधिक कहां तक लिखूं, श्रद्धापूर्वक निम्नलिखित पद्य-पुष्प उनकी सेवा में अर्पण करता हूं—

शिष्याः यस्य दिगन्तविश्रुतयशःपूराश्चरित्रोज्वलाः,
शास्त्राध्यापनपण्डिताः फणिगवीष्वेके क्षितावासते।
सोऽयं दण्डियतीन्द्रचन्दिरसमज्ञोऽज्ञानभानुर्न कम्,
कुर्यादीड्यगुणोत्करे क्षणचणं लोके पुमांसं नतम्॥

इति शम्।

चित्र सं० १६
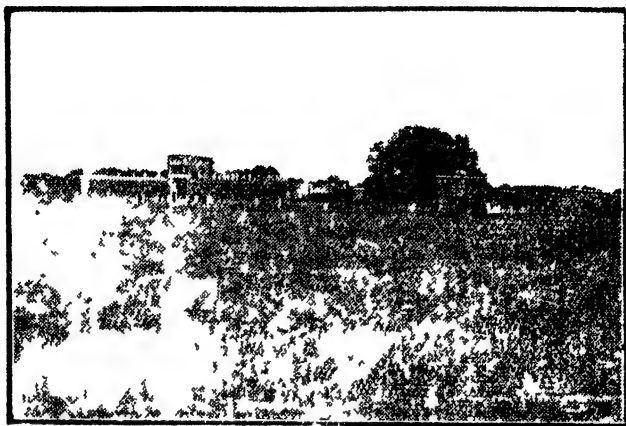
महाविद्यालय का बाहरी दृश्य ।

महाविद्यालय का भीतरी दृश्य ।

पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज का निर्वाणचतुष्क।

[मिलिन्दपाद छन्द]

[ले० पं० रामगोपालशर्मा वैद्यरत्न, बदायूं]

१

अहह ! आर्यजन-वन्द्यदेश आदर्श विरागी।
पाय आपसो पूत भयो भारत बड़भागी॥
हा ! तव सेवा निरखि भारती आनंद पागी।
रहे आपके ज्योति-भारती दिन दिन जागी॥
भक्ति ज्ञान वैराग्य सों पावन कीनों भूमितल।
अहह ! आप सोइ कित गये शुद्धबोधतीरथ विमल॥

२

सर्वसत्यागी आप श्रुतिस्मृति धर्मधुरन्धर।
सोहे विद्वत्समिति बीच जिमि स्वर्ग पुरन्दर॥
विद्या बुद्धि विवेक शान्ति के सदन मनोहर।
पाठनशैली रही आपकी गुरु ! लोकोत्तर॥
शुद्धबोध दै आपने तीरथ कीने बहु अबुध।
स्वामिन् ! सार्थक नाम किया शुद्धबोधतीरथ विबुध॥

३

आप बिना गुरुवर्य्य ! निराश्रित भई भारती ।
तव वियोग की वह्नि शिष्यगन-हृदय जारती ॥
अहह ! व्यथित अति मातृभूमि नहि धीर धारती ।
विलपि वरनि गुनगनन नयन सों अश्रु डारती ॥
आप सरिस गुरुवर्य्य ! अब मिलहिं धर्म-शिक्षक कहाँ ।
हाय ! आप ही के बिना भई शून्यता सी यहाँ ।

४

अस्तु ! लहहु अपवर्ग स्वर्ग सुख चाहै लहियो ।
धरहु जन्म यदि कवहुं देश भारत में धरियो ॥
विनय यही है दुखी देशको भूलि न जइयो ॥
धर्म नीति सद्भाव फिरिहु भारत भुवि भरियो ॥
सुमिरि सुमिरि उपकार तव, किरति गायन करि रही ।
रही औरु रहि है सदा तव कृतज्ञ भारत मही ॥

महाप्रयाण ।

—❀⁐०⁐❀—

गत पैंतीस वर्षों में श्री आचार्य स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी दो ही बार सख्त बीमार होगये थे। सन् १९०८ में भी ऐसे बीमार होगये थे कि जीवित की आशा ही नहीं रही थी। म० मुन्शीराम के महाविद्यालय में आने व उनको काँगड़ी लेजाने का विस्तृत वृत्तान्त पीछे आचुका है। धैर्यधन होने पर भी कभी २ उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई घटना होजाती थी तो उनकी व्यथा मनसे प्रारम्भ होकर शरीर तक पहुँच जाती थी। १९३१ में महासभा ने इनको महाविद्यालय का कुलपति बनाया और इन्हीं के प्रमुख शिष्य (वर्त्तमान मुख्याधिष्ठाता) विश्वनाथ शास्त्री जी को आचार्य। जब ये न आसके तब इनके स्थान में श्री पं० हरदत्त शास्त्री पञ्चतीर्थ आचार्य बने। इस महासभा के पश्चात् महाविद्यालय में अनेक परिवर्त्तन हुए जिनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। यद्यपि श्री आचार्य जी (कुलपति जी) मुक्तिपीठ पर रहते थे तथापि इनका समस्त ध्यान महाविद्यालय में ही रहता था। यह आधि (मानसिक व्यथा) थी ही कि १९३३ फरवरी में वे फिर सख्त बीमार पड़गये और कई वार अच्छे होकर कई वार बीमार पड़े। अगस्त १९३३ ता० ५ को फिर जो रुग्ण हुए, बस यह उनकी अन्तिम रुग्णता थी। यह तो लिखना ही पड़ेगा कि अन्य बातों में जी के कड़े होने पर भी स्वा० जी बीमारी के बड़े

कच्चे थे। बहुत शीघ्र घबरा जाते थे, बहुत शीघ्र वैद्य बदलतेथे, बीच २ में अपनी भी दवाई करते रहते थे। कौनसी औषधि खाऊँ और कब अच्छा होजाऊँ यह उनकी मानसिक वृत्ति रहती थी। वे अपने आपको दुर्बल देखते ही घबरा जाते थे। एक घण्टे में बीस आर्डर देते थे, अभी कनखल, अभी हरद्वार, अभी ज्वालापुर, अभी मेरठ कोई न कोई शिष्य दौड़ता ही रहता था। ज़रा अच्छे हुए कि फिर अपनी वही पुरानी खुराक़ खाने लगते। बदाम के तो बड़े शौक़ीन थे। तीस २ बदाम से लेकर सौ २ को पीसवा कर दोनों समय खाते थे। कभी दूध में डालकर, कभी साबूदाने में, कभी घृत में—इस प्रकार बदाम-सत्र चलता ही रहता था।

मेरठ के वैद्य हरिशङ्कर इनके शिष्यों में से हैं। इन्होंने गुरु जी की इच्छा देखकर बदामों की खुली छुट्टी दे रक्खी थी। इनके उपाचार से स्वा० जी का रक्तपित्त कईवार बन्द हुआ था। मैं ता० २३ जौलाय को मसूरी से आया था क्योंकि महाविद्यालय की अन्तरङ्ग थी। विचार कर रहा था कि ता० ५ अगस्त को लौट जाऊँ, इतने में मुक्तिपीठ से समाचार आया कि स्वा० जी सख्त बीमार हैं, कोई आशा नहीं। ऐसी विचित्र दशा थी कि उसका वर्णन नहीं होसकता। दिनमें आराम दिखलाई पड़ता था रातको ऐसा लगता था कि बस सवेरे चल ही देंगे। ता० १० को रातभर मैं वहीं रहा। महाविद्यालय के बड़े ब्रह्मचारी भी पहुँच गये थे, रात्रिभर जागते रहे। बड़ी चिन्ता रही। किसी प्रकार उनको महाविद्यालय के लिए मनाया। किन्तु ता० ११ को प्रातःकाल जब पालकी लायी गई और महाविद्यालय का ब्रह्मचारीमण्डल

उनको लेने मुक्तिपीठ पहुंचा तब एकदम बिगड़ बैठे। कहने लगे "क्या तुम मेरा जनाज़ा निकालने लगे हो। लेजाना है तो कनखल श्मशानघाट की ओर ले चलो। उलटे म० वि० की ओर कहां लेजाना चाहते हो।" दो घण्टे तक आराधना करने के पश्चात् इस वायदे पर कि "सात दिनमें यदि आराम न पड़ा तो मुक्तिपीठ वापस पहुँचा देंगे" आप तैयार हुए और महाविद्यालय लाये गये।

महाविद्यालय में लाकर उनको औषधालय में रक्खा गया, उनको वही स्थान पसन्द था। दैवगति ऐसी कि उस दिन घोर वर्षा हुई कि औषधालय का कमरा चूने लग गया। मैं जब मिलने लगा तब मुस्कराकर बोले 'भई, अन्न जल प्रबल है, बोलो अब कहाँ रक्खोगे' मैंने कहा मेरी नई कुटिया में अच्छा रहेगा, और सबसे अच्छी कुटिया है आपकी कुटिया (शान्तिकुटीर) जिसमें सब प्रकार का सुभीता है" स्वा० जी फिर बोले 'जहाँ से छोड़कर चला गया था तुम लोग मुझे वहीं पहुंचा रहे हो' अस्तु सायंकाल के समय आराम कुरसी में लिटाकर स्वा० जी को शान्तिकुटीर में पहुंचाया गया। पहुंचते ही आप बोले—"अपनी वस्तु फिर भी काम आ ही गई"—मैंने कहा "हां महाराज" उजड़ी हुई शान्तिकुटीर फिर बस गई। बस वहाँ एक ही जमघट रहने लगा। एक वैद्य आरहा है, दूसरा जारहा है, मिलने वाले आरहे हैं, जारहे हैं। ब्रह्मचारिगण दो-दो करके आरहे हैं और अपनी ड्यूटी होते ही जारहे हैं। चौबीसों घण्टे वहाँ चहल पहल रहने लगी और जिस प्रकार उनकी बीमारी बढ़ती गई महाविद्यालयवासियों की चिंता बढ़ने लगी—श्री पं० रामचंद्र जी वैद्य कनखलवासी ने अन्त तक जिस तत्परता से शुश्रूषा, चिकित्सा की उसका वर्णन नहीं होसकता। वैद्य हरिशङ्कर मेरठ

भी बार २ आते रहे। पं० रामसहाय वैद्य एक वार सब कार्य छोड़कर विशेषरूप से आये। स्वा० जी के ग्राम के कविराज सोमगुप्त वैद्यभूषण कई दिन तक यहाँ रहकर गये।

ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज के प्रिन्सिपल श्री ज्ञानेन्द्रनाथ जी, ऋषिकुल के प्रिन्सिपल श्री लीलाधर शास्त्री, हरद्वार के आयुर्वेद-मार्त्तण्ड पं० शिवचन्द्र जी वैद्य, श्री पं० उपाध्याय दिलीपदत्त जी, रुड़की के श्री डा० बलदेवसिंह आदि २ समय समय पर आकर परामर्श देते रहे पर मुख्य चिकित्सक रहे श्री पं० रामचन्द्र वैद्य। पहले तो यही पता न चला कि क्या रोग है। फिर वैद्यमण्डली की परीक्षा से निश्चय हुआ कि 'रक्तपित्त वायुपित्त में परिवर्त्तित होगया है।" बड़ी चिन्ता हुई। पहले तो सबका यही ध्यान रहा कि 'रक्तपित्त' है। अस्तु जितना भी अच्छा उपचार होसकता था, किया गया, जितना भी अधिक निरीक्षण होसकता था किया गया। प्रतिक्षण उनके पास भीतर दो और बाहर ५-६ सेवक रहते थे। श्री गोपालतीर्थ जी भी अपनी शिष्यमण्डली सहित आगये थे। स्वा० शुद्धबोध जी के एक पुरातन शिष्य श्री स्वा० घनानन्द चक्रवर्ती ने जो अपूर्व सेवा की उसकी प्रशंसा हो नहीं सकती। ज्वालापुर के पण्डा विद्यार्थियों में बलराममिश्र व हरिशङ्कर पण्डा का नाम उल्लेख योग्य है।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित शक्त-भक्त व शिष्यों का उल्लेख करना अपरिहार्य है, जिनकी सेवा से श्री स्वा० जी परम प्रसन्न हुए—

(१) श्री पं० रविशङ्कर जी शर्मा वानप्रस्थ। इन्होंने बड़ी सहायता दी। मुक्तिपीठ की उलझन को सुलझाकर

कागज़ को श्री गोपालतीर्थ जी के नाम रजिस्टरी कराने में बड़ा योग दिया। इस कागज़ पर पं० रविशङ्कर शर्मा, पं० रामचन्द्र वैद्य, ब्र० आनन्दप्रकाश, नरदेव-शास्त्री, ला० इन्द्रराजसिंह के साक्षी के रूप में हस्ताक्षर हैं। रजिस्ट्रार साहब क़ागज़ की रजिस्टरी करने महाविद्यालय ही आये थे।

(२) पं० कांचीदत्त शर्मा, खुर्जा निवासी (भू० पू० मुख्यसंरक्षक म० वि०)।
(३) पं० प्रभुदयाल शर्मा, लाँक मुज़फ्फरनगर।
(४) पं० आशाराम शर्मा अग्निहोत्री (नाला-कांधला)।
(५) पं० राजेन्द्रनाथ शास्त्री (नागलोई-देहली)।
(६) श्री ब्र० श्यामानन्द जी—इटावा।
(७) पं० जयनारायण शास्त्री विद्याभास्कर (फिरोजाबाद)।
(८) ब्र० लक्ष्मीनारायण शर्मा विद्याभास्कर (रुड़की)।
(९) ब्र० गौरीशङ्कर शर्मा, सरदारशहर बीकानेर।
(१०) ब्र० भगवत्प्रसाद, बनत-मुजफ्फरनगर।
(११) ब्र० रमेशचन्द्र, दारानगर गञ्ज-बिजनौर
(१२) ब्र० पद्मनाभ (टावनकोर)
(१३) सोमदेव (अलीगढ़)।
(१४) पं० देवदत्त शास्त्री आचार्य (स्वा० जी के सम्बन्धी)।
(१५) ब्र० रामचरण शर्मा, (चितौरा-आगरा)
(१६) ब्र० रामचन्द्र शर्मा, (हिरनगू-आगरा)
(१७) ब्र० कृष्णदेव, शमसाबाद (आगरा)।
(१८) ब्र० ब्रह्मदेव शर्मा (गङ्गागढ़-पहासू)।
(१९) ब्र० ओमदत्त शर्मा (औरङ्गाबाद-बुलन्दशहर)।

(२०) ब्र० ओमदत्त (गोवर्धनपुरी)।
(२१) ब्र० शिवदत्त शर्मा (पिहानी-हरदोई)।
(२२) ब्र० क्षेमचन्द्र शर्मा (बाबूगढ़-मेरठ)।
(२३) ब्र० हितपाल (अजबपुर देहरादून)।
(२४) ब्र० जगदीश (खुर्रमपुर-संसारपुर)।
(२५) ब्र० वागीश्वर शर्मा, (नागल-सहारनपुर)।
(२६) ब्र० महेन्द्र-लाहोर।
(२७) ब्र० पूरणचन्द, (बहरायिच)।

उपर्युक्त महानुभाव तथा ब्रह्मचारी लेखक की इच्छानुसार सदैव स्वा० जी की सेवा करने के लिये प्रस्तुत रहते थे और इस 'गुरुसेवा' की कठिन परीक्षा में सर्वात्मना समुत्तीर्ण हुए। गुरु-सेवा भी बड़े पुण्य से मिलती है।

अगस्त ता० ११ से लेकर ता० २६ सितम्बर तक महाविद्यालय का बड़ा परिवार शक्तिभर यत्न करता रहा कि किसी प्रकार आपको आराम हो, किसी प्रकार आप स्वस्थ हों। पर ईश्वरेच्छा बलवती थी, उसके संमुख मनुष्य की क्या शक्ति थी। स्वा० जी दिन में अच्छी तरह रहते थे, कुछ सो भी लेते थे, बातचीत भी करलेते थे किन्तु सायंकाल पाँच बजे से जब ज्वर चढ़ता था प्रातः ५ बजे तक बहुत बेचैन रहते थे। कभी कभी बेहोश भी रहते थे। जब उनको भी निश्चय होगया कि चलने में दिन थोड़े हैं तब उन्होंने हृषीकेश जाने का आग्रह किया। उस समय हृषीकेश में ज्वर का प्रकोप था। महाविद्यालय में जो सेवा-शूश्रूषा होसकती थी वैसी वहां संभव नहीं थी। परिमित सेवक वहां जाकर स्वा० जी की समुचित रूप से सेवा नहीं कर सकते थे,

चित्र सं० १७
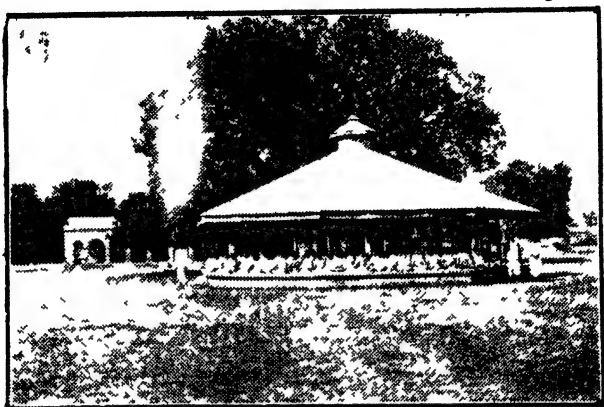
महाविद्यालय की यज्ञशाला।

महाविद्यालय की वनस्थाश्रम।

इस लिए हम लोग स्वा० जी की इस इच्छा को पूर्ण न कर सके। कनखल में एक अच्छा स्थान ढूँढा था किन्तु वह स्वा० जी को पसन्द नहीं आया। इस तरह हम लोगों ने यही अच्छा समझा कि इनको महाविद्यालय से न हिलाया जाय।

मृत्यु से पांच दिन पूर्व सब लोगों को बाहर जाने के लिये कहकर उन्होंने एक घण्टे तक मुझसे बातचीत की और मैंने भी उनकी हार्दिक अन्तिम बातों को जानने का पूर्ण प्रयत्न किया। वे प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं—

प्र०–महाविद्यालय के विषय में कुछ कहना है ?

उ०–संगठन से काम करें।

प्र०–आर्यसमाज के विषय में ?

उ०–समाज विद्वानों को तैयार करने की चिन्ता करे तो इसका कल्याण है, अन्यथा नहीं।

प्र०–श्री विश्वनाथजी (वर्तमान मुख्याधिष्ठाता) से कुछ कहना है ?

उ०–महाविद्यालय में जम कर काम करें।

प्र०–अधिकारियों से कुछ कहना है ?

उ०–निषेधद्योतक सिर हिलाया।

प्र०–और किसी व्यक्ति से कुछ ? उ०—कुछ नहीं।

प्र०–बेलोन वालों से कुछ ? उ०—कुछ नहीं।

प्र०–किसी को बुलाना है ? उ०—नहीं।

और कुछ ?

पद्मनाभ, सोमदेव, पं० प्रभुलाल जी (लॉक निवासी) ने बहुत सेवा की है इनका ध्यान रक्खा जावे। इनको कोई कष्ट न हो। पं० कांचीदत्त शर्मा को बुला लिया जावे।

श्री गोपालतीर्थ से कुछ कहना है ?

बस, श्री गुरु जी (श्री १०८ स्वामी सुब्रह्मण्यदेवतीर्थ संस्थापक मुक्तिपीठ) की स्मृति को बनाये रक्खें।

जब स्वामी जी मुक्तिपीठ से महाविद्यालय में लाये गये तब उन्होंने कहा था कि मेरी चिकित्सा आदि का भार महाविद्यालय पर न पड़े। तदनुसार स्वामी जी का समस्त व्ययभार उनकी शिष्यमण्डली ने ही उठाया। उनका अन्त्येष्टि-संस्कार का भार तक म० वि० पर नहीं पड़ा। स्वामी जी का शिष्यगण बराबर रुपया भेजते रहे इसलिये किसी बात की तंगी नहीं रही।

मृत्यु से एक दिन पूर्व उन्होंने विचित्र पदार्थ खाने को मांगे। जैसे कुलफो, नरीयल का पानी, चोलें, बूंदी इत्यादि सब पदार्थ दिये गये। खाते क्या थे थोड़ा २ कुटकते थे। ता० २६ सितम्बर को तो वे ऐसे अच्छे थे कि ऐसा प्रतीत होता था मानो अच्छे हो गये। उन्होंने खाने के लिये सब प्रकार की मिठाई मंगाई। मिठाई मंगाई गई, और उन्होंने उसको खाया कहने की अपेक्षा सूंघा ऐसा कहना ही उपयुक्त होगा। थोड़ा थोड़ा कुटक कुटक कर खाया।

सायंकाल तीन बजे उन्होंने मुझसे कहा कि देखो आज मेरे पास से हिलना नहीं। इसीलिये मैं व पद्मनाभ वहीं बरावर बैठ रहे। एक वार केवल "आज" "मृत्यु" ये दो शब्द कह कर ही चुप हो गये। फिर "घाट" कहकर रह गये। थोड़ी देर में बोले "महाविद्यालय के घाट पर ले चलो"। मैंने कहा अब सायंकाल हो गया है, वहां मच्छर होंगे, प्रातः ले चलेंगे। यह है कोई

७ बजे की बात। मृत्यु से तीन दिन पूर्व ही हमने पलंग हटा कर स्वामी जी के लिये रेती की कोमल शय्या बना दी थी।

आठ बजे बोले मुझे उठाओ। मैंने उठाया। मेरा मन कहने लगा कि अब स्वामी जी चले, इसलिये मैंने पद्मनाभ जी से कहा दर्भासन बिछाओ। स्वामी जी बोले शीघ्रता मत करो, अभी मैं नहीं चला। पद्मनाभ बोला ॐ ॐ कहो, स्वामी जी ने कई वार ॐ ॐ कहा। स्वामी जी ने कहा मुझे लिटाओ। उन्हें लिटाया गया। ९॥ बजे उनका स्वर बदल गया, होश में बराबर रहे। सब लोग इधर उधर से एकत्रित होने लगे, उनको समझा बुझा कर लौटाया गया। दस बजकर पचीस मिनट पर स्वामी जी ने उठाने का इशारा किया। श्री देवदत्त शास्त्री (स्वामी जी के संबन्धी) ने उन्हें गोद में लिया और ॐ ॐ कहने लगे। स्वामी जी एक वार बड़ी कठिनता से ॐ बोले। अब दस बजकर अट्ठाईस मिनट हो गये थे। उस समय स्वामी जी की कुटिया में मैं, पद्मनाभ, देवदत्त शास्त्री, सोमदेव, ब्रह्मदेव, पं० रविशंकरजी शर्मा, पं० कांचीदत्त शर्मा, इतने व्यक्ति थे! ठीक दस बज कर तीस मिनिट पर प्राणोत्क्रमण हुआ। बस नश्वर देह पड़ा का पड़ा रह गया, स्वामी जी का आत्मा सूक्ष्म शरीर को लेकर न जाने कहां उड़ गया। प्राणपखेरु चक्षु द्वारा निकल गया था इसलिये स्वामी जी की आंखें खुली की खुली रह गईं। बस महाविद्यालय में एक सन्नाटा छा गया। उस करुणाजनक दृश्य को शब्दों द्वारा चित्रित करने के लिये धैर्यशाली हृदय की आवश्यकता है, लेखक तो वर्णन नहीं कर सकता। उसकी आंखों के सम्मुख जब वह सब दृश्य सिनेमा के चित्रपट की भान्ति आते हैं तब वह व्याकुल हो जाता है।

मैं, देवदत्त शास्त्री, पद्मनाभ, सोमदेव आदि ने स्वामी जी के शरीर को दर्भासन पर लिटा कर उस पर शाल डाल दी और दो घण्टे तक सब कुटिया की सफाई की। स्वामी जी के सब गेरुवे वस्त्र एकत्रित किये और उनके ढेर का 'स्वाहा' कर दिया। बढ़ई आया, उसने अर्थी तैयार की, ब्रह्मचारियों ने महाविद्यालय के बाग में से फूलों के ढेर एकत्रित किये, पचासों मालायें बना डालीं। प्रातः ४ बजते ही कनखल, हरद्वार, ज्वालापुर के लोगों के पास स्वामी जी की निधन वार्त्ता सुनाने के लिये दूत भेजे गये और लगभग ७॥ बजे महाविद्यालय में सैकड़ों मनुष्य एकत्रित हुए। शव को स्नानादि करा नये वस्त्र पहिना कर जब बाहिर लाया गया तब उस दृश्य को देखकर बड़ों बड़ों के धैर्य टूट गये। वे बच्चों की भान्ति फूट फूट कर रोने लगे। अब यह श्मशानयात्रा ब्रह्मचारिगण, साधु, सन्त, महात्मा, संन्यासी, वानप्रस्थ गृहस्थ व्यक्तियों के समूह के कारण विचित्र शोभा दे रही थी। अर्थी को कंधा देने के लिये वटुगण स्पर्द्धा से आगे आते रहे। कनखल के पुल के पास स्वामी जी का फोटो लिया गया। एक जगह जलूस का फोटो लिया गया। श्मशान में जलती चिता का फोटो लिया गया। घण्टा--घड़ियाल, शंख आदि की ध्वनि, वेदमन्त्रों की ध्वनि के साथ साथ कनखल के बाजार में से होती हुई यह श्मशानयात्रा श्मशान में पहुंची। अनेक देवियों ने स्वामी के शव की प्रदक्षिणा की। फिर यथा-विधि अग्निसंस्कार हुआ और लोग—

"भस्मान्तꣳ शरीरम्"

कहते कहते स्व स्व स्थान को लौट गये।

पंचपुरी में सर्वत्र शोक था ही किन्तु सर्वत्र आर्यजगत् में जहां जहां यह समाचार पहुंचा वहाँ भी लोग व्याकुल हुए। महाविद्यालय तो अनाथ हो गया था। चारों ओर से शोक, सहानुभूति व समवेदना के पत्रों का तांता बंधा। किस किस को उत्तर देते। किन्तु आगत पत्रों से आर्यजगत् में स्वामी जी किस प्रतिष्ठा से देखे जाते थे, सनातनी पण्डित भी इनका कितना आदर करते थे, इस बात का पता चला। शिष्यमण्डली के पत्रों का समाचार ही न पूछिये। यदि सब पत्रों को अविकल प्रकाशित किया जाय तो इस पुस्तक का आकार-प्रकार द्विगुण करना पड़ेगा। महाविद्यालय में जो सभा हुई थी उसमें इन पंक्तियों के लेखक ने गत पैंतीस वर्ष का वृत्तान्त सुनाते हुए स्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डाला और बतलाया कि यदि तप व स्वाध्याय तेजस्वी हो तो संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है।

मैंने १८९८ मई मास में स्वामी जी के प्रथम दर्शन (पं० गङ्गादत्तशास्त्री थे तब) किये थे, तब से सन् १९३३ सितम्बर ता० २६ रात्रि के १०॥ बजे तक इनका हमारा गुरु--शिष्यभाव सम्बन्ध अटूट रहा। ईश्वर की कृपा से प्रारम्भ से लेकर अन्त तक खूब निभी। उसी परमात्मा का परम अनुग्रह कि ऐसा एक भी अवसर नहीं आया जिसमें हम पर कोई कृतघ्नता का दोष आया हो। हम तो—

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम
गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।
असूयकायानृजवेऽयताय
न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम॥

× × × ×

यमेव विद्या शुचिमप्रमत्तम्,
मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्।
यस्ते न द्रुह्येत्कतमच्चनाह,
तस्मै मा ब्रूया निधिपाय ब्रह्मन् ॥

× × × ×

इत्यादि गुरु-शिष्यभावों के उपासक हैं, रहे हैं और रहेंगे। हम स्वामी जी के पास विनम्र शिष्य होकर ही गये थे। और उनके पास जाने के पूर्व आंग्लशिक्षा के क्रोड में लालित पोषित व प्रभावित हुए थे तो भी स्वामी जी का यह प्रथम दर्शन परिणाम-रमणीय ही रहा, यह हमारे पूर्वजन्म का सुकृत ही है। कहां हैदराबाद दक्षिण, कहां पञ्जाब, कहां म० मुन्शीराम, कहां के स्वामी दर्शनानन्द, कहां के स्वामी शुद्धबोध, कहां के भीमसेन-शर्मा, पद्मसिंह शर्मा, दिलीपदत्तोपाध्याय, और कहां के पं० रविशङ्करशर्मा, यह सब पूर्वजन्म के ऋणानुबन्ध का ही फल है कि हम सब एकत्रित हुए और इसप्रकार जीवन के अत्युत्तम भाग को बिता सके।

अन्य आवश्यक ।

स्वा० जी जब ब्रह्मचारियों को पढ़ाते थे तब व्याकरण की अनेक बातों को लौकिक विषयों में घटा कर उपदेश भी दे डालते थे। इनके छात्रों में बच्चों से लेकर बड़े बूढ़ों तक का समावेश रहता था। प्रातःकाल से रात्रि को सोने तक कोई न कोई आकर बैठता ही रहता था, पढ़ता ही रहता था। पञ्चपुरी के साधु संत, पण्डों के लड़के भी आते थे। उनकी जिन बातों का स्मरण आरहा है लिख रहा हूं—

"समानमीहमानानां चाधीयानानां च केचिदर्थैर्युज्यन्तेऽपरे न तत्रास्माभिः किं कर्त्तव्यम्" (महाभाष्य-नवाह्निक)

देखो सबको एकसा पढ़ाया जाता है, एकसा समझाया जाता है पर कोई झट समझ जाते हैं और बहुत से सिर धुनने पर भी नहीं समझते अब इसमें हम क्या करें।

कर्त्तव्योऽत्र यत्नः (महाभाष्य)।

उनसे कोई छात्र जाकर यह कहे कि अमुक कार्य किया पर ठीक न होसका, अमुक सूत्र समझने का प्रयत्न किया पर समझ में नहीं आया तब मुस्कराकर 'कर्त्तव्योऽत्र यत्नः' इस महाभाष्य के वचन को कहते थे। 'कर्त्तव्योऽत्र यत्नः' यह वाक्य महाभाष्यकार का भी प्रिय वचन रहा है।

मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सतरौ मम

इस श्लोक में "मणीवोष्ट्रस्य" को लेकर महाभारतवर्णित माण्डव्य ऋषि की कथा कह डालते थे।

कोई नवीन छात्र आवे और उनको यह विदित होजाय कि व्याकरण पढ़ा है तो प्रायः परीक्षार्थ निम्नलिखित सूत्र पूछते थे—

"स्थानेऽन्तरतमः"

"स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ"

'प्रत्याहार' की बात भी पूछते।

यस्य येनार्थसंबन्धः,
दूरस्थस्यापि तस्य सः।
अर्थतोऽह्यसमर्थाना-
मानन्तर्यमकारणम् ॥

इसका अर्थ यह है कि जिस शब्द का जिससे संबन्ध है वह रहेगा ही चाहे वाक्य में वह कितनी ही दूरी पर रहे। जिसका जिसके साथ अर्थ संबन्ध नहीं वे शब्द समीप भी पड़े रहें तो निरर्थक हैं।

इसका दूसरा अर्थ यह करते थे, 'भाई संसार में जिसका जिसके साथ संबन्ध है उनमें भीतरी भाव हों तो वे कहीं भी रहें संबन्ध रहेगा ही। जिनका भीतरी प्रेम, स्नेह नहीं वे पास ही रहें तो क्या?'

चित्र सं० १८

महाविद्यालय की गोशाला ।

महाविद्यालय की भोजनशाला ।

स्वा० जी उस छात्र पर परम प्रसन्न रहते थे जो व्याकरण में खूब चलता था। और महाभाष्य का यह वचन बोलने थे—

प्रधानं च षडङ्गेषु व्याकरणम्,
प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति।

षडङ्गों में व्याकरण प्रधान है। प्रधान में किया हुआ यत्न सफल होता है।

कभी २ मौज में दङ्गली लड़कों के साथ भी खेलते थे, उन्हें पकड़ने के लिए दौड़ते तब दृश्य देखते ही बनता था। कभी २ 'अभिवादन' को मना कर देते तब ब्रह्मचारिगण दृष्टि बचाकर 'अभिवादन' करते तब भी बड़ी मौज रहती थी। उद्दण्ड लड़कों को दण्ड भी खूब देते थे। फिर प्यार भी करते थे और कहते थे—

"कुर्वन्नपि व्यलीकानि,
यः प्रियः प्रिय एव सः"

उलटे काम करने पर भी जो प्रिय होता है वह प्रिय ही है।

पुरुषार्थ को प्रधान मानते थे। कहा करते थे पुरुषार्थ से ही दैव बनता है—

दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।

इसी श्लोक के अन्तिम चरण का अर्थ वे इस प्रकार करते थे—

यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोत्र दोषः।

यत्न करने पर भी कार्य न बने तो देखना चाहिये कि क्या दोष रह गया, क्या त्रुटि रह गई।

बातचीत में किसी दुष्ट पुरुष का ज़िक्र कर बैठे तो

"कथा हि खलु पापानाम्,
अलमश्रेयसे यतः" (माघ)

रहने दो, पापियों की कथा कहने में कल्याण कहाँ ?

लोगों की स्वार्थपरता पर प्रायः कहते—

सर्वः स्वार्थं समीहते—(माघ)

सब की दृष्टि अपने ही स्वार्थ पर रहती है।

बातचीत में गीता के प्रायः निम्नलिखित वाक्य आते रहते थे—

"यदा यदा हि धर्मस्य"
"यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वम्"
"न मे भक्तः प्रणश्यति"
"गहना कर्मणो गतिः"
"स्वधर्मे निधनं श्रेयः"
"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः"
"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति"

—इत्यादि।

और भी अगले वाक्य तथा श्लोक स्वामी जी को प्रिय थे—

'कुर्व्वन्नेवेह कर्माणि'—(ईश)

शुभकर्मों को करते हुए सौ वर्ष जीने की चेष्टा करो।

'कृतथ्ं स्मर'— (ईश)

किये हुये कर्मों को स्मरण करो।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"

बलहीन पुरुष आत्मा को नहीं प्राप्त कर सकता।

"आत्मनस्तु कामाय सर्व्वं प्रियं भवति" (बृहदारण्यक)

सब अपने मतलब के लिये ही प्रिय होते हैं।

'भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः' (किरात)

जो मायावी के साथ मायावी नहीं बनते वे मारे जाते हैं।

स पुमानर्थवज्जन्मा— (किरात)

उसी का जन्म सार्थक है जो अद्वितीय हो।

समय एव करोति बलाबलम्— (माघ)

समय ही बलवान् बना देता है, समय ही दुर्बल।

स्वभावो दुरतिक्रमः— (नीति)

सब कोई स्वभावानुरूप कार्य करता है, स्वभाव को छोड़ना कठिन बात है।

विद्यानवद्या विदुषा न हेया,
निरक्षरे वीक्ष्य महाधनत्त्वम्।

मूर्खों के पास प्रभूत धन देखकर विद्वानों को अपनी विद्या को न छोड़ बैठना चाहिये।

"उदेति सविता रक्तम्"

महान् पुरुष संपत्ति और विपत्ति में एक से रहते हैं। सूर्य रक्तवर्ण ही उदय होता है और अस्त समय में भी वही लाली रहती है।

"स्वयं प्रयोगादन्तेवासिभिः विहितः प्रयोगो महिमानमुपचिनोत्याचार्याणाम्" । (अनर्घराघव)

गुरु यदि किसी महान् कार्य को करे तो उसकी इतनी महत्ता नहीं जितनी कि महत्ता उसी कार्य को उसीके शिष्य करके दिखलायें।

सुखासुखे कालकृते— (शङ्करदिग्विजय)

सुख दुःख कालकृत हैं।

चतुर्थे किं करिष्यसि— (नीति)

प्रथम अवस्था में विद्या नहीं पढ़ी, द्वितीय में धनार्जन नहीं किया, तृतीय में धर्मसंचय नहीं किया, चतुर्थ अवस्था में क्या करोगे?

कृशे कस्यास्ति सौहृदम्—(नीति)

संसार में दुर्बल का साथ कौन देता है?

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च,
नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य,
सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ (मनु)

वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप ये दुष्टभाव वाले मनुष्य के सिद्ध नहीं होते।

छायामपास्य महतीमपि वर्त्तमानाम्,
आगामिनीं जगृहिरे जनतास्तरूणाम् ।
सर्वोऽपि नोपगतमप्युपचीयमानं,
वर्द्धिष्णुराश्रयमनागतमभ्युपैति ॥ (माघ)

यह मनुष्यों का स्वभाव ही है कि वर्त्तमान बड़ी से बड़ी छाया को भी छोड़ कर भविष्य में प्रतिक्षण वृद्धि को प्राप्त होने वाली छाया का आश्रय लेते हैं। सब यही करते हैं कि उन्नति की चरमसीमा को प्राप्त हुए आश्रय को छोड़ कर (क्यों कि वह घटने लगती है) अनागत आश्रय लेते हैं क्यों कि वह उन्नतिशाली होता है।

आपके प्रिय ग्रन्थ।

पाणिनीयाष्टक—	मूल पर खूब पढ़ाते थे, अनुवृत्ति आदि रङ्गा देते थे।
महाभाष्य (सम्पूर्ण)—	इसमें भी नवान्हिक, अङ्गाधिकार बड़ी रुचि से पढ़ाने थे। "पूर्वत्रासिद्ध" का भाग भी खूब पढ़ाते थे।
लघुशब्देन्दुशेखर (सटीक)	
परिभाषेन्दुशेखर (सटीक)	
काशिका (पूर्वार्द्ध)	इन जैसे काशिका पढ़ाने वाले शायद कोई भारतवर्ष में होगा।
काशिका (उत्तरार्द्ध)	

मनोरमा ।
वैय्याकरणभूषणसार ।
सिद्धान्तकौमुदी (तत्वबोधिनीसहित)

भट्टिकाव्य—	इस पर आपकी बड़ी भक्ति थी।
माघ ।	
किरात ।	११-१४ सर्ग आपको अधिक प्रिय थे।

युधिष्ठिर विजय ।
न्यायदर्शन (वात्स्यायनभाष्य) मुक्तावली ।
सांख्यदर्शन (शांकरोपस्कार) सांख्यतत्वकौमुदी ।
वेदान्तपरिभाषा ।
योगदर्शन (व्यासभाष्य)
वैशेषिक—(औद्योतकर)
लौगाक्षिमीमांसा ।

निरुक्त—	प्रथम दो अध्याय व दैवतकाण्ड को एक अध्याय, ये तीन अध्याय पढ़ा कर छोड़ देते थे।
यजुर्वेद—	विभ्राट्, पुरुषसूक्त, ४०वां अध्याय।
छन्दः शास्त्र—	इससे आपको तनिक प्रेम नहीं था।
नाटक—	नाटकों में वेणीसंहार को व गद्य नाटक में मुद्राराक्षस को अच्छा समझते थे। प्रबोधचन्द्रोदय को प्रायः देखा करते थे।
महाभारत—	शान्तिपर्व को सैकड़ों वार देख गये होंगे।

रामायण—	प्रायः देखा करते थे।
उपनिषद्—	छान्दोग्य, श्वेताश्वतर।

आश्चर्य है कालिदास के ग्रन्थों से इन्हें कभी प्रेम नहीं हुआ।

नीतिग्रन्थों में—	विदुरनीति, शुक्रनीति को पसन्द करते थे।

अङ्गरेजी व अङ्गरेजी ढंग के कट्टर शत्रु थे।
ज्योतिष में वराहमिहिर को मान देते थे।

शंकरदिग्विजय आपको अत्यन्त प्रिय था, उसका एक श्लोक आप बड़े लटके से कहा करते थे। वह यह है—

विद्यामवाप्यापि विमुक्तिपद्यां,
जागर्ति तुच्छा जनसंग्रहेच्छा।
अहो महान्तोऽपि महेन्द्रजाले,
मज्जन्ति मायाविवरस्य तस्य ॥

आश्चर्य है कि जिस विद्या से मोक्ष तक का द्वार खुल जाता है उस विद्या से लोग जनसंग्रह (लोकैषणा) में पड़ जाते हैं। आश्चर्य, परमाश्चर्य कि माया के, अविद्या के इस जाल में बड़े बड़े फंस जाते हैं।

महाभारत में आपको कोई पात्र प्रिय था तो वह 'भीम' था। आप स्वयं जन्म भर युधिष्ठिर की नीति पर चलते रहे।

ब्रह्मसूत्र (सभाष्य) को आप बार बार देखते थे किन्तु कभी किसी को पढ़ाते नहीं देखा। हाँ एक बार एक संन्यासी को चतुःसूत्री (सभाष्य) कराया था।

भवभूतिका निम्नलिखित वाक्य भी प्रसंगानुरूप दोहराते थे—

उत्पत्स्यते च मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

पर हम कष्ट से अनुभव कर रहे हैं कि उनका समानधर्मा कोई भी दिखलायी नहीं पड़ रहा।

आर्यसमाज के शास्त्रार्थों में योग।

(१)

पं० भीमसेन शर्मा इटावा निवासी के साथ आर्यसमाज का जो महाशास्त्रार्थ आगरे में हुआ था उसमें स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी ने बड़ी सहायता दी थी।

(२)

लाहोर में महात्मा मुन्शीराम जी का पं० गोपीनाथ काश्मीरी मन्त्री सनातनधर्म सभा पंजाब के साथ जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमें भी स्वा० शुद्धबोध व इनके सहाध्यायी श्री सिद्ध जी ने बड़ी सहायता दी।

(३)

बम्बावाला (गुरुदासपुर) में एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ रचा गया था उसमें आर्यसमाज की ओर से स्वा० शुद्धबोध ही थे।

चित्रसं० १९

दर्शनानन्द घाट !

जब तक स्वामी जी पंजाब रहे तब तक बड़े शास्त्रार्थों के अवसर पर (जो प्रायः लेखबद्ध रहते थे) स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी भेजे जाते रहे हैं। प्रमाण ढूंढ कर निकाल देने में, सामयिक उत्तर सुझाने में आप प्रसिद्ध थे। इस प्रकार आप पचासों शास्त्रार्थों में गये। जब से आप गुरुकुल में आये तब से फिर ऐसा योग नहीं आया।

विभिन्न।

यह हम प्रसंगवश कह चुके हैं कि स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी को व्यायाम का बड़ा शौक था। रुग्णदशा को छोड़कर प्रायः वे प्रतिदिन प्रातः व्यायाम करते थे। जब व्यायाम न करते थे ५–६ मील घूम आते थे। जालन्धर, गुजरानवाला में जब रहे दण्ड, बैठक, मुद्गर का ही नियम रहा। कांगड़ी में म० मुन्शीराम जी के सहवास से डंबैल भी करने लगे थे। वे अंग्रेजी खेलों को पसन्द नहीं करते थे, इसलिये ब्रह्मचारियों से भी दण्ड बैठक कराते थे, दौड़ लगवाते थे। जब पहले पहले काशी से आये थे तब कुश्ती भी लड़ते थे।

\+ \+ \+ \+

स्वामी जी ने जब तक संन्यास-दीक्षा नहीं ली थी तब तक बराबर आपको पान स्तुति का अभ्यास रहा। संन्यास के पश्चात् दोनों व्यसनों को अर्द्धचन्द्र मिला।

\+ \+ \+ \+

श्री० स्वा० शुद्धबोध जी उच्चपूति के गुरुभक्त थे। श्री गुरुवर काशीनाथ जी को प्रतिदिन (जब वह काँगड़ी व ज्वालापुर में रहे) अभिवादन करते थे। श्री भाष्याचार्य जी के चरण स्पर्श करते थे। जब स्वा० जी ने संन्यास लिया तब श्री गुरु काशीनाथ जी, स्वा० जी उनसे मिलने आते थे तो, संन्यास के आदरार्थ स्वयं आसन छोड़कर नीचे बैठ जाते थे। श्री पण्डितस्वामी (जिनसे आपने संन्यास लिया था) जी की भी आपने अपूर्व सेवा की। अपने हाथ से भोजन बनाकर खिलाते रहे।

स्वा० जी की क्षमाशीलता पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। कोई इनको कुछ भी कह जाता था तो ध्यान ही नहीं देते थे, पर्वाह ही नहीं करते थे, चुपचाप सह जाते थे—इसका यह फल होता था कि कालान्तर में वे ही व्यक्ति जो स्वा० जी का अपमान करते थे, उनके पास आकर चरण छूकर प्रायश्चित्त कर जाते थे। इनका यही सिद्धान्त रहा कि आक्रोश करने वाले के प्रति आक्रोश न करना चाहिये, चुपचाप सहना चाहिये। इससे श्रोता का कल्याण होता है और आक्रोष्टा स्वयं ही अपने पापों से नष्ट होजाता है।

"आक्रोष्टारं निर्दहति
श्रोता पापैः प्रमुच्यते"

यही सिद्धान्त मनु व विदुर जी का था। ब्राह्मण का कल्याण इसी में है कि वह अपमान के घूंट को चुपचाप पी जाय और सम्मान से विषतुल्य डरता रहे। ब्राह्मण का शरीर क्षुद्र मानापमान के झमेलों में पड़कर नष्ट होने के लिये नहीं, संसार की वासनाओं में पड़कर नष्ट होने के लिये नहीं, अपितु—

"ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं,
क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
इह कृच्छ्राय तपसे,
प्रेत्यानंतसुखाय च ॥"

ब्राह्मण का शरीर इस जन्म में घोर तप तपने के लिये और परलोक में अनन्त सुख पाने के लिये है । वस्तुतः ऐसे ही तेजस्वी ब्राह्मण कुछ कर सकते हैं, नहीं तो विद्या तप के बिना—

विद्यातपोभ्यां यो हीनः,
जातिब्राह्मण एव सः ।

वह नाममात्र का ब्राह्मण है ।

यथा काष्ठमयो हस्ती
यथा चर्ममयो मृगः ।

की-सी ही दशा समझिये ।

❀ ❀ ❀ ❀

ग्रन्थ का संदर्भ लगाने में, प्रकरण की संगति लगाने में आप एक ही थे । काशीवास के दिनों की बहुश्रुतता आपके बड़े काम की वस्तु थी । इस विषय में स्वा० जी व सिद्ध जी की होड़ लगी रहती थी और प्रायः स्वामी जी जीत जाते थे ।

❀ ❀ ❀ ❀

जब स्वामी जी व सिद्ध जी एक स्थान में रहते थे तो सप्ताह भर में दो एक वार इन दोनों मित्रों की चित्त की एकाग्रता में प्रतिद्वन्द्विता हो जाती थी। किसी एक विषय को लेकर दोनों ध्यानावस्थित हो जाते और देखते कि कौन पहले बोलता है, किस का ध्यान अधिक काल तक टिकता है। एक वार दोनों ने "चन्द्र" विषय को लेकर प्रतिद्वन्द्विता की। स्वामी जी मुख ढाप कर लेट गये और सोचने लगे। सिद्ध जी ने मुख खुला रक्खा था। पांच मिनिट भी न होने पाये थे कि सिद्ध जी का एक ब्रह्मचारी सिद्ध जी के पास आकर कुछ पूछने लगा। सिद्ध जी एकदम बोले—पं० जी (स्वामी जी उस समय पं० जी थे) अजी ब्रह्मचारी मेरे सामने आ गया है इस समय रहने दो। पं० जी (स्वामी) खिलखिला कर उठ कर बैठ गये और कहने लगे "वस" ? दोनों का सौहार्द देखते ही बनता था। दोनों का शास्त्र विचार भी देखने योग्य रहता था।

गुरुकुल के दिनों में जब तक रामदेव जी के पदार्पण नहीं हुये थे तब तक म० मुन्शीराम व स्वा० शुद्धबोधतीर्थ जी में बड़ी मित्रता थी। इन दोनों की बातों को, मन्त्रणाओं को कोई नहीं जान पाता था। सब कार्य परस्पर परामर्श से होते थे। परस्पर के मतभेदों को दोनों सन्तोष से सह लेते थे, यही कारण था कि गुरुकुल के प्रथम पांच साढ़े पाँच वर्ष निराबाध व्यतीत हुए।

❀ ❀ ❀

स्वा० जी के अन्तःस्थ शक्त व भक्तजनों में श्री बाबू प्रतापसिंह जी का उल्लेख करना ही पड़ेगा। बा० प्रतापसिंह जी ने काँगड़ी से लेकर, नहीं २ जालंधर से लेकर महाविद्यालय तक पूरा साथ

दिया। कहाँ १८९६ और कहां १९१२, इस क्रूर समय में इतना साथ कौन देसकता है। १९१२ के पश्चात् बाबू जी स्वगृह कार्य से पंजाब गये, फिर नाशिक गये, तबसे अभी तक वहीं हैं। संभवत: लेखक दक्षिणापथ से उत्तरापथ आया और हरद्वार पर अधिकार किया, इसी स्पर्द्धा से उन्होंने दक्षिणापथ के प्रमुख क्षेत्र नाशिक पर अधिकार जमा लिया। बाबू प्रतापसिंह जी विपद्बन्धु रहे, इस बात का कृतज्ञतापूर्वक उल्लेख करना ही पड़ेगा। बाबू जी की कन्याएं श्रीमती सत्यवती देवी शास्त्रिणी, श्रीमती सुनीति देवी, श्रीमती विद्यादेवी, श्रीमती शान्तिदेवी, सब सुशिक्षिता विदुषी हैं, यह प्रसन्नता की बात है। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री ऋषिदेव शास्त्री गृहकार्य में संलग्न हैं और शास्त्रानुसार पितृ-ऋण उतार चुके। दूसरा पुत्र ब्रह्मदेव, ये भी वकालत करते हैं—सारांश बाबू जी का तप भी फल गया। वे भी अब सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त होगये हैं।

❀ ❀ ❀ ❀

स्वा० जी केवल संस्कृत के पण्डित ही नही थे। वे राजनीति की कूट समस्याओं पर भी खूब विचार करते रहते थे। युरोप के महाभारत (जर्मन युद्ध) के दिनों से उन्हें समाचार-पत्रों को पढ़ने का ऐसा शौक लगा कि लोग चकित थे। छात्रों को सदैव देशभक्ति का उपदेश देते रहते थे। महात्मा गांधी आपके रहन-सहन, दिव्य व भव्य मूर्त्ति पर अत्यन्त मुग्ध थे। महात्मा जी को स्वा० जी की कुटिया बहुत पसन्द थी। जब कभी मैं महात्मा गांधी जी से मिलता था तब सबसे प्रथम प्रश्न स्वा० जी के कुशल मङ्गल का होता था। महामना मालवीय जब महाविद्यालय पधारते स्वा०

जी को भक्तिपूर्वक मिलते थे। जब मालवीय जी ने स्वा० जी की निधन-वार्त्ता सुनी तब व्याकुल होकर बोले—"एक बड़ा त्यागी तपस्वी संन्यासी चल बसा"।

श्री बा० जगद्म्बाप्रसाद* जी

का पत्र।

पूज्यपाद श्री स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी महाराज ने (जो संन्यास धारण करने से पूर्व पं० गङ्गादत्त जी शास्त्री के नाम से विख्यात थे) पूर्ण त्यागी बनकर महाविद्यालय ज्वालापुर की जो अनथक सेवा की, वह आर्य्यजनता और महाविद्यालय के प्रेमियों से छिपी नहीं है। अत्यन्त शोक है कि उक्त स्वामी जी ने उसी महाविद्यालय के मोह को त्याग कर इस संसार से अश्विन सुदी ७ सम्बत् १९९० को परलोक गमन किया।

स्वा० जी के वियोग से जो कुछ हानि महाविद्यालय को हुई है उसकी पूर्त्ति तो यद्यपि भविष्य में परमात्मा के अनुग्रह पर निर्भर है, परन्तु इस समय असंभव ही प्रतीत होती है। मेरे स्वर्गीय मामा जी पूज्य श्री बाबू सीताराम जी ने (जिनका चित्र अन्यत्र दिया गया है) जिस समय इस महाविद्यालय को स्वर्गीय पूज्य श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती महाराज जी की प्रेरणा से अपने बाग व बङ्गले में स्थापित किया था, उस समय के मुख्य

---

* आप स्व० बा० सीताराम जी रईस ज्वालापुर के भानजे हैं।

श्रेष्ठ व्यक्तियों में से उपरोक्त स्वामी शुद्धबोधतीर्थ जी ही थे, जो इस समय तक इस महाविद्यालय को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने में अपने जीवन पर्यन्त परिश्रम करते रहे।

स्वर्गीय बाबू सीताराम जी ने अपने १९१२ के व्यवस्थापत्र में स्वामी जी की प्रशंसा उर्दूभाषा में जिन शब्दों में की है, उनको मैं इस स्थान पर ज्यों का त्यों लिखना उचित समझता हूं, क्योंकि उन शब्दों से अधिक दूसरे शब्दों का प्रयोग मेरे लिए कठिन प्रतीत होता है—

श्री बा० सीताराम जी के उद्गार।

"सन् १९०७ में महज़ बदीं ख्याल कि सारी उम्र फिस्क फिजूर में गुजरी आखिर में ही कुछ नेकी का काम होजावे तो बेहतर है, मैंने अपने बाग़ व बंगले व आराज़ियात सहराई वाक़ै क़स्बे ज्वालापुर में बतुफैल स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती महाराज एक तालीमगाह को जिसमें क़दीम ज़माने के रिवाज़ से वेद-शास्त्रों की तालीम मुफ्त ब्रह्मचर्य्यव्रत रखते हुए दी जाती है खोला, और जो अब महाविद्यालय के नाम से मशहूर है। और बाज़ाब्ता कमेटी महाविद्यालय कायम होकर अपनी जायदाद भी बनाम कमैटी मजकूराँ रजिष्ट्री करा दी है।

खुशकिस्मती से पं० गङ्गादत्त शास्त्री, पं० पद्मसिह, पं० भीमसेन, पं० नरदेवशास्त्री वेदतीर्थ जैसे परम संस्कृत-विद्वान् आलिम बाअमल ने इस तालीमगाह में महज़ परोपकार

मद्देनज़र रख कर अपने तमाम मफाद को कुर्बान करके इसके सुधार का बीड़ा उठाया जिनकी बरकत से मेरी आराज़ी व बङ्गला वगैरा से अलावा फराख दिली पबलिक की बदौलत बीघों आराज़ी का इज़ाफ़ा होने के अलावा हज़ारह रुपये की लागत के मकानात और बत गये और महाविद्यालय एक होनहार तालीम-गाह तमाम मुल्क में मशहूर होगया और हर सूबे के विद्यार्थी यहां आकर मुफ्त तालीम पाने लगे।" (वसीयतनामे से उद्धृत)

शोक है कि उपरोक्त चारों व्यक्तियों में से श्री पं० भीमसेन जी व पं० पद्मसिंह जी तो अपना २ कर्तव्य पालन करके पहिले ही स्वर्ग को सिधार गये थे, परन्तु उनके वियोग से जो हानि महाविद्यालय को पहुंची थी उसको पूज्यपाद श्री स्वामी जी ने अपने दिनरात के परिश्रम से महाविद्यालय को अपनी छात्र-छाया में लेकर अधिक अनुभव न होने दिया था। अब स्वामी जी के वियोग के साथ वह कमी भी प्रतीत होने लगी है। महाविद्यालय के इन चारों संचालकों में से जिन्होंने इस वृत्त के सींचने की प्रतिज्ञा की थी अब केवल श्रीमान् पं० नरदेवशास्त्री जी वेदतीर्थ ही बाकी हैं कि जो इस इतिहास के रचयिता हैं और उनकी प्रतिज्ञानुसार अब इन्हीं पर महाविद्यालय की उन्नति का अधिक भार है। परमात्मा से प्रार्थना है कि उन्हें और अन्य स्वामी जी के शिष्यों को जिनके कन्धों पर अब यह भार विशेष रूप से आ गया है, उसके सहन करने के लिये बल, उत्साह, स्वास्थ्य और दीर्घ आयु प्रदान करें जिससे यह महाविद्यालय-रूपी वृत्त जिन आशाओं को रखते हुए लगाया गया है वह पूरी हों।

चित्र सं० २०

महाविद्यालय का देवाश्रम।

महाविद्यालय का ब्रह्मचारिमण्डल।
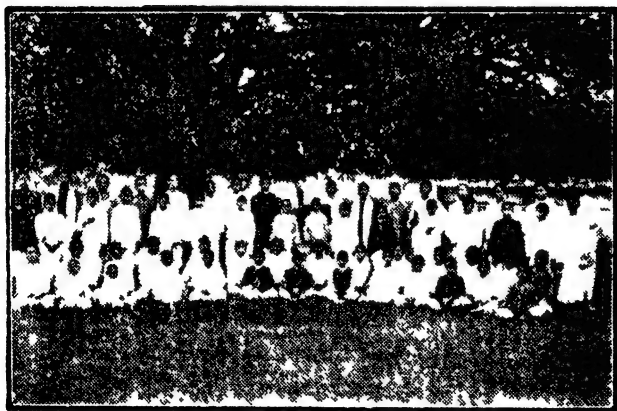
उन्नीस सौ नव्वे विक्रमी संवत् था और आश्विन शुदी।
थी सप्तमी मंगल का दिन, ग्यारह बजे थी रात्रि॥
कर पूर्ण निज कर्तव्य लौकिक शुद्धबोध तपस्वी।
परमात्मा की गोद में जाकर विराजे उस घड़ी॥

उन्नीस सौ नव्वे क्वार सुदि नहर गङ्ग के तीर।
दिन मंगल तिथि सप्तमी शुद्धबोध तजो शरीर॥

श्रद्धांजलि।

(१)

शोक! तूने दैव है यह क्या किया,
क्यों विपति--वज्र हम पर ढा दिया।
क्रूरता करते हया आई नहीं,
क्यों तुझे निष्ठुर दया आई नहीं॥

लूट हमारे लेगया, इक महान सरताज को,
छीना हमसे किसलिये "शुद्धबोध" महाराज को।

(२)

कहां मिलेगी ओजमयी वह सूरत प्यारी,
कहां मिलेगी हाय! मधुरबाणी सुखकारी।

सच्चा सद् उपदेश कहो अब कहां मिलेगा,
संस्कृत माँका श्रेष्ठ रत्न-धन कहां मिलेगा ॥

छोड़ हमें क्यों जा बसे स्वामी जी उस लोक में,
याद आपकी में यहां रोते हैं हम शोक में ॥

(३)

बोलो हे आचार्य ! निठुर हो क्यों मुख मोड़ा,
किसके बल पर कहो 'महाविद्यालय' छोड़ा ।
यह कुलवासी छात्र दुखी तुम बिन हैं सारे,
व्याकुल हो कह रहे कहां हैं पिता हमारे ॥

कुछ तो देने सांत्वना स्वर्गलोक से आइये,
अपने गुरुकुल को कहीं स्वामी भूल न जाइये ।

(४)

हे संस्कृत के सूर्य ! पुनः भारत में आना,
'गणपतिशर्मा' 'भीमसेन' जी को भी लाना ।
महारथी श्री पद्मसिंह जी से जतलाना,
मिटी जात है हिन्दी हिन्द को वेगि पढ़ाना ॥

पूज्य 'दर्शनानन्द जी' के दर्शन की आस है,
सबके स्वागत हित खड़ा प्रस्तुत "गोविन्द" दास है ।

(श्री गोविन्दराम, देहरादून)

९-परिशिष्ट भाग ।

—:०:—

इसमें महाविद्यालयमण्डल के कतिपय विद्वानों व ब्रह्म-चारियों के उद्गार हैं। वाचकवृन्द ब्रह्मचारियों के भावों पर दृष्टि देंगे तो उनकी तुतली बोली में भी, उनके शोकोद्गारों में भी विशेष आनन्द मिलेगा।

—नरदेवशास्त्री

हृदयोद्गाराः ।

शब्दादिशास्त्रविषये मम बुद्धिकौण्ठ्यम्,
योऽपि प्रभूतमतिको विदुषां वरेण्यः ।
प्रत्यादिशत्प्रणयवान् सदयं दयालुः,
तीर्थं नमामि बहुशस्तमु शुद्धबोधम् ॥

(श्रीदिलीपदत्तोपाध्यायस्य)

२

नतजनहितकर्त्ता पालको दीनभाजां,
कपटवनकुठारः शासको नास्तिकानाम,
निगमसमयविज्ञो वन्दनीयो बुधानाम्,
वत ! गत इति स श्रीशुद्धबोधो महात्मा ॥

(श्रीदेवदत्तशास्त्रिणः)

३

विद्यानिधिर्वेदपरायणोऽसा—
वज्ञानभेदी च परावरज्ञः ।
मान्यो यतिभूतदयावतंसः
कालेन हा हन्त ! परत्र निन्ये ॥

(श्रीपद्मनाभस्य विद्याभास्करस्य)

४

धीरः पात्रं गुणानां, विदितगुणगणः प्राच्यरीतिप्रणीति-
प्राग्भाराबद्धरागी यतिकुलगणनापूर्वगण्योऽतिमान्यः।
वक्ता भाष्यस्य विद्वान् मुनिकणभुजा प्रोक्ततन्त्रे स्वतन्त्रः,
वात्सल्याच्छात्रवर्गाहितहितदयया दीप्तदृक् शास्त्रवित्तः॥

योऽभूदार्यसमाजपण्डितकुलग्रामेऽग्रगण्यः सदा,
नित्यं यश्च फणीन्द्रभाणितमतं प्रेम्णा समध्यापयन्।
सोऽयं व्याकृतितन्त्रके सुरगुणान् कर्त्तुं प्रवीणान् गतः,
नाकं, नाकिगुरोः समो विजयते श्रीशुद्धबोधो गुरुः॥

(श्रीसत्यव्रतशास्त्रिणः)

५

क्व चासौ श्रीमान्यो,
धवलगुणराशिः सितमतिः,
ममामन्दाज्ञानं,
निजकिरणधारैरपनयन्।
क्व यातश्छात्राणाम्,
अनवरतदुःखापहरणः,
अरे दुष्टा दीपाः
कथमिह तु मौनं कलयथ॥

निराशानामाशा,
विगलितमतीनां शुभमतिः,

शरण्यानां साधुः,
ह्यगतिकजनानां ननु गतिः ।
सहायोऽनाथानां,
शरणमपि चासौ भयवताम्,
क्व चाद्य प्रायाद् भोः,
रजनि ! वद, धैर्यं कलय मे ॥

(श्रीप्रेमचन्द्रकाव्यतीर्थस्य)

६

नाभिषेको न संस्कारः
सिंहस्य क्रियते वने ।
विक्रमार्जितसत्त्वस्य,
स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥

इत्यस्योदाहरणीभूतोऽस्माकमाचार्याः क्व गताः ?

शतेषु जायते वीरः
सहस्रेषु च पण्डितः ।
वक्ता दशसहस्रेषु,
त्यागी भवति वा न वा ॥

क्व वा तादृशस्त्यागी दृश्यते येन तादृशं पदं, गोवर्द्धन-मठाधिपत्यमपि परित्यक्तं महाविद्यालयप्रेम्णा ।

(लक्ष्मीनारायणशर्मणः विद्याभास्करस्य)

७

अस्माकमाचार्यः स्वसदनमपवर्ज्य समित्पाणिः सन् विद्यापीठभूतां वाराणसीमुपागतः। तत्र च ब्राह्मणकुलकलङ्कमूर्खत्वमपास्तुं यतमानो "मुखं वै व्याकरणम्" इति मत्त्वा प्राधान्येन तस्याध्ययने परिश्रमं विधाय अनन्तपारस्यापि शब्दशास्त्रस्य पारमुत्तीर्य गहनभाष्यतत्त्वभूतामग्रभूमित्त्वमवाप। अधीत्य च चत्वारिंशद्वर्षपर्यन्तमध्यापयामास। तथा च तादृशस्य अखिलशास्त्रपारावारपारङ्गमस्य शब्दशास्त्राध्यापनधुराधौरेयस्य विद्वद्गोष्ठीषु अग्रगण्यस्य महाविद्यालयसदृशविशालकुलस्य कुलपतेरस्माकमाचार्यस्य निधनशोकपूरेणापूरितानि हृदयान्यस्माकमिति ......मन्थरतां प्रयाति मदीया लेखनी, बाष्पवर्षां विमुञ्चतश्च चक्षुषी, अम्बुप्रतिबिम्बे दिवाकरकर इव कम्पते मे करः, अतो न पारयामि लिखितुमधिकमिति।

वाचस्पत्युपनामधेयस्य
ब्र० रामचरणशर्मणः हिन्दीविद्वत्कलासंपादकस्य

८

दोषान्धकारमिहिरं,
महिमानवद्यम्,
वन्द्यं विचक्षणगणैः,
शरणैकमात्रम्।
त्रासं सपत्नसरसां,
विदुषां सगन्धं,
तं सत्यसन्धविबुधं,
हृदि धारयामः॥

भक्त्या भावुकभक्तभावभरिताः,
शिष्यास्तु श्रद्धायुताः,
छात्रत्राणरतं स्वलाभविरतं,
संस्थाश्रितौ संस्थितम् ।
सन्ध्यातेश्वरमास्तिकाध्वशरणं,
स्वान्तेषु वन्दामहे,
शान्तं दान्तमवद्यवादिदलनं
श्रीशुद्धबोधं गुरुम् ॥

भारतमातरमुद्दिश्य—

भूभारहारकममुं,
जननेत्रचन्द्रम् ,
दुःखापसारणसमर्थ—
मसावसूत ।
मातस्तवैव विमले,
सुखदेऽशयिष्ट,
क्रोडे, चिराय नियतेः,
नियमात्सुबोधः ॥

(श्रीरणवीरवर्मणः
विद्वत्कलापरिषन्मन्त्रिणः)

९

सुधाधाराधारैः,
सरसमधुरैरेवमुचितैः,

चित्र सं० २१

महाविद्यालय के आचार्य वृक्ष के नीचे पढ़ा रहे हैं।

महाविद्यालय का अध्यापक तथा कार्यकर्तृ मण्डल

पुनानः सर्वान्नः,
सततमुपदेशैः गुरुवर !
विहायास्मान् बालान्,
व्रजसि सहसैवात्र रुदतः,
कुतोऽसौ नेदानीं,
वदति तव वाणी बहुगणा ॥

[श्रीविद्याभास्कररामदत्तशास्त्रिणः]

(१०)

धन्यास्ते गुरवः ये परोपकाराय त्यजन्ति स्वार्थम्, उपदिशन्ति च वर्णिवर्गान्, कुर्वन्ति चाहरहस्तपोऽनुष्ठानम, वात्सल्येनाध्यापयन्ति निर्धनानपि। एतादृशानां गुरूणां चर्यया55दायभक्तियोगम्, निःस्वार्थवात्सल्यम, गीर्वाणवाण्यनुरागम्, त्यागवृत्तिम्, स्वाध्यायतत्परताम्, प्राचीनसभ्यताम्, शारीरिकसंपत्तिम्—विचाय च स्वात्मनि कर्त्तव्यं यथायथम, विश्वसिमि यदि च वयमाचार्यकृतोपदेशमात्मन्यारोपयिष्यामस्तर्हि पुनरप्यवतरिष्यति सोऽस्माकं मध्ये, आनन्दयिष्यति चास्मान मुहुर्मुहुः। नो चेत् हाहेति कुर्वन्तो वयं कालान्तरेण विस्मरिष्यामो पूज्यतमान अपि गुरुचरणारविन्दानिति।

[श्रीविद्याभास्करगौरीशङ्करशर्मणः]

(११)

आर्यावतंसकुलभूषणसर्वपूज्यः,
सच्छास्त्रमण्डननिरस्तकुशास्त्रभावः।
विख्यातशुभ्रयशसामिह चाग्रगण्यः,
हा हन्त ! हन्त ! गतवान् वत शुद्धबोधः॥

छात्रप्रियः खलु सनाढ्यकुलावतंसः,
गाम्भीर्यधैर्यविनयादिगुणालयोऽस्मान् ।
सर्वान् विहाय विदुषो वरवर्णिसंघान्,
हा हन्त ! हन्त ! गतवान वत ! शुद्धबोधः ॥

स्वार्थं विहाय भवता नु कृशानुकल्पम्,
कार्यं कृतं गुरुकुले गुरुवर्यवर्य !
त्यक्त्वा गृहं, स्वपदवीं कृतकृत्य! हित्त्वा,
हा हन्त ! हन्त ! गतवान् वत ! शुद्धबोधः ॥

[आयुर्वेदाचार्यस्य
श्रीशिवदत्तशर्मणः]

(१२)

गच्छन्तमुद्वीक्ष्य तमेव 'भास्करं'१
'पद्मो'२ मिमीलेत्क्षणमेव तत्क्षणम् ।
'पद्मः' प्रयातीति विचार्य 'शङ्करः'३,
उज्भाञ्चकार श्वसनानि 'शङ्करः' ॥

विद्यैकसिन्धुर्धृतिमान् महात्मा,
बन्धुर्बुधानां भुवि योऽद्वितीयः ।
गृहं गुणानां, तनु कोविदानां
गुरुः प्रयातो वत ! शुद्धबोधः ॥

१—श्री १०८ स्वा० भास्करानन्दसरस्वती (पं० भीमसेनशर्मा आगरा निवासी) । २—श्री पं० पद्मसिंह शर्मा ।
३—कविताकामिनीकान्त श्री पं० नाथूरामशंकरशर्मा ।

शब्दोदधौ यः किल केलिकारी,
चित्ते बुधानां बहुमोदकारी ।
सत्यव्रती वैदिकब्रह्मचारी,
हा ! हा ! प्रयातः क्व महोपकारी ॥

कलौ काले श्रृण्मो,
भवति खलु पुंसां हि कुमतिः,
ततः किं, देवानाम्,
अपि मतिरतीव प्रगलिता ।
सुराणामास्थान्यां, ४
भवति न सखे ! किं गुरुवरः,
यतस्तस्माच्छीघ्रं,
नयति गुरुबोधं कथमितः ॥

(श्री ब्र० विश्वनाथशर्मणः,
अष्टमश्रेणीस्थस्य)

(१३)

निदाघकालेष्वभितप्तशाखिनः,
ऋतौ वसन्ते च यथा सपल्लवाः ।
तथैव देही परिवर्जयज्जगत्,
स्वकर्मणा विन्दति देहमन्तरम् ॥

दिवि दर्शितलोकविक्रमो,
रविरप्येति रसातलं यदि ।
किमु विस्मय एव तन्यते
सुरलोकं समधिश्रिते गुरौ ॥

४—आस्थानी=गोष्ठी, परिषद् ।

चपलाश्चपला इव च्छलाः,
बलवल्लोकसमाश्रयाः श्रियः ।
चपलं खलु लोकजीवितम्,
चपलं विश्वमिदं चराचरम् ॥

इति सारधियो वटवः सततम्,
परिचिन्त्य नरस्य विनश्वरताम् ।
न कदाचन चेतसि सन्दधताम्,
शुचमत्र यशःसुखशान्तिहरम् ॥

[विद्याभास्कररमेशचन्द्रब्रह्मचारिण
संस्कृतविद्वत्कलोपसंपादकस्य]

(१४)

श्च्योतन्सूक्तिसुधां सुधाधर इव,
प्रल्हादयन्मानसम्,
मानामानधनाधनाप्रतिहत—
प्रायो यशोज्योत्स्नया ।
गण्यैः शिष्यगणैः सदा कुमुदवत्,
यः सर्वतः संश्रितः,
हा ! लोकान्तरमाश्रितो यतिवरः,
श्रीशुद्धबोधो गुरुः ॥

मनोवाक्कायैर्यो,
वटुगणहिताकाङ्क्षणपरो,
नृणामेनःकर्षी,
बहुलमुदवर्षी बुधवरः ।

पदज्ञानी मानी,
निखिलजनवन्द्यो यतिपतिः,
चकाशे चाकाशे,
किमिह भुवि वा श्रीकुलपतिः ॥

यो ज्ञानिनां ननु विभावसुवद् विभाति,
विद्यालये विदितवेदविदां वरेण्यः ।
स्वर्गस्थितं गुरुमिव प्रसमीक्षितुं किम्,
श्रीभीमसेनबुधवर्य्यमनुप्रपेदे ॥

यः शास्त्रिणां ननु दिवाकरवच्चकास्ति,
वेदादितीर्थपदभाग् हरिदत्तशास्त्री ।
तस्यापि यो गुरुरभूद् भवभूतिभावः,
हा ! सांप्रतं वत गतः क्व महानुभावः ॥

यस्याप्रमत्तधिषणो नरदेवशास्त्री,
विज्ञानवीर्यविभवार्यगुणो मनीषी ।
शिष्यो, यशस्ततिमिह प्रतनोति यस्य,
हा ! सांप्रतं वत गतः क्व यतिर्मनस्वी ॥

शान्त्यैकमूर्त्तिश्च सतां वरिष्ठः,
वेदान्तविन्नन्दकिशोरशास्त्री ।
यस्यास्ति शिष्यः प्रतिबिम्बरूपः,
हा ! शुद्धबोधः स दिवं प्रयातः ॥

सत्यव्रताचरणसत्यव्रताभिधानः,
विज्ञानधैर्यधनिकार्यकुलाभिमानः

शिष्यः सुधीर्वितनुते हि यशांसि यस्य,
हा ! सांप्रतं वत गतः क्व महानुभावः ॥

अन्ये च ये निखिलशास्त्रकृतावगाहा,
विज्ञानधामधनिका धृतिधर्मनिष्ठाः ।
शिष्याः समस्तभुवि यस्य यशःस्वरूपाः,
हा ! सांप्रतं वत गतः क्व महाप्रभावः ॥

श्रीशिवदत्तशर्मणः
संस्कृतविद्वत्कलासंपादकस्य ।

(१५)

न दृश्यते क्वापि तादृशोऽन्तेवासिवत्सलः, यं साम्प्रतमासाद्य सन्तापसंदीपितमानसा वयं समाश्रयामः । न क्वापि विलोक्यते तादृशः संस्कृतभाषानुरागी यो भूयोभूयोऽपि प्रेरयेद् वटुवृन्दं देववाणीव्यवहाराय । नावलोक्यते तादृशो जनो यो भवत्पदपूर्त्तिं विधातुमलं भवेत् । छात्रसमुदायोऽयं भवादृशं गुरुमनासाद्य शोकव्याकुलितं मानसं सान्त्वयति कथंकथमपि—हे शुद्धबोध, गुरो, कदा पुनः स्वशुद्धबोधामृतेन अस्माँस्तारयिष्यसि, अस्मान् तमसः पारं नेष्यसि, देहि नः प्रतिवचनम् ॥

[ब्र० कपिलदेवस्य
अष्टमीश्रेणीसंस्थितस्य]

(१६)

श्री शुद्धबोधतीर्थे,
स्वामिनि निर्वाणपदमुपारूढे ।

हा हन्त ! हन्त ! हन्त !

निर्वाणः शुद्धबोधदीपोऽद्य ॥

देवगिरः सर्वोत्तम-

विद्यागुरुरिति विचार्य किं देवैः ।

देवानध्यापयितुं,

स्वर्लोके सादरं नीतः ॥

[श्रीरामगोपालशर्मणः]

श्रद्धाञ्जलि ।

[भगवत्प्रसाद शुक्ल 'सनातन' स० सम्पादक विकास, सहारनपुर] ।

थे प्रकाण्ड पण्डित यू० पी० के,
सच्चे गुरु आदर्श महान ।
समसुच वे व्याकरण-सूर्य थे,
किया जन्मभर शिक्षा-दान ।।

सदाचार की प्रतिमा थे वे,
संन्यासी थे विषय-विरक्त ।
वैदिकता के थे हिमायती,
भारतीयता के दृढ़ भक्त ।।

उनके शिष्य असंख्य आज भी,
विद्यमान विद्वान महान ।
अपनी गुण-गरिमा से करते,
अपने गुरु का कीर्ति-वितान ।।

मुझ जैसे लघु सेवक ने भी,
प्राप्त किया था उनका प्यार ।
स्वर्गस्थित आचार्यचरण को,
हो मम श्रद्धाञ्जलि स्वीकार ।।

चित्र सं० २२

स्वामी शुद्धबोध सहित महाविद्यालय की मण्डली।

चित्र सं० १४

मास्टर सा० आत्माराम जी अमृतसरी।
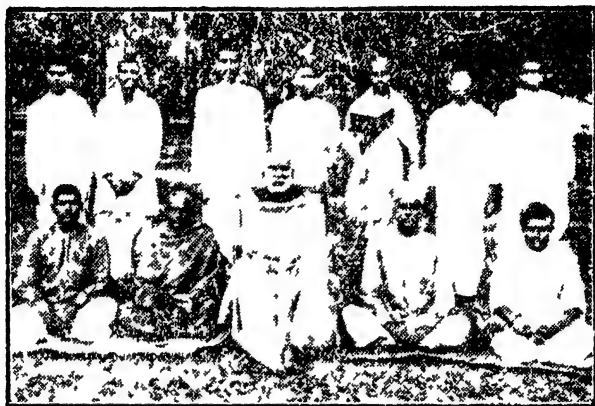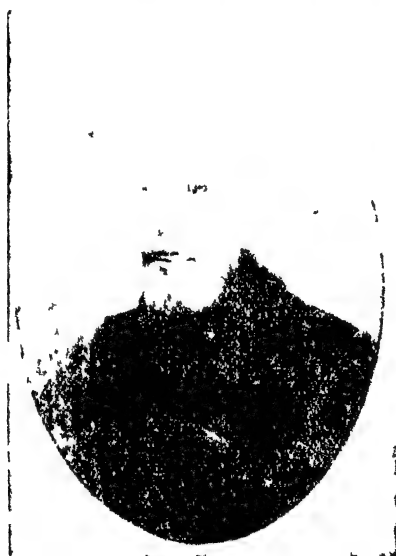
२-परिशिष्ट भाग ।

शिष्य-उपशिष्य-प्रशिष्य

नामावली ।

स्वामी जी के शिष्य-प्रशिष्यों की अविकल नामावली देना कठिन कार्य है। उत्तरभारत में जहाँ तक सम्भव था प्रत्येक शिष्य का नामधाम जानने का प्रयत्न किया है। जिनका ठीक ठीक पता लग सका उन्हीं का नाम प्रकाशित किया गया है।

स्वामी जी के शिष्य-प्रशिष्यों की नामावली इतनी बड़ी है कि ग्रन्थ-विस्तारभय से हम उसको प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। काँगड़ी में प्रथम पांच वर्षों में जो ब्रह्मचारी विद्यमान थे वे अब जाने कहाँ कहाँ हैं।

नरदेवशास्त्री

❀ ॐ तत्सत् ❀

स्वामी शुद्धबोधतीर्थ-

शिष्य-प्रशिष्य-नामावली

१ स्व० कविराज पण्डित सीतारामशास्त्री, रावलपिण्डी।
२ स्व० पण्डित भीमसेनशर्मा आगरा निवासी (मुख्याध्यापक महाविद्यालय ज्वालापुर)
३ स्व० पण्डित पद्मसिंहशर्मा साहित्याचार्य (सम्पादक भारतोदय, ज्वालापुर)
४ श्री पं० विष्णुमित्र जी गुरुकुल कुरुक्षेत्र।
५ ,, विश्वामित्र, होशियारपुर।
६ ,, भक्तराम डिंगा (पञ्जाब)
७ ,, पं० नन्दलाल व्यास गुजराती, धर्मकोट (पंजाब)
८ स्व० श्री पं० कृष्णदत्तशर्मा रायकोट (पंजाब)
९ श्री पं० सूर्यदत्तशर्मा चित्रकूट (यू० पी०)
१० ,, कुं० कामतासिंह रईस, भारौल (मैनपुरी)
११ ,, परमानन्द पूज्य, गुजरानवाला (पञ्जाब)
१२ ,, गोकुलचन्द विद्यार्थी (पञ्जाब)
१३ ,, पण्डित जयदत्तशर्मा, लोहाघाट अल्मोड़ा।
१४ ,, ब्र० आनन्दप्रकाश व्याख्यानभास्कर नगर-भरतपुर-वासी (महाविद्यालय ज्वालापुर)
१५ स्व० श्री पं० चिरंजीलालशर्मा, नगर-भरतपुर।

१६ श्री पं० दिलीपदत्तोपाध्याय, किशनपुर पोस्ट छौलस जि० बुलन्दशहर।
१७ श्री स्वामी सदानन्द जी (वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर)
१८ ,, ,, सदानन्दतीर्थ (रुहालकी-रुड़की)
१९ ,, ,, मुक्तानन्दतीर्थ (ज्वालापुर)
२० ,, ,, घनानन्दतीर्थ चक्रवर्त्ती किरठल (मेरठ)
२१ स्व० श्री पण्डित दीनानाथशास्त्री नूरमहल (जालन्धर)
२२ श्री पण्डित भगवानस्वरूप जी न्यायरत्न स्टेट शाहपुरा।
२३ ,, ब्र० कन्हैयालाल डीग-भरतपुर (संप्रति नरवर)
२४ ,, पण्डित जीवनदत्तशर्मा सञ्चालक, संस्थापक, साङ्गवेद-विद्यालय नरवर नरोरा-राजघाट।
२५ ,, चन्द्रगुप्तशास्त्री बेलोन (बुलन्दशहर)
२६ ,, कविराज सोमगुप्त वैद्यभूषण बेलोन बुलन्दशहर।
२७ ,, पण्डित रुद्रदत्तशर्मा बेलोन--बुलन्दशहर।
२८ ,, पण्डित हरिशङ्करशास्त्री कुल्लू (पञ्जाब)
२९ ,, ऋषिदेवशास्त्री (सुपुत्र बाबू प्रतापसिंह जी भैरोवाल, होशियारपुर, पञ्जाब)
३० वैद्यरत्न पंडित रामगोपालशर्मा गोपाल औषधालय बदायूं।
३१ श्रीमती सत्यवती शास्त्रिणी
३२ श्रीमती सुनीतिदेवी
३३ श्रीमती विद्यावती विशारदा
} सुपुत्री बाबू प्रतापसिंह जी भैरोवाल-होशियारपुर (पञ्जाब)
३४ स्व० विद्याभास्कर पंडित विश्वनाथशास्त्री रत्नगढ़ बिजनौर
३५ श्री विद्याभास्कर पंडित विश्वनाथशास्त्री न्यायव्याकरणतीर्थ (मुख्याधिष्ठाता महाविद्यालय)
३६ ,, विद्याभास्कर पण्डित रामावतारशास्त्री मीमांसाचार्य

वेदान्ततीर्थ, रत्नगढ़ बिजनौर।

३७ ,, विद्याभास्कर पण्डित उदयवीरसिंहशास्त्री न्यायसांख्य-तीर्थ, वेदरत्न (बनैल-पोस्ट पहासू जि० बुलन्दशहर)

३८ ,, विद्याभास्कर पण्डित सूर्यकान्त एम० ए० प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहोर।

३९ ,, विद्याभास्कर पण्डित काशीनाथ शर्मा काव्यतीर्थ (सुपुत्र पण्डित पद्मसिंहशर्मा)

४० ,, विद्याभास्कर पण्डित चन्द्रदत्तशास्त्री काव्यतीर्थ (नयावांस-अछनेरा—आगरा)

४१ सरस्वतीभूषण श्री पण्डित दुर्गादत्तशास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल०—अमृतसर।

४२ विद्याभास्कर पण्डित वासुदेवशर्मा सांख्यरत्न खुरजावासी महाविद्यालय—ज्वालापुर

४३ विद्याभास्कर पण्डित गौरीशङ्करशर्मा, सरदारशहर बीकानेर।

४४ श्री विद्याभास्कर पण्डित नन्दकिशोरशास्त्री (मुख्याध्यापक महाविद्यालय)

४५ श्री विद्याभास्कर पंडित हरिदत्तशास्त्री पञ्चतीर्थ (आचार्य महाविद्यालय)

४६ विद्यारत्न पंडित विश्वनाथशास्त्री काव्यतीर्थ (आचार्य गुरुकुल वैद्यनाथधाम विहार)

४७ प्रो० मनोरञ्जन एम. ए. हिन्दूविश्वविद्यालय काशी।

४८ विद्याभास्कार पंडित हरिशङ्करशास्त्री न्यायतीर्थ अफजलगढ़ बिजनौर (महोपदेशक महाविद्यालय)

४९ सरस्वतीभूषण पंडित सत्यव्रतशास्त्री ऊमरी—धामपुर (अध्यापक महाविद्यालय)

५० विद्याभास्कर पंडित रामदत्तशास्त्री, रहरा--मुरादाबाद ।
(अध्यापक महाविद्यालय)

५१ विद्याभास्कर पं० जयनारायणशास्त्री, फीरोजाबाद--आगरा
[अध्यापक महाविद्यालय]

५२ विद्याभास्कर पं० लक्ष्मीनारायणशर्मा रुड़की ।
[अध्यापक महाविद्यालय]

५३ विद्याभास्कर श्री लक्ष्मीधर जी फैजुल्लापुर—बरेली ।

५४ स्व० सरस्वतीभूषण मानपाल वर्मा [बहादरपुर]

५५ न्यायभास्कर पं० बलदेवशास्त्री न्यायतीर्थ [महेवड़ रुड़की]

५६ विद्यारत्न श्री पं० नारायणरावशास्त्री [सांगली महाराष्ट्र]

५७ विद्यारत्न साहित्याचार्य पं० विष्णुदत्तशास्त्री एम० ए०
[हरदोई]

५८ विद्यारत्न देवशर्मा [सोरखा—हरदोई]

५९ विद्यारत्न साहित्याचार्य पं० धर्मनाथशास्त्री अध्यापक
सनातनधर्म कालेज कानपुर ।

६० श्री रामस्वरूप शास्त्री काव्यतीर्थ, [हरदुआगञ्ज] अध्यापक
अहीर हाईस्कूल रेवाड़ी ।

६१ विद्यारत्न प्रो० बलजित् शास्त्री एम० ए० [असगरीपुर
नूरपूर-बिजनौर] डी० ए. वी. कालेज होशियारपुर ।

६२ विद्यारत्न श्री पं० व्यासदेवशास्त्री एम. ए., एल. एल. बी.
[अम्बेहटा-सहारनपुर] ।

६३ विद्यारत्न श्री पं. दिनेश शास्त्री [बरेली]

६४ विद्यारत्न श्री पं. रणवीरशास्त्री डी. ए. वी. स्कूल लाहोर ।

६५ विद्यारत्न श्री पं. रघुवीरशास्त्री अध्यापक गुरुकुल कुरुक्षेत्र ।

६६ विद्यानिधि श्री पं० भगीरथशास्त्री अध्यापक गुरुकुल कांगड़ी

६७ श्री पं० प्रेमचन्द काव्यतीर्थ [पूंडरी-करनाल]।

६८ श्री विद्यारत्न रामचन्द्र जी सिद्धान्तभूषण आचार्य गुरुकुल हुशंगाबाद ।

६९ विद्यारत्न पं० राघवेन्द्रशास्त्री मुख्याध्यापक ब्रह्मचर्य्याश्रम, वेदविद्यालय टोकाघाट फरुखाबाद।

७० विद्यारत्न नरेन्द्रनाथशास्त्री अध्यापक मिशन हाईस्कूल मैनपुरी ।

७१ कविराज श्री पं० ऋषिदेवशास्त्री [अध्यापक महाविद्यालय]

७२ श्री पं० धर्मदेवशास्त्री अध्यापक कलानौर स्कूल रोहतक।

७३ श्री पं० वेदपालशास्त्री बी० ए० अध्यापक हाईस्कूल बड़ौत-मेरठ।

७४ विद्यारत्न भगवानजीवनजी [बम्बई]।

७५ आयुर्वेदभास्कर पं० हरिशंकरशर्मा वैद्यराज [मेरठ]।

७६ आयुर्वेदभास्कर पं० शिवव्रत शर्मा विद्याभूषण [हृषीकेश]।

७७ आयुर्वेदभास्कर पं० रामशंकर शर्मा आयुर्वेदाचार्य [काशीपुर] ।

७८ विद्याभूषण पं० विश्वेश्वर जी शर्मा [शाहपुर स्टेट]।

७९ कविराज श्री पं० हरदत्तशास्त्री आयुर्वेदाचार्य [डिब्रूगढ़, आसाम] ।

८० सांख्यरत्न पं० रामरक्ष शर्मा [सीवनी-छपरा]।

८१ विद्याभूषण श्री भीमसेन शास्त्री एम० ए० [कोटाराज्य]।

८२ श्री पं० श्रुतिकान्तशास्त्री वेदतीर्थ [गुजरात पंजाब]।

८३ विद्याभूषण पं० रुद्रदत्त शर्मा महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि-सभा यू० पी०

८४ विद्याभूषण श्री बुद्धेश्वर जी अध्यापक गुरुकुल कांगड़ी।

८५ श्री पं० भूपालसिंह शास्त्री (जैतरा-धामपुर)

८६ आयुर्वेदभास्कर श्री पं० भगवद्देव आयुर्वेदाचार्य (धौलाना-मेरठ)

८७ श्री विद्याभूषण पं० महेन्द्रनाथशास्त्री सांख्ययोगतीर्थ (हलधरू-सूरत)

८८ वैद्यभूषण श्री जयदेवजी आयुर्वेदोपाध्याय (संगरिया मंडी-बीकानेर)

८९ वैद्यभूषण पं० ज्योतिःस्वरूपजी (लण्ढौरा)

९० विद्याभूषण पं० वेदव्रत जी देसाई बलसार-सूरत)

९१ वैद्यभूषण पं० आर्यव्रतशर्मा कविराज (हल्दौर)

९२ वैद्यभूषण श्री० रामप्रसाद जी भोगपुर-सुलतानपुर (सहारनपुर)

९३ श्री पं० वेदव्रतशास्त्री (आंवला-बदायूं)

९४ " " देवेन्द्रशास्त्री सांख्यतीर्थ मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल सिकन्दराबाद।

९५ " अनंतभास्कर खर्डीकर काव्यतीर्थ (नासिक)

९६ आयुर्वेदविशारद श्री भद्रगुप्त रसशास्त्री (तिलहर)

९७ श्री केशवशरण जी रईस मवानाकलाँ-मेरठ।

९८ श्री पं० देवदत्तशास्त्री व्याकरणाचार्य अध्यापक मुक्तिपीठ कनखल।

९९ श्री विद्यावाचस्पति प्रो० जयचन्द्रशास्त्री एम० ए० (वजीराबाद)

१०० स्व० विद्याभास्कर पं० रुद्रदत्तशर्मा (उन्नाव)

१०१ " श्री पं० भगवद्दत्तशर्मा साहित्यरत्न (उन्नाव)

१०२ " श्री कविराज केशवदेवगुप्त (कोटकादर, नजीबाबाद)
१०३ श्री कवि महारणीशंकर जी कन्या गुरुकुल बडौदा।
१०४ " देवेन्द्र जी गुप्त विद्याभास्कर बुकडीपो काशी (काशीपुरनिवासी)
१०५ " भद्रसेन जी विद्यारत्न (थानाभवन)
१०६ " पण्डित कृपाशंकरशास्त्री आयुर्वेदभास्कर (गाजियाबाद)
१०७ " पण्डित मुक्तदेवशास्त्री मवई-दौलतपुर-(बुलन्दशहर)
१०८ " कविराज जगदीशप्रसाद गुप्त (नगीना)
१०९ श्री माधव जी शर्मा [गुजरात]
११० ,, व्याकरणविशारद दामोदरउणी [ट्रावनकोर]
१११ ,, पं० विष्णुशर्माशास्त्री बी० ए० [भोपा-मुजफ्फरनगर]
११२ विद्याभूषण श्री पं० ज्वालाप्रसादजी साहित्यशास्त्री, [जरार पो० बाह, आगरा]
११३ विद्याभास्कर पं० आत्मारामशास्त्री [मिरजापुर लक्सर]
११४ विद्याभूषण श्री रामचन्द्र पटेल [हलधरु सूरत]
११५ वैद्यभूषण वैद्यशास्त्री पं० रामकृष्ण आयुर्वेदविशारद-गढ़वाल
११६ स्व० विद्यानिधि पं० चारुदत्तशर्मा [विलासपुर-रामपुरस्टेट]
११७ श्री स्वामी विवेकानन्द जी महोपदेशक [महाविद्यालय--ज्वालापुर]
११८ ,, स्वामी विज्ञानदेवतीर्थ [हरद्वार]
११९ स्व० श्री सत्यव्रतशास्त्री [सरदारपुर-मुरादाबाद]
१२० श्री पंडित उदयचन्द्र जी वैद्य [रायकोट]
१२१ ,, पंडित शिवदत्तशर्मा आयुर्वेदाचार्य [श्री पंडित हरदत्त-शास्त्री पञ्चतीर्थ के भाई]
१२२ ,, अभयसिंह परैरा निगेम्बो [लङ्का]

१२३ ,, विद्याभास्कर पद्मनाभ—ट्रावनकोर।
१२४ ,, पंडित शिवदत्तशास्त्री हलोलपुर छतारी-बुलन्दशहर।
१२५ ,, ब्र० भगवत्प्रसाद बनत-मुजफ्फरनगर।
१२६ ,, विश्वम्भरनाथ आयुर्वेदविशारद, फरीदपुर बरेली।
१२७ ,, ज्योतिःस्वरूप जी गुप्त, पहासू—बुलन्दशहर।
१२८ ,, कुन्दनलाल जी गुप्त भोगपुर—देहरादून।
१२९ ,, दयालचन्द्र गुजराती [सूरत]
१३० ,, पंडित मुरारीलाल शर्मा वैद्यविशारद [जहांगीराबाद]
१३१ ,, महेन्द्रशास्त्री मुरारी एण्ड को० देहली।
१३२ ,, पंडित राजेन्द्रशास्त्री डी० ए० वी० स्कूल रायसीना देहली
१३३ स्व० श्री पण्डित दीपचन्द आयुर्वेदाचार्य [बेलोन]
१३४ साहित्यरत्न श्री पण्डित वाचस्पतिमिश्र [रुड़की]
१३५ विद्याभास्कर भूदेव जी रैनी-काँठ।
१३६ विद्याभास्कर पण्डित ओमप्रकाश शास्त्री।
१३७ विद्याभास्कर पण्डित रमेशचन्द्रशर्मा।
१३८ ,, ,, ओमप्रकाश देववन्दो।
१३९ विद्यारत्न केशवदेव गुप्त [बुढाना]
१४० श्री पण्डित रामप्रसादशर्मा वैद्यरत्न [मोगा]
१४१ ,, ,, शिवशर्मा वावन [हरदोई]
१४२ ,, विद्याभास्कर पण्डित हरिश्चन्द्र शास्त्री [रायकोट]
१४३ ,, पण्डित धनपाल विद्याभूषण [बहादरपुर]
१४४ ,, ,, सत्यदेव विशारद [बरमपुर बंगलौर]
१४५ ,, ब्रह्मचारी विद्यासागर [कोटा राज्य]
१४६ ,, ,, रणवीरवर्मा [गढ़वाल]
१४७ श्री ब्र० रामपाल (झबीरन्-रुड़की)

१४८ " " नन्दराम (झबीरन्-रुड़की)
१४९ " " शिवदत्तशर्मा (पिहानी, हरदोई)
१५० " " हितपाल वर्मा (अजबपुर-देहरादून)
१५१ " " रामचरणशर्मा, वाचस्पति (चितौरा-समशाबाद, आगरा)
१५२ " " जगदीश (खुर्रमपुर संसारपुर- सहारनपुर)
१५३ " " पूर्णचन्द (बहरायिच)
१५४ " " चन्द्रभानु-(चुडियाला-सहारनपुर)
१५५ ,, रामेश्वर त्रिवेदी, नवाबगंज-लखनऊ (संप्रति मांडले)
१५६ ,, सूर्यनारायणशर्मा (विधौली-देहरादून)
१५७ ,, पण्डित जगन्नयनशर्मा आयुर्वेदाचार्य (तलाई-भोगपुर)
१५८ ,, हरिश्चन्द्र रईस बहेड़ा-मुजफ्फराबाद।
१५९ ,, देवदत्त जी, सदर बाज़ार हरदोई।
१६० ब्र० ज्योतिःस्वरूप (मुजफ्फराबाद)
१६१ ,, रामचन्द्रशर्मा (फीरोजाबाद—आगरा)
१६२ ,, बलदेव वर्मा (बहादरपुर जट्ट)
१६३ ,, धर्मपाल-[द्रुग-सी० पी०]
१६४ ,, शिवदत्त (हरदोई)
१६५ पं० चण्डीप्रसाद बहुगुण (तलाई-भोगपुर)
१६६ ब्र० विश्वनाथशर्मा (आचार्य पं० हरदत्तशास्त्रि के कनिष्ठ-भ्राता)
१६७ ,, रामदेव (बरखेडा—पीलीभीत)
१६८ श्री पं० आशारामशर्मा अग्निहोत्री (नाला-कांधला-मुज़फ्फर नगर)
१६९ ,, ,, आत्मानंद जी शर्मा (गंगागढ़-पहासू)

१७० ब्र० ब्रह्मदेवशर्मा (गंगागढ़-पहासू)
१७१ श्री परमहंस बावा राघवदास (बरहज-गोरखपुर)
१७२ ,, स्वामी नित्यानंद जी (लाहौर)
१७३ ,, पं० जयदत्तशर्मा कर्णवास-बुलन्दशहर।
१७४ ,, ,, ब्रह्मदेवशर्मा कर्णबास-बुलन्दशहर।
१७५ ब्र० विष्णुशर्मा सोरखा—हरदोई।
१७६ ,, ऋषिपाल [बुलन्दशहर]
१७७ श्री वसुदेवजी जिज्ञासु जसपुर-नैनीताल।
१७८ ,, ब्र० गुलाबसिंह [खटीमा, नैनीताल]
१७९ ,, बलवीर वैद्य [कोटा—महेवड़]
१८० श्री पंडित हरिवल्लभशर्मा आयुर्वेदभास्कर कैलासपुर।
१८१ ,, ,, देवदत्तशर्मा डिगौली।
१८२ ,, ज्ञानप्रकाश [ग्वालियर]
१८३ ,, गोपालशास्त्री [लायलपुर]
१८४ स्वर्गीय श्री बलवीरशर्मा शास्त्री जोशी [इन्द्री-करनाल]
१८५ ,, ,, पण्डित सत्यपालशर्मा रायकोट, लुधियाना
१८६ श्री पण्डित प्रेमनाथशर्मा विशारद ,, ,,
१८७ स्व० पण्डित रामचन्द्रशर्मा सिद्धान्तभास्कर [माछरा-मेरठ]
१८८ ,, राजाराम गुप्त फरीदपुर बरेली।
१८९ श्री सुखदेवशर्मा रामपुर एटा।
१९० ,, ब्रह्मदत्तशर्मा-गढ़मुक्तेश्वर।
१९१ ,, विश्वनाथशास्त्री बोरकर [अकोला]
१९२ ब्रह्मचारी योगेन्द्रवर्मा [जिला बिजनौर]
१९३ ,, रामरत्नशर्मा [बिलासपुर--रामपुर स्टेट]
१९४ ,, जगदीशवर्मा [बिजनौर]

१९५ ,, परमानन्दशर्मा [चुडियाला-सहारनपुर]
१९६ ,, रामाश्रयशर्मा [बिलासपुर--रामपुर]
१९७ ,, आर्येन्द्र [इसलामनगर बदायूं]
१९८ ,, कपिलदेव [गाजीपुर-यू० पी०]
१९९ ,, रविदेवशर्मा [भटपुरा-मुरादाबाद]
२०० ,, रामदत्तशर्मा ,, ,,
२०१ ,, वागीश्वरशर्मा [देवबन्द]
२०२ ,, वीरेन्द्रवर्मा ऊमरी-धामपुर
२०३ ,, कृष्णदेव समशाबाद—आगरा।
२०४ श्री गोवर्द्धन अमृतसर।
२०५ ,, बिहारीलाल बैंकर गुजरानवाला इत्यादि इत्यादि।

———

स्वामी जी की शिष्य-परम्परा के अन्य विद्वान्।

श्री पण्डित बृहस्पतिशास्त्री आचार्य गुरुकुल वृन्दावन।

श्री ,, द्विजेन्द्रनाथ सिद्धान्तशिरोमणि आचार्य आर्यसमाज बम्बई।

श्री ,, विश्वनाथ विद्यालंकार उपाचार्य गुरुकुल कांगड़ी।

,, ,, देवशर्मा विद्यालंकार आचार्य गुरुकुल कांगड़ी।

,, ,, इन्द्र विद्यावाचस्पति संपादक अर्जुन।

,, ,, हरिश्चन्द्र विद्यालंकार—

,, कविरत्न पण्डित हरिशंकर शर्मा संपादक आर्यमित्र आगरा।

,, पालिरत्न पं० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, अध्यक्ष भास्करप्रेस, देहरादून।

श्री जयचन्द्र विद्यावाचस्पति एम० ए०।

प्रो० मनोरञ्जन एम० ए० हिन्दूविश्वविद्यालय काशी।

इत्यादि।